उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAED-110
शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड
1
शिक्षा मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि

इकाई-1	5
शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ, कार्यक्षेत्र एवं महत्व	
इकाई-2	15
शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ	
इकाई-3	28
मनोविज्ञान के स्कूलों का शिक्षा में योगदान	
इकाई-4	51
वृद्धि एवं विकास	

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव — **कुलपति - अध्यक्ष**

डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल — वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक

श्री एम0 एल0 कनौजिया — कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता — निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 राम शकल पाण्डेय — पूर्व आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 हरिकेश सिंह — आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता — निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 पी0 सी0 सक्सेना — पूर्व आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 रीना अग्रवाल — रीडर, शिक्षा विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्याल , **प्रयागराज**

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित २०२४

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा. लि. 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज.

MAED-110- शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड-1	**शिक्षा मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि**
इकाई-1	शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ, कार्यक्षेत्र एवं महत्व
इकाई-2	शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ
इकाई-3	मनोविज्ञान के स्कूलों का शिक्षा में योगदान
इकाई-4	वृद्धि एवं विकास
खण्ड-2	**विकास के आयाम**
इकाई-5	शारीरिक विकास
इकाई-6	संज्ञानात्मक विकास
इकाई-7	संवेगात्मक विकास
इकाई-8	सामाजिक विकास
खण्ड-3	**शिक्षार्थी की विशेषताएँ**
इकाई-9	भाषा विकास
इकाई-10	संप्रत्यात्मक विकास
इकाई-11	बुद्धि, अभिक्षमता एवं सृजनात्मकता
इकाई-12	व्यक्तित्व
खण्ड-4	**अधिगम के पक्ष**
इकाई-13	सीखना
इकाई-14	अभिप्रेरणा
इकाई-15	स्मरण, विस्मरण एवं चिन्तन
इकाई-16	विशिष्ट बालकों की शिक्षा

खण्ड परिचय-1 शिक्षा मनोविज्ञान की पृष्ठ भूमि

इस खण्ड में शिक्षा मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि के बारे में चर्चा की गई है। प्रथम इकाई में विद्यार्थी शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ तथा उसके कार्यक्षेत्र का अध्ययन करेंगे। शिक्षण प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु शिक्षार्थी होता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि शिक्षार्थी को केन्द्र मानकर शिक्षण परिस्थितियों का निर्माण किया जाये। शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षण पक्ष के समस्त बिन्दुओं का अध्ययन करता है। इसमें अधिगम परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। इसका कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है इसमें अधिगम प्रक्रिया के स्वरूप, सीखने की परिस्थिति, मापन मूल्यांकन आदि का अध्ययन किया जाता है।

इकाई दो में शिक्षा मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों के बारे में चर्चा की गई है। शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करने के लिये अनेक विधियों का उल्लेख किया गया है। अर्न्तक्रिया विधि एक ऐसी विधि है जिसमें व्यक्ति स्वयं अपनी मनोदशा का विधिवत निरीक्षण करता है। वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण, प्रयोगात्मक विधि आदि भी लोकप्रिय विधियाँ हैं। इनके अतिरिक्त विकासात्मक विधि, मानक सर्वेक्षण विधियों का प्रयोग भी होता है।

इकाई तीन मनोविज्ञान के स्कूलों का शिक्षामें योगदान से सम्बन्धित है। मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदाय मानव व्यवहार की अलग-अलग व्याख्या करते हैं। ये विभिन्न सम्प्रदाय सिबात को बताते हैं कि मनोविज्ञान के अंदर क्या क्या है। इस इकाई में मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को बताते हुए इनके शैक्षिक योगदान का ज्ञान कराया गया है। मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों ने जो विचार दिये उनका शैक्षिक परिस्थितियों में विशेष महत्व है। संरचनावाद जिसने मनोविज्ञान को प्रयोगात्मक रूप प्रदान किया, विलियम वुण्ट द्वारा स्थापित पहला स्कूल था। व्यवहारवाद द्वारा व्यक्ति को विकास में पर्यावरणी कारकों पर अधिक बल डाला। गेस्टान्त मनोवैज्ञानिकों ने आणविक विचारधारा के विरुद्ध आवाज उठाते हुए संर्वागिण पर बल डाला मनोविश्लेषण जिसकी स्थापना नैदानिक परिस्थितियों में साइमण्ड फ्रायड द्वारा की गयी थी, ने मुख्यरूप से जीवन के प्रारम्भिक वर्षों की महत्ता को बताया।

इकाई चार वृद्धि एवं विकास से सम्बन्धित है बालक को विकास की प्रक्रिया जन्म से पूर्व जब वह मात्रा के गर्ग में आता है तभी से प्रारम्भ हो जाती है और जन्म के बाद शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तक क्रमशः चलती रहती है। अभिवृद्धि से तात्पर्य परिमाणात्मक परिवर्तन से होता है जबकि विकास में परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन सम्मिलित होते हैं। मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि बालको के अधिकतर गुण चाहे वे शारीरिक हो या मानसिक आनुवांशिक तथा वातावरण की अन्तः क्रिया का प्रतिफल है।

इकाई 1 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ, कार्यक्षेत्र एवं महत्व

संरचना

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 शिक्षा मनोविज्ञान : अर्थ एवं परिभाषा

1.4 शिक्षा मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र

1.5 मनोविज्ञान का शिक्षा में योगदान

1.5.1 उद्देश्य

1.5.2 विषयवस्तु

1.5.3 साधन

1.5.4 विधि

1.6 सारांश

1.7 अभ्यास कार्य

1.8 बोध प्रश्नों का उत्तर

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

यह इकाई शिक्षा मनोविज्ञान के प्रथम खण्ड की पहली इकाई है। इस इकाई में आप शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ तथा उसके कार्यक्षेत्र का अध्ययन करेंगे। शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक शाखा है। आप कार्यक्षेत्र के साथ–साथ इसकी महत्ता का भी अध्ययन करेंगे। शिक्षा मनोविज्ञान की संकल्पना समझने के बाद इस खण्ड की अन्य तीन इकाइयों को समझने मे सहायता मिलेगी।

शिक्षण प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु शिक्षार्थी होता है। ऐसे में यह आवश्यक है कि शिक्षार्थी को केन्द्र मानकर शिक्षण परिस्थितियों का निर्माण किया जाये। शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षण पक्ष के समस्त बिन्दुओं का अध्ययन करता है। इस इकाई का अध्ययन करने से आप शिक्षा मनोविज्ञान की व्यापक उपयोगिता समझ सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि –

- शिक्षा तथा मनोविज्ञान के अर्थ को समझ सकेंगे।

- शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ को समझ सकेंगे।
- शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा तथा उसकी संकल्पना लिख सकेंगे।
- शिक्षा मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र को समझ सकेंगे।
- शिक्षा मनोविज्ञान की समस्याओं का विवेचन कर सकेंगे।
- शिक्षा मनोविज्ञान की महत्ता को समझ सकेंगे।

1.3 शिक्षा मनोविज्ञानः अर्थ एवं परिभाषा

शिक्षा को अंग्रेजी में Education कहते हैं जो लैटिन भाषा के Educatum का रूपान्तर है जिसका अर्थ है to bring up together हिन्दी में शिक्षा का अर्थ ज्ञान से लगाया जाता है। गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा के समुचित विकास से है।

अंग्रेजी का Psychology शब्द दो शब्दों 'Psyche' और 'logus' से मिलकर बना है। Psyche का अर्थ है 'आत्मा' और logus का अर्थ है 'विचार विमर्श'। अर्थात आत्मा के बारे में विचार–विमर्श या अध्ययन मनोविज्ञान में किया जाता है। Aristotle ने इस विषय को यथार्थ बनाया और कहा कि आत्मा शरीर से अलग नही है। विचार मनुष्य की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। शरीर क्रिया विज्ञान ने मनोविज्ञान के अध्ययन में शरीर विशेष रूप से मस्तिष्क की क्रिया–प्रतिक्रिया को महत्व दिया। 1879 में वुन्ट ने विश्व की सर्वप्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना की। इस प्रयोगशाला में व्यक्ति के चेतन मन का अध्ययन किया गया। 20वीं शताब्दी में फ्रायड ने मन को तीन भागों में बांटा – चेतन, अवचेतन और अचेतन। मनोविज्ञान में चेतन के साथ–साथ अचेतन मन का अध्ययन भी किया जाने लगा। इसके पश्चात व्यवहारवादियों ने मनोविज्ञान के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करने की बात कही। मनोविज्ञान वास्तव में मानव व्यवहार के समस्त पहलुओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान है।

शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है। शिक्षा के सभी पहलुओं जैसे शिक्षा के उद्देश्यों, शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम, मूल्यांकन, अनुशासन आदि को मनोविज्ञान ने प्रभावित किया है। बिना मनोविज्ञान की सहायता के शिक्षा प्रक्रिया सुचारू रूप से नही चल सकती। सर्वप्रथम Pestalozzi ने शिक्षा की मनोवैज्ञानिक परिभाषा दी–

"Education is a natural, humonious and progressive development of man's innate power"

शिक्षा मनोविज्ञान से तात्पर्य शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया को सुधारने के लिए मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग करने से है। शिक्षा मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है।

Skinner (1958) के अनुसार – शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जो शिक्षण एवं अधिगम से सम्बन्धित है।

Crow एवं Crow (1973) के अनुसार – शिक्षा मनोविज्ञान जन्म से लेकर वद्धावस्था तक के अधिगम अनुभवों का विवरण एवं व्याख्या देता है।

इस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार, मानसिक प्रक्रियाओं एवं अनुभवों का अध्ययन शैक्षिक परिस्थितियों में किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसका ध्येय शिक्षण की प्रभावशाली तकनीकों को विकसित करना तथा अधिगमकर्ता की योग्यताओं एवं अभिरूचियों का आंकलन करना है। यह व्यवहारिक मनोविज्ञान की शाखा है जो शिक्षण एवं सीखने की प्रक्रिया को सुधारने में प्रयासरत है।

1.4 शिक्षा मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र

शिक्षा की महत्वपूर्ण समस्याओं के समाधान में मनोविज्ञान मदद करता है और यही सब समस्याएं व उनका समाधान शिक्षा मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र बनते है –

1. शिक्षा कौन दे ? अर्थात् शिक्षक कैसा हो। मनोविज्ञान शिक्षक को अपने छात्रों को समझने में सहायता प्रदान करता है साथ ही यह भी बताता है कि शिक्षक को छात्रों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। शिक्षक का व्यवहार पक्षपात रहित हो। उसमें सहनशीलता, धैर्य व अर्जनात्मक शक्ति होनी चाहिए।

2. विकास की विशेषताएं समझने में सहायता देता है। प्रत्येक छात्र विकास की कुछ निश्चित अवस्थाओं से गुजरता है जैसे शैशवास्था (0–2 वर्ष) बाल्यावस्था (3–12 वर्ष) किशोरावस्था (13–18 वर्ष) प्रौढ़ावस्था (18–21 वर्ष)। विकास की दृष्टि से इन अवस्थाओं की विशिष्ट विशेषताएं होती है। यदि शिक्षक इन विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं से परिचित होता है वह अपने छात्रों को भली प्रकार समझ सकता है और छात्रों को उसी प्रकार निर्देशन देकर उनको लक्ष्य प्राप्ति में सहायता कर सकता है।

3. शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान शिक्षक को सीखने की प्रक्रिया से परिचित

कराता है। ऐसा देखा जाता है कि कुछ शिक्षक कक्षा में पढ़ाते समय अधिक सफल साबित होते है तथा कुछ अपने विषय पर अच्छा ज्ञान होने पर भी कक्षा शिक्षण में असफल होते है। प्रभावपूर्ण ढंग से शिक्षण करने के लिए शिक्षक को सीखने के विभिन्न सिद्धान्तों का ज्ञान, सीखने की समस्याओं एवं सीखने को प्रभावित करने वाले कारणों और उनको दूर करने के उपायों की जानकारी होनी चाहिए। तभी वह छात्रों को सीखने के लिए प्रेरित कर सकता है।

4. शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्तिगत भिन्नता का ज्ञान कराता है। संसार के कोई भी दो व्यक्ति बिल्कुल एक से नही होते है। प्रत्येक व्यक्ति अपने में विशिष्ट व्यक्ति है। एक कक्षा में शिक्षक को 30 से लेकर 50 छात्रों को पढ़ाना होता है जिनमें अत्यधिक व्यक्तिगत भिन्नता होती है। यदि शिक्षक को इस बात का ज्ञान हो जाए तो वह अपना शिक्षण सम्पूर्ण सभी छात्रों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाला बना सकता है।

5. व्यक्ति के विकास पर वंशानुक्रम एवं वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है यह मनोविज्ञान बताता है। वंशानुक्रम किसी भी गुण की सीमा निर्धारित करता है और वातावरण उस गुण का विकास उसी सीमा तक करता है। अच्छा वातावरण भी गुण को उस सीमा के आगे विकसित नहीं कर सकता।

6. पाठ्यक्रम निर्माण में सहायता – विभिन्न स्तरों के छात्रों के लिए पाठ्यक्रम बनाते समय मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त सहायता पहुंचाते है। छात्रों की आवश्यकताओं, उनके विकास की विशेषताओं, सीखने के तरीके व समाज की आवश्यकताएं यह सब पाठ्यक्रम में परिलक्षित होनी चाहिए। पाठ्यक्रम में व्यक्ति व समाज दोनों की आवश्यकताओं को सम्मिश्रित रूप में रखना चाहिए।

7. विशिष्ट बालकों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं का ज्ञान मनोविज्ञान शिक्षक को देता है। जिससे शिक्षक इन बच्चों को अपनी कक्षा में पहचान सकें। उनको आवश्यकतानुसार मदद कर सकें। उनके लिए विशेष कक्षाओं का आयोजन कर सके व परामर्श दे सकें।

8. मानसिक स्वास्थ्य का ज्ञान भी शिक्षक के लिए लाभकारी होता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति के लक्षणों को पहचानना तथा ऐसा प्रयास करना कि उनकी इस स्वस्थता को बनाए रखा जा सकें।

9. मापन व मूल्यांकन के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का ज्ञान भी मनोविज्ञान से मिलता है। वर्तमान की परीक्षा प्रणाली से उत्पन्न छात्रों में डर, चिन्ता, नकारात्मक प्रवृत्ति जैसे आत्महत्या करने से छात्रों के व्यक्तित्व का विघटन साथ ही समाज का भी विघटन होता है। अतः सीखने के परिणामों का उचित मूल्यांकन करना तथा उपचारात्मक शिक्षण देना शिक्षक का ध्येय होना चाहिए।

10. समूह गतिकी का ज्ञान शिक्षा मनोविज्ञान कराता है। वास्तव में शिक्षक एक अच्छा पथ–प्रदर्शक, निर्देशक व कुशल नेता होता है। समूह गतिकी के ज्ञान से वह कक्षा रूपी समूह को भली प्रकार संचालित कर सकता है और छात्रों के सर्वांगीण विकास में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकता है।

11. शिक्षा मनोविज्ञान बच्चों को शिक्षित करने सम्बन्धी विभिन्न विधियों के बारे में अध्ययन करता है और खोज करता है कि विभिन्न विषयों जैसे गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भाषा, साहित्य को सीखने से सम्बन्धित सामान्य सिद्धान्त क्या है।

12. शिक्षा मनोविज्ञान विभिन्न प्रकार के रूचिकर प्रश्नों जैसे बच्चे भाषा का प्रयोग करना कैसे सीखते है ? या बच्चों द्वारा बनायी गयी ड्राइंग का शैक्षिक महत्व क्या होता है ? पर भी विचार करता है।

Kelley ने शिक्षा मनोविज्ञान के कार्यो का निम्न प्रकार विश्लेषण किया है –

1. बच्चें की प्रकृति के बारे में ज्ञान प्रदान करता है।
2. शिक्षा की प्रकृति एवं उद्देश्यों को समझने में सहायता प्रदान करता है।
3. ऐसे वैज्ञानिक विधियों व प्रक्रियाओं को समझाता है जिनका शिक्षा मनोविज्ञान के तथ्यों एवं सिद्धान्तों को निकालने में उपयोग किया जाता है।
4. शिक्षण एवं अधिगम के सिद्धान्तों एवं तकनीकों को प्रस्तुत करता है।
5. विद्यालयी विषयों में उपलब्धि एवं छात्रों की योग्यताओं को मापने को विधियों में प्रशिक्षण देता है।
6. बच्चों के वृद्धि एवं विकास के बारे में ज्ञान प्रदान करता है।
7. बच्चों के अच्छे समायोजन में सहायता प्रदान करता है और कुसमायोजन से बचाता है।

8. संवेगों के नियन्त्रण एवं उसके शैक्षिक निहितार्थ का अध्ययन करता है।

1.5 मनोविज्ञान का शिक्षा में योगदान

शिक्षा की समस्याएं उसके उद्देश्यों, विषय वस्तु, साधनों एवं विधियों से सम्बन्धित है। मनोविज्ञान इन चारों क्षेत्रों में समस्याओं को सुलझाने में सहायता प्रदान करता है।

1.5.1 उद्देश्य

मनोविज्ञान शिक्षा के उद्देश्यों को अच्छी तरह से समझने में निम्न प्रकार सहायता प्रदान करता है।

1. **उद्देश्यों को परिभाषित करके** – उदाहरणार्थ – शिक्षा का एक उद्देश्य है अच्छे नागरिक के गुणों का विकास करना। इसमें अच्छे नागरिक से क्या तात्पर्य है। अतः अच्छे नागरिक को व्यवहारिक रूप में परिभाषित करना चाहिए।
2. **उद्देश्यों को स्पष्ट करके** – उपर्युक्त उदाहरण के अनुसार व्यक्ति के कौन से व्यवहार अथवा लक्षण अच्छे नागरिक में होने चाहिए। अर्थात् ऐसे कौन से व्यवहार है या लक्षण हैं जो अच्छे नागरिक में नही पाए जाते और इसके विपरीत जिनको हम अच्छा नागरिक कहते है उनमें वे व्यवहार पाए जाते है।
3. **उद्देश्य प्राप्ति की सीमा निर्धारित करके** – वर्तमान परिस्थिति में शिक्षा देते समय एक कक्षा के शत प्रतिशत विद्यार्थियों को शत प्रतिशत अच्छे नागरिक बनाना असंभव हो जाता है। अतः इसकी सीमा निर्धारित करना जैसे 80 प्रतिशत विद्यार्थियों के 80 प्रतिशत व्यवहार अच्छे नागरिक को परिलक्षित करेगे।
4. उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए क्या करना है अथवा क्या नही ? प्राथमिक स्तर पर अच्छे नागरिक के गुणों को विकास करने के लिए शिक्षक को भिन्न व्यवहार करना होगा और उच्च स्तर पर इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भिन्न व्यवहार करना होगा।
5. **नए पेहलुओं पर सुझाव देना** – उदाहरणार्थ – मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मूल्याकंन में सभी छात्रों को एक समान परीक्षण क्यों दिया जाए जब एक ही कक्षा में भिन्न योग्यता और क्षमता वाले छात्रों को प्रवेश दिया जाता है।

1.5.2 विषयवस्तु

शिक्षा की विषयवस्तु को समझने व उसका निर्धारण छात्र के विकास के अनुरूप करने में मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं। किस कक्षा के छात्रों के लिए विषयवस्तु क्या हो ? अप्रत्यक्ष पाठ्यक्रम (विद्यालय का सामान्य वातावरण) किस प्रकार का हो जिससे छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव न पड़े आदि महत्वपूर्ण प्रश्नों का समाधान मनोविज्ञान करता है। मनोविज्ञान की सहायता से मानवजाति को विश्व के कल्याण हेतु प्रयुक्त कर सकते है।

1.5.3 साधन

मनोविज्ञान शिक्षा के साधनों को समझने में सहयोग प्रदान करता है। क्योकि

(अ) अभिभावको, शिक्षकों एवं मित्रों की बुद्धि एवं चरित्र उनको शिक्षित करने का महत्वपूर्ण साधन होती है।

(ब) शिक्षा के अन्य साधनों जैसे पुस्तक, मानचित्र, उपकरणों का प्रयोग तभी सफल होता है जब जिनके लिए इनका प्रयोग किया जाता है, उनकी प्रकृति समझ में आए।

1.5.4 विधि

मनोविज्ञान शिक्षण की विधियों के बारे में ज्ञान तीन प्रकार से देता है –

(अ) मानव प्रकृति के नियमों के आधार पर शिक्षण विधि निर्धारित करना

- स्थूल से सूक्ष्म की ओर
- ज्ञात से अज्ञात की ओर
- सरल से जटिल की ओर
- करके सीखना

(ब) स्वयं के शिक्षण अनुभव के आधार पर विधि का चयन करना

- शिक्षक–छात्र अनुपात 1 अनुपात 5 या 1 अनुपात 60 की तुलना में 1 अनुपात 25 ज्यादा उपयुक्त होता है।
- छात्र के चरित्र निर्माण में विद्यालयी वातावरण से ज्यादा पारिवारिक जीवन का प्रभाव पड़ता है।

- विदेशी भाषा को हू–बहू की तुलना में वार्तालाप से ज्यादा अच्छा सीखा जा सकता है।

(स) छात्र के ज्ञान व कौशल को मापने के तरीके इस प्रकार बताता है –

- किस विधि से किस विषयवस्तु के अर्जन को मूल्यांकित करना है जैसे गद्य (संज्ञानात्मक) एवं पद्य (भावात्मक)।
- मूल्यांकन का उद्देश्य छात्र को सिर्फ सही अथवा गलत प्रतिक्रिया बताना नही है वरन् उसकी प्रतिक्रियाओं का निदान करना व उपचारात्मक शिक्षण प्रदान करना है।

Davis ने शिक्षा मनोविज्ञान के महत्व की इस प्रकार विवेचना की है – मनोविज्ञान ने छात्रों की अभिक्षमताओं एवं उनमें पाए जाने वाले विभिन्नताओं का विश्लेषण करके शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इसने विद्यालयी वर्षो में छात्र की वृद्धि एवं विकास के ढंग के बारे में ज्ञान प्रदान करके भी योगदान दिया है।

Blair ने शिक्षा मनोविज्ञान के महत्व को निम्न शब्दों में बताया है – वर्तमान समय में यदि शिक्षक को अपने कार्य में सफल होना है तो उसे बाल मनोविज्ञान का ज्ञान जैसे उनकी वृद्धि, विकास, सीखने की प्रक्रिया व समायोजन की योग्यता के बारे में समझ होनी चाहिए। वह छात्रों की शिक्षा सम्बन्धी विशिष्ट कठिनाईयों को पहचान सके तथा उपचारात्मक शिक्षण देने की कुशलता रखता हो। उसको आवश्यक शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन देना आना चाहिए। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति यदि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों व विधियों के बारे में शिक्षित नही है तो वह शिक्षक के दायित्व को भली भांति नहीं निभा सकता।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :(क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

(ख) इस इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1. 'शिक्षा' तथा 'मनोविज्ञान' का शाब्दिक अर्थ लिखिए।

....

....

....

2. शिक्षा मनोविज्ञान की संकल्पना लिखिए।

....

....

....

3. शिक्षा मनोविज्ञान किन–किन समस्याओं का अध्ययन करता है ?

....

....

....

1.6 सारांश

शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा है। जिसमें अधिगम परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है। इसमें अधिगमार्थी, अधिगम प्रक्रिया के स्वरूप, सीखने को परिस्थिति, मापन एवं मूल्यांकन आदि का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षार्थी एवं शिक्षक के लिये काफी उपयोगी है।

1.7 अभ्यास कार्य

1. शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता लिखिए।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 'शिक्षा' तथा 'मनोविज्ञान' के अर्थ का अंग्रेजी रूपातंरण समझने में मदद करेगा।

2. शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा से सम्बद्ध समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण एवं वैज्ञानिक समाधान प्रस्तुत करता है।

3. शिक्षा मनोविज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों का अध्ययन करें। इसमें आने वाली समस्याओं को लिखिए। यह विभिन्न क्षेत्र समस्याओं का विशद वर्णन करते है।

1.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Skinner, C.E. (2004): Educational Psychology, 4th edition. Prentice Hall of India, New Delhi.

Agarwal, J.C. (2002): Essentials of Educational Psychology. Vikas Publishing House, New Delhi.

Singh, A.K. (1994): शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।

इकाई 2 शिक्षा मनोविज्ञान की अध्ययन विधियाँ

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 अन्तः दर्शन विधि

2.4 निरीक्षण विधि

2.4.1 स्वाभाविक निरीक्षण

2.4.2 अस्वाभाविक निरीक्षण

2.5 अच्छे निरीक्षण की विशेषताएं

2.5.1 उद्देश्य पूर्ण

2.5.2 व्यवस्थित / क्रमबद्ध

2.5.3 सावधानीपूर्ण व गहन अभिलेखन

2.5.4 वस्तुनिष्ठता

2.5.5 विश्वसनीयता व वैधता

2.6 प्रयोगात्मक विधि

2.6.1 स्वतंत्र चर

2.6.2 पराश्रित चर

2.6.3 व्यक्ति विशेष सम्बन्धी चर

2.6.4 परिस्थिति सम्बन्धी चर

2.6.5 क्रमिक चर

2.7 प्रयोगात्मक प्रारूप

2.8 विकासात्मक विधि

2.8.1 क्रास सेक्शनल

2.8.2 लम्बवर्तीय विधि

2.8.3 क्रमवार विधि

2.9 उपचारात्मक विधि

2.10 जीवन वृत्त अध्ययन विधि

2.10.1 व्यक्तिगत अध्ययन विधि की विशेषताएं

2.10.2 व्यक्तिक अध्ययन विधि की आधारभूत धारणाएं

2.11 सारांश

2.12 अभ्यास कार्य

2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

इकाई 1 में शिक्षा तथा मनोविज्ञान के बीच सम्बन्ध का अध्ययन किया गया। इकाई 2 में शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन की विधियां का अध्ययन किया जायेगा। शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा (Applied Branch) है। इस शाखा का प्रमुख उद्धेश्य शिक्षकों को ऐसी क्षमतायें प्रदान करना है जिससे वे शिक्षार्थी के व्यवहारों को विभिन्न स्तरों पर समझ सके, उनके व्यवहार पर नियंत्रण स्थापित कर सके तथा उनके बारे में पूर्वकथन कर सकें। शिक्षा मनोविज्ञान की अध्ययन विधियां शिक्षार्थी के व्यवहार को समझने योग्य बनाती है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि :

- शिक्षा मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न परिस्थितियों में उपयोगी विधियों के प्रयोग से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न विधियों के सापेक्षिक महत्व का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

2.3 अन्तः दर्शन विधि

अन्तःदर्शन विधि के माध्यम से व्यक्ति के चेतन मन का अध्ययन किया जाता है। Stout ने अन्तः दर्शन के तीन स्तर बताए है :–

अ) व्यक्ति अपने मन का अन्तः निरीक्षण करता है।

ब) उसका विश्लेषण करता है।

स) मानसिक प्रक्रियाओं में सुधार लाने का प्रयास करता है।

आलोचना–

1) अन्तः दर्शन सभी व्यक्ति नही कर सकते। जिनमें चिन्तन की क्षमता है वहीं लोग कर सकते है।

2) छोटे बच्चे व असामान्य व्यक्ति अन्तः दर्शन नही कर सकते।

3) एक व्यक्ति के अन्तः दर्शन के आधार पर सामान्य नियम निकालना दुष्कर है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए।

1) अन्तःदर्शन विधि की आवश्यकता क्यों होती है ?

....

....

....

2) अन्तःदर्शन विधि की प्रमुख सीमायें क्या है ?

....

....

....

2.4 निरीक्षण विधि

मनोविज्ञान में संरचनावाद के खिलाफ व्यवहारवादी विचारधारा का उदय हुआ। व्यवहारवादी विचारधारा के प्रतिपादक जान डब्लू वाटसन थे। वाटसन निरीक्षण पद्धति के पक्षधर थे। व्यवहारवादियों ने मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान बताया और कहा कि व्यक्ति के व्यवहार का उत्तेजना–प्रतिक्रिया के सन्दर्भ में वस्तुनिष्ठ अध्ययन सम्भव है।

निरीक्षण विधि में अध्ययनरत घटनाओं में कार्य कर रहे चरो को बिना किसी औपचारिक परिचालन के अभिलेखित किया जाता है। इस विधि में मनोवैज्ञानिक दूसरे व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण करता है तथा उसके व्यक्तित्व के बारे में आंकलन करता हैं। इस विधि के तीन स्तर होते है –

1. दूसरे व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण करना।
2. दूसरे व्यक्ति के व्यवहार का आंकलन करना।
3. निरीक्षण के आधार पर दूसरे व्यक्ति के व्यक्तित्व की व्याख्या करना।

निरीक्षण दो प्रकार से किया जा सकता है –

2.4.1 स्वाभाविक निरीक्षण–

इसमें व्यक्ति या समूह को बिना किसी पूर्व सूचना के जैसे वह स्वाभाविक गतिविधियां करता है उसका निरीक्षण किया जाता है। उदाहरणार्थ –

- प्रतिदिन शिक्षक कक्षा में पढ़ाते समय अपने छात्रों की गतिविधियों का निरीक्षण करता है जैसे छात्र चीजों को वर्गीकृत कैसे करता है, स्वयं से

या फूलों से क्या बाते करते है आदि।

- विद्यालय भवन की विशेषताओं का अध्ययन किया जा सकता है।
- अन्तः विद्यालयी प्रतियोगिताओं में खेलते वक्त कोच द्वारा खिलाड़ियों के खेलने के तरीके का निरीक्षण करके खेल की आक्रामक अथवा रक्षात्मक युक्ति की योजना बनायी जा सकती है।

2.4.2 अस्वाभाविक या नियन्त्रित निरीक्षण –

पी०वी० यंग के अनुसार "नियन्त्रित निरीक्षण निश्चित पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार किया जाता है जिसमें बहुत हद तक प्रयोग की प्रक्रिया शामिल होती है।"

उदाहरणार्थ– पावंलाव ने अपने प्रयोग के दौरान कुत्ते के व्यवहार का निरीक्षण नियन्त्रित परिस्थितियों में किया।

किसी भी विद्यालय अथवा महाविद्यालय में पूर्व सूचना देकर किया जाने वाला निरीक्षण नियन्त्रित निरीक्षण होता है जैसे राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परषिद द्वारा महाविद्यालय को मान्यता देने सम्बन्धी निरीक्षण अथवा माध्यमिक स्तर पर DIOS द्वारा कराया जाने वाला निरीक्षण।

नियन्त्रित निरीक्षण के दौरान निरीक्षण किए जाने वाले व्यक्ति का व्यवहार बनावटी होता है उसमें स्वाभाविकता नही रहती है। संवेगो, मानसिक आघात आदि को नियन्त्रित निरीक्षण द्वारा अध्ययन नही किया जा सकता है।

2.5 अच्छे निरीक्षण की विशेषताएं

एक अच्छे निरीक्षण की निम्नलिखित विशेषताएं होती है –

2.5.1 उद्देश्यपूर्ण–

निरीक्षण करने से पहले उसके उद्देश्य निर्धारित हो जाने चाहिए। किसी व्यक्ति के शिक्षण क्षमता का निरीक्षण करना है अथवा समायोजन योग्यता का।

2.5.2 व्यवस्थित / क्रमबद्ध –

निरीक्षण की योजना उद्देश्यों की ध्यान में रखकर करनी चाहिए। निरीक्षण किए जाने वाले व्यवहार की क्रियात्मक परिभाषा (Operational Definition) पहले बना लेनी चाहिए। जिसमें निरीक्षण के दौरान सार्थक व निरर्थक व्यवहारों को पहचाना जा सके।

2.5.3 सावधानीपूर्ण व गहन अभिलेखन –

निरीक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उचित व्यवहारों का अभिलेखन सावधानीपूर्वक व सही परिपेक्ष्य में होना चाहिए। अभिलेखन सम्बन्धी उपकरणों का निर्माण पहले से कर लिया जाना चाहिए। निरीक्षण के अभिलेखन में मुख्यतः उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जैसे जांच सूची, निर्धारण मापनी, गणना कार्ड आदि।

2.5.4 वस्तुनिष्ठता –

निरीक्षण से प्राप्त आंकड़ो में आत्मनिष्ठता होने की सम्भावनाए अधिक होती है क्योंकि व्यक्ति विशेष की अपने व्यक्तिगत सोच निरीक्षण की प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है।

2.5.5 विश्वसनीयता एवं वैद्यता–

निरीक्षण को विश्वसनीय एवं वैद्य बनाने के लिए

- निरीक्षणकर्ता को निरीक्षण के उद्देश्यों के अनुरूप सार्थक पक्षों पर ध्यान देना चाहिए एवं उनका अभिलेखन करना चाहिए।
- आत्मनिष्ठता बिल्कुल भी नही होनी चाहिए। इसके लिए एक से अधिक निरीक्षणकर्ता का प्रयोग करना चाहिए और इन निरीक्षणकर्ताओं की गणनाओं में तारतम्यता होनी चाहिए।
- निरीक्षण यादृच्छिक विधि से चुने गए समयों पर करना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।
ख) इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की मिलान कीजिए।

3) निरीक्षण विधि की आवश्यकता क्यों पड़ती है ?

....

....

4) निरीक्षण के प्रमुख प्रकार कौन–कौन से है ?

....

....

5) अच्छे निरीक्षण की प्रमुख विशेषतायें लिखिए।

....

....

2.6 प्रयोगात्मक विधि

नियन्त्रित परिस्थितियों में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन ही प्रयोग विधि है। प्रयोगकर्ता किसी एक या अधिक चर को नियन्त्रित या परिवर्तित करके उसका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर देखता है। चर दो प्रकार के होते है –

2.6.1 स्वतन्त्र चर –

ये वो चर होते है जिनको प्रयोगकर्ता नियन्त्रित व परिवर्तित करता है जिससे दूसरे चरों से इसके सम्बन्ध को जाना जा सके। यह सम्भावित कारण होता है जिसकी प्रयोगकर्ता खोज करना चाहता है।

2.6.2 पराश्रित चर –

वो दशाएं एवं विशेषताएं जो प्रयोगकर्त्ता द्वारा स्वतंत्र चर को प्रस्तुत करने हटाने व परिवर्तित करने पर दिखायी देते है, अदृश्य हो जाते है अथवा परिवर्तित हो जाते है पराश्रित चर कहलाते है। उदाहरण – लगातार मानसिक कार्य करने से थकान उत्पन्न हो जाती है। इसमें 'लगातार मानसिक कार्य' स्वतन्त्र चर तथा 'थकान' पराश्रित चर है।

2.6.3 व्यक्तिविशेष सम्बन्धी चर –

इसमें प्रयोज्य की आयु, लिंग, प्रजाति, बुद्धि, व्यक्तित्व आदि आते है।

2.6.4 परिस्थिति सम्बन्धी चर–

प्रयोगात्मक परिस्थिति में कार्य कर रही चीजें आती है जैसे शोर, तापमान और आद्रता, प्रयोग के कार्य सम्बन्धी बाते, प्रयोगकर्त्ता की क्षमता एवं उत्साह आदि।

2.6.5 क्रमिक चर–

इसमें वे चर आते है जो क्रम से सम्बन्धित होते है। प्रयोग के दौरान जब प्रयोज्य को विभिन्न परिस्थिति में कार्य करना होता है तो उस पर थकान, अभ्यास का प्रभाव, चिन्ता, प्रेरणा, समायोजन आदि का प्रभाव पड़ता है।

स्वतन्त्र चर का प्रभाव आश्रित चर पर देखने के लिए इन चरों को प्रयोगात्मक परिस्थिति से हटाने के कई तरीके है जैसे

- ❖ प्रयोगात्मक परिस्थिति से उस चर को हटा लेना।
- ❖ यदि इन चरों को हटाना सम्भव नही है तो इनको स्थिर रखा जाए।
- ❖ व्यक्तिविशेष सम्बन्धी चरो के प्रभाव को कम करने के लिए प्रयोगात्मक

समूह एवं नियन्त्रित समूह के लोगों का मिलान कर लेते है।

❖ प्रयोगात्मक परिस्थिति में दिए गए प्रयोगात्मक कार्य के क्रमवार के प्रभाव को कम/खत्म करने के लिए प्रतिसंतोलन कर लेते है।

❖ प्रयोज्यों को विभिन्न समूहों में याद्धच्छिक विधि से सम्मिलित किया जाता है।

2.7 प्रयोगात्मक प्रारूप

प्रयोगात्मक प्रारूप इस प्रकार होता है –

1. चरों को परिभाषित करना।
2. स्वतन्त्र चर तथा परतन्त्र चर का निर्धारण करना।
3. प्रयोग में प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री एकत्रित करना।
4. प्रयुक्त की जाने वाली प्रक्रिया का निर्धारण करना।
5. लोगों का प्रयोगात्मक समूह के लिए चयन करना।
6. आंकड़ो को एकत्रित करना।
7. एकत्रित आंकड़ो का सांख्यिकीय विश्लेषण करना।
8. विश्लेषण से निष्कर्ष निकालना।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

6) स्वतन्त्र चर व परतंत्र चर को परिभाषित करे।

....

....

7) मध्यस्थ चरों के प्रभाव को कैसे कम किया जा सकता है ?

....

....

8) प्रयोगात्मक विधि के प्रमुख दोष बताइये।

....

....

9) प्रयोगात्मक प्रारूप की आवश्यकता क्यों पड़ती है ?

....

....

2.8. विकासात्मक विधि

इसका प्रयोग व्यक्ति के विकास एवं वृद्धि का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। इसके अन्तर्गत मुख्यतः तीन विधियों का प्रयोग किया जाता है –

2.8.1 क्रास सेक्शनल

इस विधि में विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों का अध्ययन एक ही समय पर किया जाता है। उदाहरणार्थ स्मृति से सम्बन्धित विकासात्मक रूख जाने हेतु 5, 10, 15, 20, 25 व 30 आयु वर्ग के कुछ बच्चों को स्मृति स्मरण करने लिए दिया गया। और इन सबके स्मरण करने की गति व क्षमता की तुलना कर ली गयी।

2.8.2 लम्बर्तीय विधि

लम्बे समय तक व्यक्तियों के एक समूह का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण – जॉ प्याजे ने अपने तीन बच्चों के व्यवहार का निरीक्षण लम्बे समय तक किया और बच्चों के संजानात्मक विकास का सिद्धान्त दिया है।

इस विधि अत्यधिक समय लगता है तथा खर्च भी अधिक आता है। छोड़ने वाले छात्रों की सम्भावना भी अधिक होती है।

2.8.3 क्रमवार विधि

इस विधि का आरम्भ से करते है और कुछ माह व साल के बाद उसी समूह का अध्ययन करते है। कुछ समय अन्तराल पर फिर कुछ नए लोगों को अध्ययन में शामिल कर लेते है। इसमें क्रास सेक्शनल तथा लम्बवर्तीय दोनों विधियों के गुण शामिल है। यह जटिल, मंहगी तथा अधिक समय लेने वाली विधि है।

2.9 उपचारात्मक विधि

इस विधि का प्रयोग छात्रों की कुण्ठाओं, भय, कल्पनाओं, ग्रन्थियों, चिन्ता, अपराधिक वृत्तियों, संवेगात्मक विघटन, हकलाना आदि व्यवहार सम्बन्धी कठिनाईयों के कारणों को जानने के लिये किया जाता है। इसके आधार पर निर्देशन व परामर्श देना आसान हो जाता है।

जॉ प्याजें ने बालकों के संज्ञानात्मक स्तर को जानने हेतु इसी विधि का प्रयोग किया है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

10) क्रास सेक्शनल व लम्बवर्तीय विधि में प्रमुख अन्तर क्या है ?

....

....

....

11) विकासात्मक विधि की आवश्यकता कहां पड़ती है ?

....

....

....

12) असामान्य व्यवहार का अध्ययन करने के लिये किस मनोवैज्ञानिक विधि का प्रयोग करना चाहिये और क्यो ?

....

....

....

2.10 जीवनवृत्त अध्ययन विधि

इस विधि के अन्तर्गत किसी एक ईकाई का गहन व विस्तृत अध्ययन किया जाता है। वह ईकाई एक व्यक्ति, एक संस्था, एक घटना कुछ भी हो सकती है। गहन व विस्तृत अध्ययन करने हेतु बहु उपागमों का प्रयोग किया जाता है जैसे शारीरिक परीक्षण मनोचिकित्सीय परीक्षण सामाजिक रिपोर्ट आदि।

पी0वी0 यंग के अनुसार, "वैयक्तिक अध्ययन एक ऐसी पद्धति है जिसके द्वारा एक सामाजिक ईकाई–चाहे वह एक व्यक्ति, एक परिवार, संस्था, संस्कृति, समूह और एक समस्त समुदाय ही हो, के जीवन का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जाता है। इसका उद्देश्य उन कारकों को निर्धारित करना होता है जो कि सम्बन्धित ईकाई के व्यवहार के विषम प्रतिरूपों तथा उनके ईकाई के प्रति सम्बन्ध

ों की व्याख्या उसके सम्बन्धित स्थानीय परिवेश के आधार पर प्रस्तुत करना होता है।"

2.10.1 व्यक्तिगत अध्ययन विधि की विशेषताएं –

- एक समय में एक ईकाई का गहन, विस्तृत, सूक्ष्मतम तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाता है। सामान्यतः ऐसे अध्ययन का स्वरूप गम्भीर व विषम होता है।
- प्रत्येक ईकाई का क्रमबद्ध व वस्तुपरक अध्ययन किया जाता है।
- प्रत्येक ईकाई का बहुपक्षीय अध्ययन किया जाता है।
- इसमें एक ईकाई से सम्बन्धित विभिन्न अंगो व चरो का अलग–अलग विवरणात्मक अध्ययन न करके उनमें पारस्परिक अन्तर्सम्बन्धों का विश्लेषण किया जाता है।

2.10.2 व्यक्तिगत अध्ययन विधि की आधारभूत धारणाएं –

1. भौतिक जगत में घटनाएं स्वतन्त्र रू से घटित नही होती है वरन् उनके घटित होने का एक क्रम होता है और इस रूप का स्वाभाविक एवं तर्कसंगत आधार होता है।
2. एक घटना के विभिन्न अंगो में यान्त्रिक क्रमबद्धता तथा पारस्परिक आश्रित अन्तर्निहित होती है।
3. घटना के विभिन्न अंगो में कार्यकारण सम्बन्ध होता है।

वैयक्तिक अध्ययन विधि–द्वारा सामान्य व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन सरलता से किया जा सकता है। परन्तु इस विधि का अधिकतर उपयोग असामान्य व्यक्तियों के व्यवहार के अध्ययन में अत्यधिक उपयुक्त रहता है। बाल अपराधी, अपराधी, मनः स्नायु विकृति तथा स्नायु विकृति से ग्रसित लोगों के व्यवहारों का विश्लेषण करने के लिए यह विधि उपयुक्त रहती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : (क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

(ख) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

13) जीवन–वृत्त अध्ययन विधि क्या है ?

....

....

....

14) जीवन–वृत्त अध्ययन विधि की आवश्यकता क्यों पड़ती है ?

....

....

2.11 सारांश

शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करने के लिये अनेक विधियों का उल्लेख किया गया है। अन्तर्निरीक्षण विधि एक ऐसी विधि है जिसमें व्यक्ति स्वयं अपनी मनोदशा का विधिवत निरीक्षण करता है। आत्मनिरीक्षण के साथ ही वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण विधि को प्रयोग में लाया गया। जिसमें किसी शिक्षार्थी या बालक के व्यवहार का निरीक्षण अलग–अलग परिस्थितियों में किया जाता है। इन व्यवहारों का प्रेक्षण कभी–कभी स्वाभाविक परिस्थितियों में किया जाता है और कभी–कभी नियंत्रित वातावरण में किया जाता है। अध्ययन क्रम में प्रयोगात्मक विधि की उपयोगिता सर्वाधिक है। इस विधि में अध्ययनकर्ता एक शोध प्रारूप बनाकर आश्रित चर में कारण परिणाम संबंध कायम करने की कोशिश करता है। व्यक्ति इतिहास विधि का प्रयोग तब किया जाता है जब किसी समस्यात्मक बालक की अनुभूतियों व घटनाओं का विबरण तैयार करके उनका विश्लेषण करने की आवश्यकता हो।

शिक्षा मनोविज्ञान में इसके अतिरिक्त परिस्थिति अनुसार विकासात्मक विधि ।, मानक सर्वेक्षण आदि विधियों का प्रयोग होता रहता है।

2.12 अभ्यास कार्य

1. स्वाभाविक व नियत्रिंत निरीक्षण में अन्तर स्पष्ट करें।
2. निरीक्षण को किस प्रकार से अधिक विश्वसनीय व वैध बनाया जा सकता है ?
3. मनोवैज्ञानिक प्रयोगों के दौरान आने वाली प्रमुख समस्यायें कौन–कौन सी है ?
4. वैयक्तिक अध्ययन विधि किन प्रमुख धारणाओं पर आधारित है ?

2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. कुछ ऐसे व्यवहार होते है जोकि प्रकट रूप में दिखायी नहीं देते है। ऐसे में व्यक्ति की मनोदशा का अंदाजा तभी लगाया जा सकता है जबकि व्यक्ति स्वयं

चेतन मन की बाते व्यक्त करें।

2. अन्तःदर्शन सभी लोग ठीक प्रकार से नहीं कर पाते है। साथ ही छोटे बच्चे व असामान्य व्यक्तियों के लिये यह विधि उपयोगी नहीं है।

3. शिक्षार्थियों के व्यवहारों का निरीक्षण या प्रेक्षण करके उसकी अभिरूचि, अभिक्षमता तथा व्यक्तित्व के कुछ खास शीलगुणों का पता लगाया जाता है। इससे उसके व्यवहार को समझने में आसानी होती है।

4. 1. स्वाभाविक निरीक्षण

2. अस्वाभाविक या नियत्रिंत निरीक्षण

5 एक निरीक्षण तभी अच्छा कहा जा सकता है जबकि किसी उद्देश्य की पूर्ति करता हो, व्यवस्थित हो, व्यवहार का सावधानीपूर्ण व गहन अभिलेखन किया गया हो। निरीक्षणकर्ता अपने पूर्वाग्रह से मुक्त होकर वस्तुनिष्ठ तरीके से निरीक्षण करें।

6. स्वतंत्र चर वे चर कहलाते है जिनका नियंत्रण प्रयोगकर्ता के हाथ में होता है। इसके प्रभाव का अध्ययन प्रयोग में किया जाता है जबकि स्वतंत्र चर के प्रभाव का अध्ययन जिस चर पर किया जाता है वह परतंत्र चर कहलाता है।

7. मध्यस्थ चरों के प्रभाव को कम करने की विधिया –

- चरों को स्थिर करके।
- मिलान द्वारा
- चर का विलोपन करके
- प्रति संतुलन क्षरा

8. (क) प्रयोगात्मक विधि में परिस्थितियों को नियंत्रण करना कठिन होता है।

(ख) प्रयोगकर्ता पूर्वाग्रह तथा प्रतिदर्श पूर्वाग्रह

9. प्रयोगात्मक प्रारूप एक ब्लू प्रिन्ट की तरह होता है जो स्वतंत्र चर में जोड़–तोड़ करने का ढंग तथा नियंत्रित चर के प्रभाव को रोकने का ढंग आदि के बारे में प्रयोग जानकारी को प्रदान करके अधिक वैज्ञानिक बनाता है।

10. क्रास सेक्शन विधि में एक ही समय पर विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों को लेकर उनका अध्ययन किया जाता है जबकि लम्बवर्तीय विधि में एक ही समूह को लेकर दीर्घकालीन अध्ययन किया जाता है।

11. विकासात्मक विधि की आवश्यकता व्यक्ति के विकास व वृद्धि के स्तर का अध्ययन करने के लिये किया जाता है।

12. असामान्य व्यवहार का अध्ययन करने के लिये मैदानिक या उपचारात्मक विधि का प्रयोग करना चाहिये। असामान्य व्यवहार के कारणों का अध्ययन करने के लिये व उनका उपचार करने के लिये इस विधि की आवश्यकता होती है।

13. जीवन वृत्त अध्ययन विधि के माध्यम से किसी इकाई का गहन व विस्तृत अध्ययन किया जाता है। इकाई के रूप में कोई व्यक्ति, संस्था या कोई घटना कुछ भी हो सकता है।

14. जीवन–वृत्त अध्ययन विधि की आवश्यकता तब पड़ती है जबकि किसी इकाई के बारे में विस्तृत व गहन जानकारी की आवश्यकता होती है। उस इकाई पर पड़ने वाले सम्पूर्ण सामाजिक, आर्थिक, जैविक आदि कारकों की जानकारी जीवन–वृत्त अध्ययन विधि के माध्यम से ही मिल पाती है।

2.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Skinner, C.E. (2004): Educational Psychology, 4th edition. Prentice Hall of India, New Delhi.

Agarwal, J.C. (2002): Essentials of Educational Psychology. Vikas Publishing House, New Delhi.

Singh, A.K. (1994): शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।

इकाई 3 मनोविज्ञान के स्कूलों का शिक्षा में योगदान

संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 मनोविज्ञान के सम्प्रदाय

3.4 संरचनावाद

3.5 संरचनावाद का शिक्षा में योगदान

3.6 कार्यवाद

3.7 कार्यवाद का शिक्षा में योगदान

3.8 व्यवहारवाद

- 3.8.1 वाटसन का व्यवहारवाद
- 3.8.2 उत्तर कालीन व्यवहारवाद

3.9 व्यवहारवाद का शिक्षा में योगदान

3.10 मनोविश्लेषण वाद

3.11 मनोविश्लेषण की विशेषतायें

- 3.11.1 स्थलाकृतिक संरचना
- 3.11.2 संरचनात्मक माडल
- 3.11.3 दुश्चिंता एवं मनोरचनायें

3.12 मनोविश्लेषणवाद का शिक्षा में योगदान

3.13 गेस्टाल्ट मनोविज्ञान

- 3.13.1 प्रत्यक्षण
- 3.13.2 सीखना
- 3.13.3 चिन्तन
- 3.13.4 स्मृति

3.14 गेस्टाल्टवाद का शिक्षा में योगदान

3.15 हारमिक मनोविज्ञान

3.16 हारमिक मनोविज्ञान का शिक्षा में योगदान

3.17 सारांश

3.18 अभ्यास कार्य

3.19 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.20 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

इकाई 2 में शिक्षा मनोविज्ञान की अध्ययन विधियों का अध्ययन किया गया है। इकाई 3 में मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदाय कौन से है व उनका शैक्षिक योगदान क्या है ? इसका अध्ययन करेंगे। मानव व्यवहार के बारे में एक स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करना मनोविज्ञान का मुख्य उद्धेश्य है। एक शिक्षक की प्रभाशीलता तभी स्थापित हो पाती है जबकि शैक्षिक परिस्थितियों में शिक्षार्थी के व्यवहार को ठीक प्रकार से समझ सके। जिससे अध्यापक ऐसा सख्त रवैया ना अपनाये जोकि शिक्षार्थी पर ऋणात्मक प्रभाव डाले। मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदाय मनाव व्यवहार की अलग–अलग व्याख्या करते है। ये विभिन्न सम्प्रदाय इस बात को बताते है कि मनोविज्ञान के अंदर क्या–क्या है। कौन–कौन सी अध्ययन सामग्री है ? यह अध्ययन सामग्री शैक्षिक परिपेक्ष्य में इसके महत्व को इंगित करती हैं। इस इकाई में मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को बताते हुये इनके शैक्षिक योगदान का ज्ञान कराया गया है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि:

- मनोविज्ञान के सम्प्रदाय का अर्थ समझ सकेगें।
- मनोविज्ञान के इतिहास से परिचित हो सकेंगे।
- मनोविज्ञान के विभिन्न स्कूलों की विचारधारा से परिचित हो सकेंगे।
- मनोविज्ञान के सम्प्रदाय का शैक्षिक महत्व समझ सकेंगे।
- मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे।

3.3 मनोविज्ञान के सम्प्रदाय

एबिंगहास के अनुसार, "मनोविज्ञान का अतीत लम्बा है परन्तु इतिहास छोटा है।" मनोविज्ञान के तथ्यों की जानकारी पौराणिक ग्रीक दर्शनशास्त्र से मिलते है। लेकिन एक स्वतंत्र शाखा के रूप में 1879 ई0 में मनोविज्ञान की स्थापना हुई। 1879 के बाद तथा बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो में कई मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान की विषय–वस्तु तथा उसके अध्ययनविधि के बारे में करीब–करीब एक

जैसे विचार व्यक्त किये है तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों ने इनके विचारों का विरोध **किया** । एक समान विचारधारा वाले लोगों को एक सम्प्रदाय के अन्तर्गत रखा गया। इन सम्प्रदायों को ही मनोविज्ञान के स्कूल की ही संज्ञा दी गयी।

मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदाय निम्नलिखित है.

1) संरचनावाद

2) प्रकार्यवाद

3) व्यवहारवाद

4) मनोविश्लेषण

5) गेसटाल्ट मनोविज्ञान

6) हारमिक मनोविज्ञान

बोध प्रश्न

टिप्पणी: क) अपने उत्तरों की नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों में से अपने उत्तर मिलाइए।

1) मनोविज्ञान के सम्प्रदाय से क्या तात्पर्य है ?

....

....

....

2) मनोविज्ञान के प्रमुख स्कूलों के नाम लिखिए?

....

....

....

3.4 संरचनावाद

मनोविज्ञान को दर्शनशास्त्र से अलग करके क्रमबद्ध अध्ययन करने का श्रेय संरचनावाद को जाता है। जिसके प्रवर्तक विलियम बुण्ट (1832–1920) के शिवाय ई0बी0 टिचनर (1867–1927) थे। इन्होंने अमेरिका के कार्नेल विश्वविद्यालय में इसकी शुरूआत करी। बुण्ट ने मनोविज्ञान के स्वरूप को प्रयोगात्मक बनाया जब 1879 में लिपजिंग विश्वविद्यालय में मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला की स्थापना करी। बुण्ट ने मनोविज्ञान को चेतन अनुभूति का अध्ययन करने वाला माना। जिसे मूलतः दो तत्वों में विश्लेषित किया जा सकता था। वे दो तत्व थे–

संवेदन तथा भाव। बुण्ट ने चेतन को वस्तुनिष्ठ तत्व बताया। बुण्ट का विचार था कि प्रत्येक भाव का अध्ययन तीन विभाओं में अवस्थित किया जा सकता है उत्तेजना–शांत, तनाव–शिथिलन तथा सुखद–दुःखद। इसे भाव का त्रिविमीय सिद्धान्त कहा गया। टिचनर ने बुण्ट की विचारधारा को उन्नत बनाते हुये कहा कि चेतना के दो नहीं तीन तत्व होते है– संवेदन, प्रतिमा तथा अनुराग। टिचनर ने बुण्ट के समान अन्त निरीक्षण को मनोविज्ञान की एक प्रमुख विधि माना है। बुण्ट ने चेतना के तत्वों की दो विशेषताएं बतायी थी– गुण तथा तीव्रता। टिचनर ने इनकी संख्या चार कर दी– गुण, तीव्रता, स्पष्टता तथा अवधि। टिचनर ने ध्यान प्रत्यक्षण, साहचर्य, संवेद आदि क्षेत्रों में भी अपना योगदान दिया।

3.5 संरचनावाद का शिक्षा में योगदान

1. संरचनावाद का योगदान शिक्षा तथा शिक्षा मनोविज्ञान के लिये प्रत्यक्ष ना होकर परोक्ष रूप में है। संरचनावाद ने सर्वप्रथम मनोविज्ञान को दर्शनशास्त्र से अलग करके इसके स्वरूप प्रयोगात्मक बनाया। जिससे मनोविज्ञान की हर शाखा जिसमें शिक्षा मनोविज्ञान भी शामिल था, का स्वरूप प्रयोगात्मक हो गया।

2. मनोविज्ञान का स्वरूप प्रयोगात्मक होने से शिक्षा की नयी पद्धति के बारे में शिक्षकों को सोचने की चेतना आयी। अन्तनिरीक्षण विधि को प्रयोग शिक्षार्थी की मानसिक दशाओं का जैसे ध्यान, सीखना, चिंतन आदि प्रक्रियाओं का अध्ययन करने में प्रारंभ कर दिया।

3. शिक्षा में उन पाठ्यक्रमों को अधिक महत्व दिया जाने लगा जिससे शिक्षार्थियों के चिन्तन, स्मरण, प्रत्यक्षण एवं ध्यान जैसी मानसिक क्रियाओं का समुचित विकास तथा उनका प्रयोगात्मक अध्ययन संभव हो।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: क) अपने उत्तरों की नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों में से अपने उत्तर मिलाइए।

3) मनोविज्ञान का स्वरूप प्रयोगात्मक कैसे बना ?

....

....

....

4) मनोविज्ञान में संरचनावादी स्कूल के प्रवर्तक के रूप में बुण्ट की विचारधारा बताइए ?

....

....

....

5) संरचनावाद का शिक्षा में योगदान बताइए ?

....

....

....

3.6 कार्यवाद

मनोविज्ञान में कार्यवाद एक ऐसा स्कूल या सम्प्रदाय है जिसकी उत्पत्ति संरचनावाद के वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक उपागम के विरोध में हुआ। विलियम जेम्स (1842–1910) द्वारा कार्यवाद की स्थापना अमरीका के हारवर्ड विश्वविद्यालय में की गयी थी। परन्तु इसका विकास शिकागो विश्वविद्यालय में जान डीवी (1859–1952) जेम्स आर एंजिल (1867–1949) तथा हार्वे ए0 कार (1873–1954) के द्वारा तथा कोलम्बिया विश्वविद्यालय के ई0एल0 थार्नडाइक तथा आर0एफ0 बुडवर्थ के योगदानों से हुयी।

कार्यवाद में मुख्यतः दो बातों पर प्रकाश डाला– व्यक्ति क्या करते है ? तथा व्यक्ति क्यों कोई व्यवहार करते है ? बुडवर्थ (1948) के अनुसार इन दोनों प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ने वाले मनोविज्ञान को कार्यवाद कहा जाता हैं। कार्यवाद में चेतना को उसके विभिन्न तत्वों के रूप में विश्लेषण करने पर बल नहीं डाला जाता बल्कि इसमें मानसिक क्रिया या अनुकूली व्यवहार के अध्ययन को महत्व दिया जाता है। अनुकूली व्यवहार में मूलतः प्रत्यक्षण स्मृति, भाव, निर्णय तथा इच्छा आदि का अध्ययन किया जाता है क्योंकि इन प्रक्रियाओं द्वारा व्यक्ति को वातावरण में समायोजन में मदद मिलती है।

कार्यवादियों ने साहचर्य के नियमों जैसे समानता का नियम, समीपता का नियम तथा बारंबारता का नियम प्रतिपादित किया जोकि सीखने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका बनाता है।

कोलम्बिया कार्यवादियों में ई0एल0 थार्नडाइक व आर0एस0 वुडवर्थ का योगदान सर्वाधिक रहा। थार्नडाइक ने एक पुस्तक शिक्षा मनोविज्ञान लिखी जिसमें

इन्होंने सीखने के नियम लिखे हैं। थार्नडाइक के अनुसार मनोविज्ञान उछीपन–अनुक्रिया सम्बन्धों के अध्ययन का विज्ञान है। थार्नडाइक ने सीखने के लिये संबंधवाद का सिद्धान्त दिया। जिसके अनुसार सीखने में प्रारम्भ में त्रुटिया अधिक होती है। किन्तु अभ्यास देने से इन त्रुटियों में धीरे–धीरे कमी आ जाती है।

वुडवर्थ ने अन्य कार्यवादियों के समान मनोविज्ञान को चेतन तथा व्यवहार के अध्ययन का विज्ञान माना। इन्होनें सीखने की प्रक्रिया को काफी महत्वपूर्ण बताया क्योंकि इससे यह पता चलता है कि सीखने की प्रक्रिया क्यों की गयी। वुडवर्थ ने उद्दीपक–अनुक्रिया (एस0आर0) के सम्बन्ध में परिवर्तन करते हुये प्राणी की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हुये उद्दीपक–प्राणी–अनुक्रिया (S.O.R.) सम्बन्ध को महत्वपूर्ण बताया।

3.7 कार्यवाद का शिक्षा में योगदान

1. कार्यवाद ने मानव व्यवहार को मूलतः अनुकूली तथा लक्ष्यपूर्ण बताया। अतः स्कूलों का प्रमुख लक्ष्य बच्चों को समाज में समायोजित करना होना चाहिये। सीखने की प्रक्रिया में वातावरण की महत्ता पर बल दिया गया। अतः अध्यापकों का यह प्रयास होना चाहिये कि विद्यार्थियों को स्वस्थ वातावरण प्रदान किया जाये जोकि उनकी सीखने की प्रक्रिया को प्रेरित करें।

2. इस विचारधारा ने पहले से चले आ रहे सैद्धान्तिक प्रत्ययों जोकि पाठ्यक्रम के अंग थे, में क्रांतिकारी बदलाव लाये। स्कूल पाठ्यक्रम में करके सीखना (Learnning by doing) पर बल दिया जाने लगा।

3. शिक्षार्थियों की क्षमता में वैयक्तिक भिन्नता पर बल डाला गया।

4. कार्यवाद ने अलग–अलग आयु स्तरों के बच्चों की आवश्यकतायें भिन्न–भिन्न होती है, इस बात पर बल दिया।

5. कार्यवाद ने शिक्षा में उपयोगिता सिद्धान्त को जन्म दिया। इसने सीखने की प्रक्रिया में बालक की महता पर बल दिया। पाठ्यक्रम में केवल उन्हीं विषयों को सम्मिलत करना चाहिये जिनकी समाज में उपयोगिता हो।

6. इस स्कूल ने शिक्षा में वैज्ञानिक जानकारी पर बल डाला। साथ ही शिक्षण व सीखने के लिये नयी विधियों जैसेः कार्य क्रमित सीखना (Programmed Learning) जैसी शिक्षण विधि को विकसित किया।

7. कार्यवाद में विशेषकर थार्नडाइक ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षक को

अध्यापन कार्य करने के पहले शैक्षिक उद्देश्यों को परिभाषित कर लेना चाहिए। तभी शिक्षार्थी के व्यवहार में परिवर्तन ला सकते है।

शिक्षक को उन परिस्थितियों पर अधिक बल डालना चाहिये जो आम जीवन में अक्सर देखे जाते है तथा उन अनुक्रियाओं पर बल डालना चाहिये जिनकी जीवन में आवश्यकता हो।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अन्त में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

6) थार्नडाइक का सम्बन्धवाद का सिद्धान्त क्या है ?

....

....

....

7) मनोवैज्ञानिक वुडवर्थ की विचारधारा स्पष्ट करे।

....

....

....

3.8 व्यवहारवाद

व्यवहारवाद मनोविज्ञान का एक ऐसा स्कूल है जिसकी स्थापना जे0बी0 वाटसन द्वारा 1913 में जान हापीकन्स विश्वविद्यालय में की गयी। इस स्कूल की स्थापना संरचनावाद तथा कार्यवाद जैसे सम्प्रदायों के विरोध में वाटसन द्वारा की गयी। वह स्कूल अपने काल में विशेषकर 1920 ई0 के बाद अधिक प्रभावशाली रहा जिसके कारण इसे मनोविज्ञान मे द्वितीय बल के रुप में मान्यता मिली।

वाटसन ने 1913 में साइकोलाजिकल रिव्यू में एक विशेष शीर्षक Psychology as the behouristic view it के तहत प्रकाशित किया गया। यही से व्यवहारवाद का औपचारिक शुभारम्भ माना जाता है।

3.8.1 वाटसन का व्यवहारवाद

जे0वी0 वाटसन ने व्यवहारवाद के माध्यम से मनोविज्ञान में क्रान्तिकारी

विचार रखे। वाटसन का मत था कि मनोविज्ञान की विषय–वस्तु चेतन या अनुभूति नहीं हो सकता है। इस तरह के व्यवहार का प्रेक्षण नहीं किया जा सकता है। इनका मत था कि मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। व्यवहार का प्रेक्षण भी किया जा सकता है तथा मापा भी जा सकता है। उन्होने व्यवहार के अध्ययन की विधि के रूप में प्रेक्षण तथा अनुबंधन को महत्वपूर्ण माना। वाटसन ने मानव प्रयोज्यों के व्यवहारों का अध्ययन करने के लिये शाब्दिक रिपोर्ट की विधि अपनायी जो लगभग अन्तर्निरीक्षण विधि के ही समान है।

वाटसन ने सीखना, संवेग तथा स्मृति के क्षेत्र में कुछ प्रयोगात्मक अध्ययन किये जिनकी उपयोगिता तथा मान्यता आज भी शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में अधि ाक है। व्यवहारवाद के इस धनात्मक पहलू को आनुभविक व्यवहारवाद कहा जाता है। वाटसन के व्यवहारवाद का ऋणात्मक पहलू वुण्ट तथा टिचनर के संरचनावाद को तथा एंजिल के कार्यवाद को अस्वीकृत करना था। 1919 ई0 में वाटसन ने अपने व्यवहारवाद की तात्विक स्थिति को स्पष्ट किया जिसमें चेतना या मन के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया गया। इसे तात्विक व्यवहारवाद कहा गया।

वाटसन ने सीखना, भाषा विकास, चिन्तन, स्मृति तथा संवेग के क्षेत्र में जो अध्ययन किया वह शिक्षा मनोविज्ञान के लिये काफी महत्वपूर्ण है।

वाटसन व्यवहार को अनुवंशिक न मानकर पर्यावरणी बलों द्वारा निर्धारित मानते थे। वे पर्यावरणवाद के एक प्रमुख हिमायती थे। उनका कथन "मुझे एक दर्जन स्वस्थ बच्चे दे, आप जैसा चाहे मै उनको उस रूप में बना दूंगा।" यह उनके पर्यावरण की उपयोगिता को सिद्ध करने वाला कथन है।

वाटसन का मानना था कि मानव व्यवहार उदीपक- अनुक्रिया (S-R) सम्बन्ध को इंगित करता है। प्राणी का प्रत्येक व्यवहार किसी न किसी तरह के उद्दीपक के प्रति एक अनुक्रिया ही होती है।

3.8.2 उत्तरकालीन व्यवहारवाद

वाटसन के बाद भी व्यवहारवाद को आगे बढ़ाने का प्रयास जारी रहा और इस सिलसिले में हल स्कीनर, टालमैन और गथरी द्वारा किया गया प्रयास काफी सराहनीय रहा। स्कीनर द्वारा क्रिया प्रसूत अनुबन्धन पर किये गये शोधों में अधिगम तथा व्यवहार को एक खास दिशा मे मोड़ने एवं बनाये रखे में पुनर्बलन के महत्व पर बल डाला गया है। कोई भी व्यवहार जिसके करने के बाद प्राणी को पुनर्बलन मिलता है या उसके सुखद परिणाम व्यक्ति में उत्पन्न होते है, तो प्राणी उस व्यवहार को फिर दोबारा करने की इच्छा व्यक्त करता है। गथरी ने अन्य बातों के

अलावा यह बताया कि सीखने के लिये प्रयास की जरूरत नहीं होती और व्यक्ति एक ही प्रयास में सीख लेता है। इसे उन्होने इकहरा प्रयास सीखना की संज्ञान दी। गथरी ने इसकी व्याख्या करते हुये बताया कि व्यक्ति किसी सरल अनुक्रिया जैसे पेंसिल पकड़ना, माचिस जलाना आदि एक ही प्रयास में सीख लेता है। इसके लिये उसे किसी अभ्यास की जरूरत नही होती। परन्तु जटिल कार्यो को सीखने के लिये अभ्यास की जरूरत होती है। गथरी ने एक और विशेष तथ्य पर प्रकाश डाला जो शिक्षा के लिये काफी लाभप्रद साबित हुआ और वह था बुरी आदतों से कैसे छुटकारा पाया जाए। इसके लिए गथरी ने निम्नांकित तीन विधियों का प्रतिपादन किया –

- सीमा विधि
- थकान विधि
- परस्पर विरोधी उद्दीपन की विधि

3.9 व्यवहारवाद का शिक्षा में योगदान

पी0 साइमण्ड ने शिक्षण व अधिगम के क्षेत्र में व्यवहारवाद की उपयोगिता बताते हुये कहा कि सीखने में पुरस्कार (पुर्नबलन) की महती भूमिका है। जिसकी जानकारी एक अध्यापक के लिये होना आवश्यक है। अध्यापक द्वारा प्रदत्त पुनर्बलन बच्चों के भविष्य की गतिविधियों के क्रियान्वयन में निर्देशन का कार्य करता है। अध्यापक द्वारा मात्र सही या गलत की स्वीकृति ही बच्चे के लिये पुरस्कार का कार्य करती है।

व्यवहारवाद का शिक्षा के क्षेत्र में योगदान निम्नलिखित है –

1. व्यवहारवाद ने जो विधियां व तकनीक प्रदान करी उनसे बच्चों के व्यवहार को समझने में काफी मदद मिली।
2. सीखने और प्रेरणा के क्षेत्र में व्यवहारवाद ने जो विचार प्रस्तुत किये वे अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
3. बच्चों के संवेगों का प्रयोगात्मक अध्ययन करके व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने इनके संवेगात्मक व्यवहार को समझने का ज्ञान प्रदान किया।
4. व्यवहारवाद ने मानव व्यवहार पर वातावरणीय कारकों की भूमिका पर विशेष जोर दिया। वाटसन ने पर्यावरणी कारकों को बच्चों के वयक्तित्व विकास में काफी महत्वपूर्ण बताया। वाटसन का यह कथन कि यदि उन्हें एक दर्जन भी स्वस्थ बच्चे दिये जाते है तो वे उन्हें चाहे तो डाक्टर,

इंजीनियर, कलाकार या भिखारी कुछ भी उचित वातावरण प्रदान कर बना सकते है, ने वातावरण की भूमिका पर विशेष प्रकाश डाला।

5. स्किनर द्वारा सीखने के लिये जो नयी विधि कार्यक्रमित सीखना दी गयी, ने शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में हलचल मचा दिया। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस विधि को अत्यन्त महत्वपूर्ण माना है और अनेक तरह के पाठों को सिखाने में उन्हें सफलता भी मिली।

6. कुसमायोजित बालकों के समायोजन के लिए व्यवहारवाद द्वारा जो विधि यां दी गयी वे अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

7. व्यवहारवाद ने मानव व्यहवार को समझने के लिये पूर्ववर्ती समस्त वाद जोकि मानसिक प्रक्रियाओं पर बल देते थे के विवाद का अंत किया।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

8) व्यवहारवाद को द्वितीय बल की संज्ञा क्यों प्रदान की गयी ?

....

....

....

9) इकहरा प्रयास सीखना किस प्रकार का सीखना है ?

....

....

....

10) सीखने में पुनर्बलन की भूमिका बताइए।

....

....

....

3.10 मनोविश्लेषणवाद

मनोविश्लेषण का प्रयोग मनोविज्ञान में तीन अर्थो में होता है मनोविश्लेषण मनोविज्ञान का एक स्कूल है, मनोविश्लेषण व्यक्तित्व का एक सिद्धान्त है तथा

मनोविश्लेषण मनोचिकित्सा की एक विधि है।

मनोविज्ञान के एक स्कूल के रूप में मनोविश्लेषण की स्थापना साइमण्ड फ्रायड (1856–1932) द्वारा नैदानिक परिस्थितियों में की गयी। मनोविज्ञान पर इस स्कूल का काफी प्रभाव पड़ा था। इसी कारण मनोवैज्ञानिक ने इसे प्रथम बल कहा। व्यवहारवादियों द्वारा व्यवहार की व्याख्या करने में अप्रेक्षणीय मानसिक बलों को पूर्णतः अस्वीकृत कर दिया था, वहीं साइमण्ड फ्रायड ने ऐसे अदृश्य एवं अचेतन मानसिक बलों को मानव प्रकृत्ति तथा व्यवहार को समझने के लिये काफी महत्वपूर्ण बताया।

3.11 मनोविश्लेषणवाद की विशेषतायें

मनोविश्लेषणवाद के विभिन्न पहलू निम्नांकित है –

3.11.1 स्थलाकृतिक संरचना

फ्रायड ने मन के तीन स्तरों का वर्णन किया है–चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन। मन के चेतन में वैसी अनुभूति होती है जिससे व्यक्ति वर्तमान समय में पूर्णतः अवगत रहता है। अर्द्धचेतन में वैसी अनुभूतियां संचित होती है जिनमें व्यक्ति वर्तमान समय में अवगत तो नहीं रहता है। परन्तु थोड़ी कोशिश करने पर उससे अवगत हो सकता है। अचेतन में वैसी अनुभूतियां संचित होती है जिनसे व्यक्ति वर्तमान समय में अवगत तो नही रहता है, परन्तु थोड़ा कोशिश करने पर उससे अवगत हो सकता है। अचेतन में वैसी अनुभूतियां, इच्छाएं आदि होती है जो कभी चेतन में थी लेकिन प्रायः असामाजिक होने के कारण चेतन से दमित कर दी गयी और अचेतन स्तर पर चली गयी। फ्रायड ने चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन में से, अचेतन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। यह भी माना है कि व्यक्ति का व्यवहार अचेतन की प्रेरणाओं द्वारा निर्धारित होता है।

3.11.2 संरचनात्मक माडल

फ्रायड ने मानव व्यक्तित्व के तीन भाग बताये – उपाहं, अहं तथा पराहं। उपाहं मूल प्रवृत्तियों का भण्डार होता है और यह आनन्द के नियम द्वारा संचालित होता है तथा यह पूर्णतः अचेतन होता है। उपाह केवल आनन्द प्राप्त करना चाहता है। अतः उपाहं में जो इच्छाए उत्पन्न होती है उनका मुख्य लक्ष्य सुख की प्राप्ति करना होता है। चाहे वह इच्छा सामाजिक दृष्टिकोण से उचित हो या अनुचित अथवा नैतिक दृष्टिकोण से नैतिक हो या अनैतिक हो। उनके व्यक्तित्व में होती है। अहं व्यक्तित्व का कार्यपालक होता है तथा यह वास्तविकता

के नियम द्वारा संचालित होता है। अहं को समय तथा वास्तविकता का ज्ञान होता है। पराहं व्यक्तित्व का नैतिक कमाण्डर होता है। यह नैतिकता के नियम द्वारा संचालित होता है। पराहं आदर्शो एवं नैतिकताओं का भंडार होता है तथा बच्चों के समाजीकरण में यह प्रमुख भूमिका निभाता है।

3.11.3 दुश्चिंता एवं मनोरचनाएं

फ्रायड के अनुसार दुश्चिंता एक दुःखद अवस्था है जो व्यक्ति को आने वाले खतरों से आगाह करता है। इन्होने दुश्चिंता के तीन प्रकार बताये – वास्तविक दुश्चिंता, तंत्रिकातापी दुश्चिंता तथा नैतिकता संबंधी दुश्चिंता। वाह्य वातावरण में मौजूद खतरों जैसे आग, सांप, भूकम्प आदि से जब व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न होती है तो उसे वास्तविक दुश्चिंता कहते है। तंत्रिकातापी दुश्चिंता में व्यक्ति को उपाहं प्रवृत्तियों से खतरा उत्पन्न हो जाता है। नैतिकता–संबंधी दुश्चिंता में अहं को पराहं से दंडित कये जाने की धमकी मिलती है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति में आत्मदोष, लज्जा आदि जैसी मानसिक स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इन चिंताओं से बचने के लिये व्यक्ति विभिन्न तरह ही मनोरचनाओं का सहारा लेता है। इन मनोरचनाओं में दमन युक्त्याभास, प्रक्षेपण, आत्मीकरण आदि मुख्य है।

3.12 मनोविश्लेषणवाद का शिक्षा में योगदान

1. शिक्षा में अचेतन प्रेरणाओं का बड़ा महत्व बताया गया है। इससे शिक्षार्थियों के उन व्यवहारों को समझने में शिक्षा मनोवैज्ञानिक को काफी मदद मिलती है जो ऊपर से देखने में बिना कारण लगते है। बालक द्वारा किया गया कोई भी कार्य जिसे बालक व्यक्त नहीं कर पाता है। इन्हीं अचेतन की प्रेरणाओं में छिपा रहता है।

2. मनोविश्लेषणवाद ने एक बच्चे के जीवन की प्रारम्भिक अनुभूतियों व अनुभवों पर काफी बल दिया है जोकि उसकी शैक्षिक प्रक्रिया को प्रभावित करता है। बच्चे को जो भी अनुभव अपने जीवन के पांच वर्षो में मिलते है वे ही उसके व्यक्तित्व की नीवं रखते है। यदि जीवन के आरम्भिक वर्षो में बच्चे को प्यार स्नेह और सहानुभूति मिलती है तो जीवन के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति का जन्म होता है। इसके विपरीत यदि ऋणात्मक व दण्डात्मक पुनर्वलन की अधिकता होती है तो भविष्य के लिये खतरा उत्पन्न हो जाता है।

3. मनोविश्लेषणवाद ने बच्चों के लिये विरेचन प्रक्रिया को महत्त्वपूर्ण बताया। बच्चों को कक्षा के अन्दर व बाहर अपने संवेगों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

4. मनोविश्लेषणवाद ने शिक्षा मनोवैज्ञानिकों को समस्यात्मक बालकों के कारणों तथा इन्हीं बच्चों को पुनः समायोजित करने में मदद दी।

5. इस वाद ने शिक्षा प्रक्रिया में संवेगों की भूमिका पर विशेष बल दिया।

6. व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास में स्वतन्त्र भावनाओं की अभिव्यक्ति का विशेष महत्व होता है। मनोविश्लेषणवाद ने इस स्वतंत्रता पर विशेष बल ड़ाला।

7. बाल्यकालीन अनुभवों का मानव व्यक्तित्व पर विशेष प्रभाव होता है। इसी कारण शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने बाल्यकालीन शैक्षिक व्यवस्था पर विशेष बल दिया।

8. विद्यार्थी जीवन में अध्यापक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यार्थियों के साथ बने अध्यापक के अन्तवैयक्तिक सम्बन्ध ही उनके व्यवहार को प्रभावित करते है और जीवन के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति विकसित करने में मदद करता है। अतः अध्यापकों का व्यवहार विद्यार्थियों के प्रति धनात्मक होना चाहिये।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

11) मनोविश्लेषणवाद को प्रथम बल की संज्ञा क्यों प्रदान की गयी ?

....

....

12) अहं, उपाहं तथा पराहं के बीच सेतु का कार्य कैसे करता है ?

....

....

....

13) मनोरचना से क्या समझते है और उनकी मानव के लिये क्या आवश्यकता है ?

....

....

....

14) बच्चे के जीवन के प्रारम्भिक अनुभव कैसे उसके व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करते है?

....

....

....

3.13 गेस्टाल्ट मनोविज्ञान

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान की स्थापना जर्मनी में मैक्स बरदाईमर द्वारा 1912 ई0 में की गयी। इस स्कूल के विकास में दो अन्य मनोवैज्ञानिकों, कर्ट कौफ्का (1887–1941) तथा ओल्फगैंग कोहलर (1887–1967) ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस स्कूल की स्थापना वुण्ट व टिचनर की आणुविक विचारधारा के विरोध में हुआ था। इस स्कूल का मुख्य बल व्यवहार में सम्पूर्णता के अध्ययन पर है। इस स्कूल में अंश की अपेक्षा सम्पूर्ण पर बल देते हुये बताया कि यद्यपि सभी अंश मिलकर सम्पूर्णता का निर्माण करते है। परन्तु सम्पूर्णता की विशेषताएं अंश की विशेषताओं से भिन्न होती है। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने इसे गेस्टाल्ट की संज्ञा दी। जिसका अर्थ प्रारूप आकार या आकृति बताया। इस स्कूल द्वारा प्रत्यक्षण के क्षेत्र में प्रयोगात्मक शोध किए गए है। जिससे प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का नक्शा ही बदल गया। प्रत्यक्षण के अतिरिक्त इन मनोवैज्ञानिकों ने सीखना, चिंतन तथा स्मृति के क्षेत्र में काफी योगदान दिया। जिसने शिक्षा मनोविज्ञान को अत्यधिक प्रभावित किया।

3.13.1 प्रत्यक्षण

प्रत्यक्षण के क्षेत्र में किये गये प्रयोगों ने गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के महत्व को बढ़ा दिया। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्षण के निम्न सिद्धान्त बताये–

1. प्रैगनैन्ज का नियम– इस नियम को उत्तम आकृति का नियम भी कहा जाता है। यह नियम इस बात को इंगित करता है कि व्यक्ति देखे गये उददीपनों को एक संतुलित एवं समकित आकृति के रूप में प्रत्यक्षण करता है, जबकि उद्दीपन पैटर्न इतना संतुलित व समकित नही भी हो सकता है।

2. समानता का नियम – इस नियम में इस बात पर बल डाला है कि वस्तु जिनकी संरचना समान होती है, उसे व्यक्ति एक साथ संगठित कर एक प्रत्यक्षणात्मक समग्रता के रूप में प्रत्यक्ष करता है।

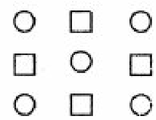

3. समीप्थता का नियम – इस नियम के अनुसार वे सभी वस्तुएं जो समय तथा स्थान में एक–दूसरे से नजदीक होते है, उसे व्यक्ति प्रतयक्षणात्मक रूप में संगठित कर प्रत्यक्षण करता है।

4. निरन्तरता का नियम – इस नियम के अनुसार वस्तुओं में एक दिशा में आगे बढ़ते रहने की निरन्तरता बनी रहती है, उसे व्यक्ति एक संगठित आकृति वाला तस्वीर के रूप में प्रत्यक्षण करता है।

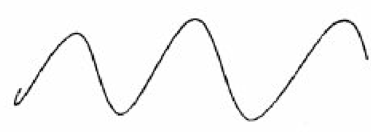

5. आकृति पृष्ठभूमि का नियम – यह नियम इस तथ्य पर बल डालता है कि प्रत्यक्षण किसी आकृति के रूप में संगठित हो जाती है जो एक निश्चित पृष्ठभूमि पर दिखायी देती है। आकृति का एक मुख्य गुण यह होता है कि यह स्पष्ट एवं उत्कृष्ट होती है तथा पृष्ठभूमि तुलनात्मक रूप से अस्पष्ट एवं अनुकृष्ट होते है। पलटावी आकृति में आकृति कभी पृष्ठभूमि में और पृष्ठभूमि कभी आकृति के रूप में पलटते हुए देख पड़ता है।

3.13.2 सीखना

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने सीखने के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण प्रयोगात्मक अध्ययन करके सीखने की एक नयी अन्तर्दृष्टि विधि प्रदान की । इन लोगों ने यह स्पष्ट किया कि सीखना एक तरह का क्षेत्र का प्रत्यक्षणात्मक संगठन होता है। जिसमें व्यक्ति परिस्थिति को नये ढंग से देखता है। इन लोगों ने भी यह स्पष्ट किया कि प्राणी प्रयत्न एवं भूल से नही बल्कि सूझ से सीखता है। सूझ व्यक्ति में किसी समस्या का समाधान करते समय या किसी पाठ को सीखते समय प्रायः अचानक विकसित होती है और व्यक्ति उद्धीपनों के बीच के संबन्धों के अर्थपूर्ण संबंध को समझ जाता है। इससे सीखने की प्रक्रिया में तेजी आ जाती है। इसलिये गेस्टाल्टवादियों का मत था कि सीखना भी अचानक होता है न कि अभ्यास के साथ क्रमिक ढंग से धीरे–धीरे होता है। गेस्टाल्टवादियों ने सूझपूर्ण सीखना के चार व्यवहारात्मक सूचकांक बतलाये–किंकर्त्तव्य विमुढता से अचानक पूर्णता की ओर, अन्तरण नियम को समझने के बाद निष्पादन में तेजी व सहजता, उत्तम धारण तथा समान समस्यात्मक परिस्थिति में तत्परता के साथ समाधान का अन्तरण। इस अंतिम प्रकार के अन्तरण को गेस्टाल्टवादियों ने पक्षान्तर कहा है।

3.13.3 चिन्तन

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन के क्षेत्र में अध्ययन कर शिक्षा मनोवज्ञान के लिये बहुत ही उपयोगी तथ्य प्रदान किया है। वरदाइमर ने चिन्तन प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन किया। अपनी एक पुस्तक प्रोडक्टीव थिंकिंग मे इन प्रयोगों को प्रकाशित किया। इनके अनुसार चिन्तन का अध्ययन समग्रता के रूप में किया जाना चाहिये। किसी समस्या के समाधान पर चिन्तन करते समय व्यक्ति को परिस्थिति के बारे में समग्रस्वरूप से ध्यान में रखना चाहिये। समस्या का समाधान समग्रता से अंश की ओर बढ़ना चाहिये।

बरदाइमर ने चिन्तन के तीन प्रकार बताये ए, बी तथा वाई। ए प्रकार का चिंतन एक तरह का उत्पादी चिन्तन है। जिसमें बालक लक्ष्य तथा उस पर पहुंचने के साधनों के बीच सीधा संबंध स्थापित कर पाता है। इस तरह के चिन्तन में बालक समस्या के विभिन्न पहलुओं का पुनर्सगठन करने में समर्थ हो पाते है। वाई प्रकार का चिन्तन ऐसा चिंतन है जिसमें प्रयत्न एवं भूल की प्रधानता होती है तथा समस्या के विभिन्न पहलुओं का आपसी संबंध बिना समझे–बूझे ही बालक

उसका समाधान करना प्रारम्भ कर देता है। वाई प्रकार का चिंतन अधिक होने से ए प्रकार का चिन्तन स्वभावतः कम हो जाता है। बी प्रकार का चिन्तन ऐसा चिंतन है जो अंशतः उत्पादी तथा अंशतः अनुत्पादी व यांत्रिक होता है।

3.13.4 स्मृति

गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति के क्षेत्र में प्रत्यक्षण के नियमों का उपयोग किया है। इन्होंने स्मृति को एक गत्यात्मक प्रक्रिया माना है। जिसमें समय बीतने के साथ–साथ कई तरह के क्रमिक परिवर्तन होते है। ऐसे क्रमिक परिवर्तन प्रत्यक्षणात्मक संगठन के नियम के अनुरूप होते है। विभिन्न प्रयोगात्मक अध्ययनों से इस बात की पुष्टि मनोवैज्ञानिकों ने की है। गिब्सन (1929), बार्टलैट (1932) एवं आलपोर्ट एवं पोस्टमैन (1947) ने अपने प्रयोगों से यह स्पष्ट किया कि मूल सामग्रियों की धारणा में समय बीतने के साथ विकृति होती है, परन्तु इस विकृति का स्वरूप ऐसा होता है जिससे मूल सामग्रियों का स्वरूप पहले से कुछ उन्नत हो जाता है। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों को गेस्टाल्टवादियों के इस योगदान से स्मृति के स्वरूप को समझने में काफी मदद मिली। इसी कारण इन लोगों ने स्मरण के स्वरूप को पुनरूत्पादक न कहकर रचनात्मक कहा है।

3.14 गेस्टाल्टवाद का शिक्षा में योगदान

1. गेस्टाल्टवादियों ने प्रत्यक्षण के नियमों का प्रयोग सीखने के क्षेत्र में भी किया। अतः अध्यापक को चाहिये कि वह शिक्षार्थी के सामने विषय सामग्री को पूर्ण रूप में प्रस्तुत करे।
2. गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने सर्वांगिक व्यवहार की महत्ता पर बल दिया। प्राणी द्वारा जो भी अनुभव प्राप्त किये जाते है वह उन्हें समग्र रूप में बताता है नाकि उद्दीपन–अनुक्रिया (S-R) संबन्धो के रूप में तोड कर।
3. व्यक्तित्व विकास में वातावरण की अग्रणी भूमिका पर बल दिया। अतः स्कूल का वातावरण ऐसा होना चाहिये जोकि बच्चे के व्यक्तित्व विकास में सहायक हों।
4. शिक्षार्थियों में सूझ उत्पन्न करने पर बल दिया गया। ताकि विद्यार्थी समस्यात्मक परिस्थिति का समाधान सूझ विधि से करके सीख सके।
5. सीखने के लिये यह आवश्यक है कि अधिगमार्थी को उद्धेश्यों और लक्ष्यों को जानकारी हो। अतः अध्यापक का प्रयास होना चाहिये कि विद्यार्थी स्वयं

के लिये एक वैयंक्तिक लक्ष्य निर्धारित करें। यह वैयक्तिक लक्ष्य शिक्षार्थी के समक्ष एक तनाव की स्थिति उत्पन्न कर देगा, जिससे विद्यार्थी उस तनाव को दूर करने के लिये सीखने के लिये सक्रिय हो जायेगा। इस प्रकार लक्ष्यों का निर्धारण व्यक्ति को सक्रिय बनाता है।

6. स्कूल में शिक्षण–अधिगम प्रक्रिया को उन्नत बनाने के लिये अध्यापक, प्रध ाानाचार्य और विद्यार्थियों को संगठित होकर कार्य करना चाहिये।

7. अध्यापकों को विद्यार्थियों के विचारों को जानने व समझने का प्रयास करना चाहिये। अपने विचारों को उन पर लादकर विद्यार्थियों के प्रत्यक्षण को प्रभावित नही करना चाहिये।

8. अध्यापक को पाठ्न सामग्री रूचिपूर्ण तथा समझ आने योग्य रूप में शिक्षार्थी के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिये। जो भी निर्देश दिये जाये अर्थपूर्ण होने चाहिये।

9. अध्यापकों को विद्यार्थी के सोचने को क्षमता या कार्यशैली की जानकारी होनी चाहिये। यदि कोई बच्चा अमूर्त चिंतन करने योग्य नहीं है तो साचां केतिक रूप में प्रस्तुत की गयी सूचनायें उसके लिये लाभदायक नहीं होगी।

10. अध्यापक को विद्यार्थियों के समक्ष सूचनायें इस तरह संगठित करके प्रस्तुत करनी चाहिये कि विद्यार्थी नये व पुराने अनुभवों की विवेचना करके उन्हें समझने योग्य हो जाये।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

15) उत्पादी चिंतन अन्य चिंतन से किस प्रकार भिन्न है ?

....

....

....

16) सीखने का सूझ सिद्धान्त क्या है ?

....

....

....

3.15 हारमिक मनोविज्ञान

हारमिक मनोविज्ञान की स्थापना विलियम मैक्डूगल ने की। उन्होने ग्रीक शब्द Horme से Hormic बनाया। जिसका अर्थ होता है वृत्ति। मैक्डूगल ने मानव व्यवहार की जो व्याख्या व्यवहारवादियों द्वारा दी गयी, उसका विरोध करते हुय बताया कि वृत्ति उद्धेश्यपूर्ण होती है। उनका विचार था कि उद्धेश्य या लक्ष्य व्यक्ति को संबंधित अनुक्रिया करने के लिए बिना किसी तरह के आभास पैदा किए हुए ही प्रेरित करता है। हालांकि कभी–कभी एक अस्पष्ट आभास व्यक्ति में उत्पन्न हो जाता है। इन्होंने उद्धेश्यपूर्ण व्यवहार की निम्नांकित चार विशेषताओं का वर्णन किया –

1. उद्धेश्यपूर्ण व्यवहार अपने आप होता है। अन्य शब्दों में कोई उद्धेश्य या लक्ष्य को देखकर व्यक्ति स्वतः संबंधित अनुक्रिया कर देता है।
2. उद्धेश्यपूर्ण व्यवहार का प्रभाव लक्ष्य पर पहुंचने के कुछ देर बाद भी प्राणी में बना रहता है।
3. उद्धेश्यपूर्ण व्यवहार में प्राणी एक के बाद एक क्रियाएं व्यक्ति तब तक करता जाता है जब तक कि वह लक्ष्य पर न पहुंच जाए।
4. उद्धेश्यपूर्ण व्यवहार अभ्यास से उन्नत बनाता है।

मैकडूगल के अनुसार उद्धेश्यपूर्ण व्यवहार करने के पीछे छिपी शक्ति को मूल प्रवृत्ति कहा गया है। मूल प्रवृत्ति व्यक्ति में एक जन्मजात मनोदैहिक प्रवृत्ति होती है जो व्यक्ति की कोई उद्धेश्यपूर्ण क्रिया करने के लिये बाध्य करती है। मैक्डूगल ने प्रमुख सात मूल प्रवृत्तियों बतायी जो कि किसी न किसी संवेग से जुड़ी होती है। वे सात मूल प्रवृत्तियां तथा उनसे सम्बंधित संवेग निम्नाकित है –

मूल प्रवृत्ति	**संवेग**
स्वीकृति	विरक्ति
लड़ाई	क्रोध
आत्म–दृढ़कथन	उल्लास
उत्सुकता	अचरज
मातृत्व–पितृत्व	नरम संवेग
आत्म–अपमान	नकारात्मक आत्म–भाव
उन्मुक्ति	डर

3.16 हारमिक मनोविज्ञान का शिक्षा में योगदान

शैक्षिक परिस्थितियों में हारमिक मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित मूल प्रवृत्ति के सिद्धान्त द्वारा बालकों के मूलप्रवृत्तिक व्यवहारों को समझने में काफी सहायता मिली है। टारेन्स (1965) के अनुसार शिक्षक को शिक्षार्थियों द्वारा वर्ग में किए जाने वाले मूल–प्रवृत्ति से संबंधित स्वाभाविक व्यवहार को तो समझने में मदद मिलती है, साथ ही साथ इन शिक्षार्थियों के विभिन्न तरह के, संवेगात्मक व्यवहार जैसे साथियों के साथ क्रोध करना, साथियों के साथ मिल कर खुशी मनाना, अपने को स्वयं दोषी मानना आदि व्यवहारों के कारणों को भी समझने में, काफी मदद मिलती है। मूलप्रवृत्ति के सिद्धान्त ने विद्यार्थियों के व्यवहार को समझने योग्य बनाया।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

17. हारमिक मनोविज्ञान में व्यवहार की किन–किन विशेषताओं का उल्लेख किया है ?

....

....

....

18. मूल प्रवृत्ति किसे कहते है ?

....

....

....

19. हारमिक मनोविज्ञान का शैक्षिक निहितार्थ लिखे।

....

....

....

3.17 सारांश

मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों ने जो विचार दिये उनका शैक्षिक परिस्थितियों में विशेष महत्व है। संरचनावाद जिसने मनोविज्ञान को प्रयोगात्मक रूप प्रदान किया, विलियम वुण्ट द्वारा स्थापित पहला स्कूल था। जिसने अन्तर्निरीक्षण

विधि पर विशेष बल दिया। कार्यवाद की स्थापना संरचनावाद के विरोध में हुयी थी। इस स्कूल ने भी शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। व्यवहारवाद की स्थापना का श्रेय जे0बी0 वाटसन को जाता है। व्यवहारवाद द्वारा व्यक्ति के विकास में पर्यावरणी कारकों पर अधिक बल डाला। जिसने अधिगमार्थी के व्यवहार को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों ने आणविक विचारध ारा के विरूद्ध आवाज उठाते हुए संर्वागिक पर बल डाला। मनोविश्लेषण जिसकी स्थापना नैदानिक परिस्थितियों में साइमण्ड फ्रायड द्वारा की गयी थी, ने मुख्य रूप से जीवन के प्रारम्भिक वर्षो की महत्ता को बताया। जिसने बालकों के व्यक्तित्व को संवारने व समझने में काफी मदद की। हारमिक मनोविज्ञान की स्थापना मैक्डूगल ने की। इस सम्प्रदाय द्वारा मूल प्रवृत्ति का सिद्धान्त प्रमुख था जिसने शिक्षार्थी के संवेगात्मक व्यवहार को समझने में सहायता करी।

3.18 अभ्यास कार्य

❖ मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।

❖ एक अध्यापक के रूप में कक्षा शिक्षण में मनोविज्ञान के विभिन्न स्कूलों द्वारा दिये गये योगदानों का उपयोग कैसे करेंगे, उल्लेख करें।

3.19 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) मनोविज्ञान की विषय वस्तु अध्ययन विधि तथा अन्य मनोवैज्ञानिक पहलुओं के बारे में जो विचार दिये गये और लगभग समान विचारधारा वाले लोग एक सम्प्रदाय के अंदर आ गये।

2) संरचनावाद

   कार्यवाद

   व्यवहारवाद

   मनोविश्लेषण

   गेस्टाल्ट मनोविज्ञान

   हारमिक मनोविज्ञान

3) सन 1879 में विलियम वुण्ट में प्रथम प्रयोगशाला की स्थापना की। जिससे प्रयोगशाला में मनोवैज्ञानिक पहलुओं का प्रयोगात्मक अध्ययन प्रारम्भ

हुआ।

4) वुण्ट ने मनोविज्ञान को चेतन अनुभूतियों के अध्ययन का विज्ञान बताया तथा इस अनुभूतियों का अध्ययन अन्तर्निरीक्षण विधि द्वारा जाना जा सकता था।

5) संरचनावाद ने मनोविज्ञान के स्वरूप को प्रयोगात्मक बनाया। शिक्षा मनोविज्ञान को अन्तर्निरीक्षण विधि प्रदान करी जिससे शिक्षार्थियों की मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन करने में सहायता मिली।

6) थार्नडाइक ने सीखने की व्याख्या करते हुये बताया कि जब कोई उद्दीपन व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह कई अनुक्रियाएं करता है। इसमें सही अनुक्रिया का संबंध उस विशेष उद्दीपन के साथ हो जाता है।

7) वुडवर्थ ने सीखने में अन्तर्नोद की भूमिका को काफी महत्वपूर्ण बताया। सीखने की प्रक्रिया में प्राणी की भूमिका को महत्वपूर्ण मानते हुये इन्होने उद्दीपक प्राणी–अनुक्रिया संबंध को बताया।

8) व्यवहारवाद ने पूर्ववर्ती विचारधाराओं का जोकि मानसिक प्रक्रियाओं के अध ययन पर बल डाल रहे थे, के विरोध में मनोविज्ञान को मानव व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान बताकर एक प्रभावशाली स्कूल के रूप में अपना योगदान दिया।

9) एक उद्दीपक पैटर्न किसी अनुक्रिया के साथ पहली बार युग्मित होने पर ही सम्पूर्ण साहचर्यात्मक शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार के सीखने में उद्दीपक–अनुक्रिया प्रथम बार युग्मित होने पर सामीप्यता के कारण सीखने को संभव बना देते है।

10) पुनर्बलन प्राप्त होने पर सीखना स्थायी हो जाता है। जिससे भविष्य में उस अनुक्रिया के होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

11) मनोविश्लेषण का प्रयोग मनोविज्ञान के एक स्कूल मनोविश्लेषण व्यक्तित्व के एक सिद्धान्त तथा मनोचिकित्सा की एक विधि के रूप में होता है। जिसके परिणामस्वरूप मनोविज्ञान पर इस स्कूल का काफी प्रभाव पड़ा।

12) अहं को वास्तविकता का ज्ञान होता है। अतः यह उपाहं की समाज विरोध ी इच्छाओं को परिष्कृत करके व पराहं के नैतिक विचारों को स्वीकृत करते हुये एक सामंजस्य का निर्माण करता है।

13) मनोरचना समाज विरोधी प्रवृत्तियों को चेतन स्तर पर आने से रोकने वाली युक्ति है। ऐसे विचार जिनका प्रकटीकरण समाज व स्वयं मानव के हित में ना हो तो उनका किसी भी रूप में संशोधन हो सके जिससे व्यक्ति वातावरण के साथ समायोजित हो सके।

14) बच्चों को जीवन के प्रारम्भिक वर्षो में यदि प्यार भरा वातावरण मिलता है तो भविष्य में उस बच्चे के मन में धनात्मक अभिवृत्ति बनती है। इसके विपरीत तिरस्कार पूर्ण वातावरण मिलने पर व्यक्ति को समायोजन संबंधी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

15) उत्पादी चिन्तन सर्जनात्मक चिन्तन के समान है। अन्य प्रकार के चिंतन यांत्रिक व प्रयास एवं त्रुटि पर आधारित होते है।

16) प्राणी द्वारा समस्यात्मक परिस्थिति का समग्र अवलोकन किया जाता है। जिसमें समाधान हेतु कई वैकल्पिक समाधान सोचता है और अचानक उसमें सूझ उत्पन्न होती है और वह समस्या का समाधान कर बैठता है।

17) निम्न है –

- उद्धेश्यपूर्ण व्यवहार स्वाभाविक होता है।
- उद्धेश्यपूर्ण व्यवहार का प्रभाव लक्ष्य पर पहुंचने के बाद भी बना रहता है।
- उद्धेश्यपूर्ण व्यवहार में एक के बाद एक क्रियाए लक्ष्य पूर्ति तक चलती रहती है।
- अभ्यास से उन्नत बनता है।

18) मूल प्रवृत्ति व्यक्ति में एक जन्मजात मनोदैहिक प्रवृत्ति होती है जो व्यक्ति को कोई उद्धेश्यपूर्ण क्रिया करने के लिये बाध्य करती है।

19) हारमिक मनोविज्ञान ने मूल प्रवृत्ति के सिद्धान्त को बताकर विद्यार्थियों के स्वाभाविक व्यवहार को समझने योग्य बनाया।

3.20 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- Chauhan, S.S. (1996): Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House Pvt. Ltd. Delhi.
- Dr. Sharma, R.N. (1984): System of Psychology. Surjeet Publication, Delhi.
- Wolman, Benjamin B. (1995): Contemporary Theories and systems in Psychology. Freeman Book company, Delhi.

इकाई 4 वृद्धि एवं विकास

संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 अभिवृद्धि

4.4 विकास

4.5 अभिवृद्धि एवं विकास में अन्तर

4.6 विकास क्रम में होने वाले परिवर्तन

4.7 विकास के सिंद्धात

4.8 विकास को प्रभावित करने वाले कारक

- 4.8.1 वंशानुक्रम
- 4.8.2 वंशानुक्रम की प्रक्रिया
- 4.8.3 बालक पर वंशानुक्रम का प्रभाव
- 4.8.4 वंशानुक्रम संम्बन्धी कुछ अध्ययन

4.9 वातावरण

- 4.9.1 वातावरण के प्रकार
    - आन्तरिक वातावरण
    - बाह्य वातावरण
- 4.9.2 वातावरण का तहत्व
- 4.9.3 बालक पर वातावरण का प्रभाव

4.10 वंशानुक्रम एवं वातावरण का सम्बन्ध

4.11 सारांश

4.12 अभ्यास कार्य

4.13 बोध प्रश्नों के अन्तर

4.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

बालक के विकास की प्रक्रिया जन्म से पूर्व जब वह माता के गर्भ में आता है, तभी से प्रारम्भ हो जाती है और जन्म के बाद शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तक क्रमशः चलती रहती है। इस का प्रकार वह विकास की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है जिसमें उसका शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास होता है। इस इकाई में अभिवृद्धि एवं विकास के बारे में जानकारी प्रदान की जायेगी।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि:

- अभिवृद्धि व विकास का अर्थ समझ सकेंगे;
- अभिवृद्धि व विकास के अन्तर को समझ सकेगें तथा उनके महत्त्व को जान सकेंगें;
- वंशानुक्रम का अर्थ व इसके महत्व को समझ सकेंगे;
- वातावरण के प्रभाव की विवेचना कर सकेंगे;
- वंशानुक्रम व वातावरण के सापेक्षिक महत्त्व को समझ सकेंगे;
- वैयक्तिक भिन्नता व्यक्ति में क्यों हाती है, इसके कारणों को विवेचित कर सकेंगे;

4.3 अभिवृद्धि

व्यक्ति के स्वाभाविक विकास को अभिवृद्धि कहते है। गर्भाशय में भ्रूण बनने के पश्चात जन्म होते समय तक उसमें जो प्रगतिशील परिवर्तन होते है वह अभिवृद्धि है। इसके अतिरिक्त जन्मोपरान्त से प्रौढावस्था तक व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से होने वाले परिवर्तन, जो अधिगम एवं प्रशिक्षण आदि से प्रभावित नही है, और ऊर्ध्ववर्ती है, भी अभिवृद्धि है। अभिवृद्धि की सीमा पूर्ण होने के पश्चात लम्बाई में विकास होने की सम्भावना नगण्य होगी। अभिवृद्धि एक जैविक प्रक्रिया है जो सभी जीवों में पायी जाती है। अभिवृद्धि स्वतः होती है। व्यक्ति में अभिवृद्धि का माप किया जा सकता है और मापन में वही तत्व अथवा विशेषताएँ आती है जो जन्म के समय विद्यमान होगी। विशेषताएँ आती है। अधिगम पर अभिवृद्धि का प्रभाव देखा जा सकता है। जब तक बालक की मॉसपेशियों की पर्याप्त अभिवृद्धि

नही हो जाती तक वह चलना अथवा लिखना नही सीख सकता । किन्तु यदि अभिवृद्धि पर अधिगम अथवा अभ्यास का प्रभाव डाला जाएगा तो उसे हम विकास कहेंगे न कि अभिवृद्धि, क्योंकि अभिवृद्धि स्वतः घटित होती है। व्यक्ति की अभिवृद्धि में वातावरण का प्रभाव पड़ सकता है।

4.4 विकास

विकास का तात्पर्य व्यक्ति में नई–नई विशेषताओं एवं क्षमताओं का विकसित होना है जो प्रारम्भिक जीवन से आरम्भ होकर परिपक्वतावस्था तक चलती है। हरलॉक के शब्दों में "विकास अभिवृद्धि तक ही सीमित नही है। इसके बजाय इसमें प्रौढ़ावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनो का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है। विकास के परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषताएँ और नवीन योग्यताएँ प्रकट होती है।" हरलॉक की इस परिभाषा से तीन बातें स्पष्ट होती है–

1. विकास परिवर्तन की ओर संकेत करता है।
2. विकास में एक निश्चित क्रम होता है।
2. विकास की एक निश्चित दिशा एवं लक्ष्य होता है।

हरलॉक के कथनानुसार विकास की प्रक्रिया जीवनपर्यन्त एक क्रम से चलती रहती है तथा प्रत्येक अवस्था का प्रभाव विकास की दूसरी अवस्था पर पडता है।

4.5 अभिवृद्धि एवं विकास में अन्तर

अभिवृद्धि	विकास
1. अभिवृद्धि विशेष आयु तक चलने वाली प्रक्रिया है	विकास जन्म से मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है।
2. वृद्धि, विकास का एक चरण है।	विकास में वृद्धि भी सम्मिलित है।
3. अभिवृद्धि में परिवर्तनों को देखा व मापा जा सकता है।	विकास में होने वाले परिवर्तनों को अनुभूत किया जा सकता है, मापा नही जा सकता।
4. अभिवृद्धि मुख्यतः शारीरिक परिवर्तनो को प्रकट करता है।	विकास में सभी पक्षों (शारीरिक, मानसिक, सामजिक, संवेगात्मक, नैतिक आदि) के परिवर्तनों को संयुक्त रूप से लिया जाता है।
5. अभिवृद्धि केवल उन्ही घटकों की हाती है जो बालक में जन्म के समय विद्यमान होती है।	विकास के लिए यह आवश्यक नही है।

6.	अभिवृद्धि में परिमाणात्मक परिवर्तन की अभिव्यक्ति होती है।	गुणात्मक एवं परिमाणात्मक पक्षों की अभिव्यक्ति होती है।

4.6 विकास क्रम में होने वाले परिवर्तन

विकास क्रम में होने वाले परिवर्तन चार वर्गो मे बाँटे जा सकते है–

1. **आकार परिवर्तन–** जन्म के बाद ज्यों–ज्यों बालक की आयु बढ़ती जाती है, उसके शरीर में परिवर्तन होता जाता है। शरीर के ये परिवर्तन–वाह्य एवं आन्तरिक दोनों अवयवों में होते हैं। शरीर की लम्बाई, चौड़ाई एवं भार में वृद्धि होती है। आन्तरिक अंग जैसे ह्रदय, मस्तिष्क, उदर, फेफड़ा आदि का आकार भी बढता है। शारीरिक परिवर्तनों के साथ–साथ मानसिक परिवर्तन होते हैं।

2. **अंग– प्रत्यंगो के अनुपात में परिवर्तन** –बालक एवं वयस्क के अंग प्रत्यंगो में अन्तर होता है। बाल्यावस्था में हाथ पैर की अपेक्षा सिर बड़ा होता है, किन्तु किशोरावस्था में आने पर यह अनुपात वयस्कों के समान होता है। इसी प्रकार का अन्तर मानसिक विकास में भी देखने को मिलता है।

3. **कुछ चिहनों का लोप–** विकास के साथ ही थाइमस ग्रन्थि, दूध के दांत आदि का लोप हो जाता है। इसके साथ ही वह बाल–क्रियाओं एवं क्रीड़ाओं को भी त्याग देता हैं।

4. **नवीन चिहनों का उदय** – आयु में वृद्धि के साथ–साथ बालक में अनेक नवीन शारीरिक एवं मानसिक चिहन प्रकट होते रहते है, उदाहरण के लिए, स्थायी दांतो का उगना। इसके साथ ही लैगिक चेतना का भी विकास होता है। किशोरावस्था में मुँह एवं गुप्तांगो पर बाल उगने प्रारम्भ हो जाते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : (क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान पर अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करे।

1. अभिवृद्धि से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

2. अभिवृद्धि एवं विकास में अन्तर लिखिए।

....

....

....

3. विकास क्रम में होने वाले परिवर्तनों को बताइये।

....

....

....

4.7 विकास के सिद्धान्त

निम्नलिखित सिद्धान्तो द्वारा विकास की प्रक्रिया नियत्रित होती है–

1. **विकास की दिशा का सिद्धान्त–** इसके अनुसार शिशु के शरीर का विकास सिर से पैर की दिशा में होता है। मनोवैज्ञानिकों ने इस विकास को 'मस्तकाधोमुखी' या 'शिरः पुच्छीय दिशा' कहा है।
2. **निरन्तर विकास का सिद्धान्त–** स्किनर के अनुसार विकास प्रक्रियाओं की निरन्तरता का सिद्धान्त केवल इस तथ्य पर बल देता है कि व्यक्ति में कोई आकस्मिक परिवर्तन नही होता है। विकास एक समान गति से नही होता है। विकास की गति कभी तेज कभी धीमी रहती है।
3. **विकास की गति में व्यक्तिगत भिन्नता का सिद्धान्त–** वैज्ञानिक अध् ययनों से यह निश्चित हो गया है कि विभिन्न व्यक्तियों के विकास की गति में विभिन्नता होती है। एक ही आयु में दो बालकों में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक विकास में वैयक्तिक विभिन्नताएँ स्पष्ट दिखायी देती है।
4. **विकास क्रम का सिद्धान्त–** विकास एक निश्चित एवं व्यवस्थित क्रम में होता है। उदाहरणार्थ बालक का भाषा एवं गामक सम्बन्धी विकास एक क्रग में होता है।
5. **परस्पर सम्बन्ध का सिद्धान्त–** बालक के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक पक्षके विकास में परस्पर सम्बन्ध होता है। शारीरिक विकास बौद्धिक विकास को प्रभावित करता है। गैरीसन तथा अन्य के अनुसार "शरीर

सम्बन्धी दृष्टिकोण व्यक्ति के विभिन्न अंगो के विकास में सामज्यस्य और परस्पर सम्बन्ध पर बल देता है।"

4.8 विकास को प्रभावित करने वाले कारक

मानव विकास तथा व्यवहार का अध्ययन करने के लिए विशेष रूप से दो प्रमुख कारकों पर ध्यान दिया जाता है। प्रथम, जन्मजात या प्रकृतिदत्त प्रभाव तथा दूसरा, जन्म के उपरान्त प्रभावित करने वाले बाह्य कारक। व्यक्तित्व में भिन्नता प्रकृतिजन्य कारकों तथा पर्यावरण का पोषण सम्बन्धी कारणों से होती है।

जन्म से सम्बन्धित बातों को वंशानुक्रम एवं समाज से सम्बन्धित बातों को वाताबरण कहते हैं। इसे प्रकृति तथा पोषण भी कहा जाता है। वुडवर्थ का कथन है कि एक पौधे का वंशक्रम उसके बीज में निहित है और उसके पोषण का दायित्व उसके वातावरण पर है।

4.8.1 वंशानुक्रम –

वैज्ञानिक रूप में वंशानुक्रम एक जैवकीय तथ्य है। प्राणिशास्त्रीय नियमों के अनुसार एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को कुछ गुण हस्तान्तरित किए जाते हैं। पूर्वजों के इन हस्तान्तरित किए गए शारीरिक और मानसिक लक्षणों के मिश्रित रूप को ही वंशानुक्रम, वंश परम्परा, पैतृकता, आनुवांशिकता आदि कहा जाता है।

जीवशास्त्र के अनुसार – "निषिक्त अण्ड में सम्भावित विद्यमान विशिष्ट गुणों का योग ही आनुवांशिकता है।" माता–पिता की शारीरिक एवं मानसिक विशेषताओं का सन्तानों में हस्तान्तरण होना वंशानुक्रम है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि वंशानुक्रम माता पिता एवं अन्य पूर्वजों से सन्तान को प्राप्त होने वाला गुण है जिसमें शारीरिक मानसिक एवं व्यवहारिक गुण सम्मिलित होते हैं।

4.8.2 वंशानुक्रम की प्रक्रिया–

मानव शरीर कोषों का योग होता है। शरीर का आरम्भ केवल एक कोष से होता है, जिसे 'संयुक्त कोष' (Zygote) कहते हैं। यह कोष 2,4,6,8 के क्रम में बढ़ता चला जाता है।

पुरूष और स्त्री दोनों में 23–23 गुण सूत्र (Chromosomes) होते हैं। इस प्रकार संयुक्त कोष में गुण सूत्रों के 23 जोड़े होते हैं। प्रत्येक गुण–सूत्र में 40 से 100 तक पित्र्यैक होते है। प्रत्येक पित्र्यैक एक गुण या विशेषता को निर्धारित

करता है। इसलिए इन पित्र्यैकों को वंशानुक्रम निर्धारक (heredity determinants) कहते है।

4.8.3 बालक पर वंशानुक्रम का प्रभाव–

बालक के व्यक्तित्व के प्रत्येक पेहलू पर वंशानुक्रम का प्रभाव पड़ता है।

1. मूल शक्तियों पर प्रभाव– बालक की मूल शक्तियों का प्रधान कारण उसका वंशानुक्रम है।
2. शारीरिक लक्षणों पर प्रभाव– कॉल पियरसन के अनुसार माता–पिता की लम्बाई कम या अधिक होने पर उनके बच्चों की लम्बाई भी कम या अधि ाक होती है।
3. प्रजाति की श्रेष्ठता पर प्रभाव– बुद्धि की श्रेष्ठता का कारण प्रजाति है। यही कारण है कि अमेरिका की श्वेत प्रजाति नीग्रो प्रजाति से श्रेष्ठ है। यद्यपि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसका खण्डन किया है।

4.8.4 वंशानुक्रम सम्बन्धी कुछ अध्ययन–

पाश्चात्य विद्वानों ने वंशानुक्रम के प्रभाव एवं महत्व के सम्बन्ध में जो अध ययन किए है वो अग्रलिखित है–

गाल्टन का अध्ययन– ब्रिटेन के मनोवैज्ञानिक सर फ्रांसिस गाल्टन ने 977 व्यक्तियों के दो वर्गो की जीवनकथाओं का अध्ययन किया। पहले में 535 व्यक्ति बुद्धिमान थे और दूसरे में केवल 5 बुद्धिमान थे। इनकी रिश्तेदारी भी उन्हीं के समान लोगों से थी। इन एकत्रित तथ्यों को उसने "हैरिडिटी जीनियस" (□□□□□□□□ □□□□□□) नामक पुस्तक में दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रतिभाशाली प्रतिष्ठत व्यक्तियों के निकट सम्बन्धी भी प्रतिष्ठित होते हैं और सामान्य स्तर के व्यक्तियों के सम्बन्धी सामान्य स्तर के पाये जाते हैं।

ज्यूक वंश का अध्ययन– इस परिवार का अध्ययन डगडेल और स्ट्राबुक ने किया। ज्यूक ने अपने समय एक दुराचारी स्त्री से सम्बन्ध किया था जिसके परिवार में 1000 स्त्री–पुरूष पांच पीढ़ियों में हुए। इनसे 300 बचपन में मर गये, 440 रोगी हुए और 310 अनाथालय में भेजे गये, 130 अपराध वृत्ति वाले हुए और 120 व्यक्ति कुछ कामधाम करके साधारण जीविका चलाते रहे।

जुड़वा बालको का अध्ययन– व्यक्ति के विकास में वंशानुक्रम का कितना प्रभाव पड़ता है इस बात का पता लगाने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने कुछ जुड़वा

बच्चों का अध्ययन किया फ्रांसिस गाल्टन इस अध्ययन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि जुड़वा बच्चों के जीवन में रूप–रंग, आकार और बुद्धि में बहुत अधिक समानता पायी जाती है।

बोध प्रश्नः

टिप्पणीः क) नीचे दिए गये रिक्त स्थानों में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

4) विकास की प्रक्रिया किन सिद्धान्तों पर आधारित है?

....

....

....

5) व्यक्ति के विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का उल्लेख कीजिए।

....

....

....

6) वंशानुक्रम सम्बन्धी अध्ययन किन तथ्यों की ओर इंगित करते हैं?

....

....

....

4.9 वातावरण

वातावरण के लिए 'पर्यावरण' शब्द का प्रयोग भी किया जाता है। वातावरण से तात्पर्य उन सभी चीजों से (जीन्स को छोड़कर) होता है जो व्यक्ति को उत्तेजित और प्रभावित करते हैं। दूसरे शब्दों में, व्यक्ति के वातावरण से तात्पर्य उन सभी तरह की उत्तेजनाओं से होता है जो गर्भधारण से मृत्यु तक उसे प्रभावित करते हैं। भौगोलिक वातावरण में अनेक उद्दीपन या चीजें हो सकती है परन्तु व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक वातावरण में वह सभी सम्मिलित हो यह आवश्यक नही है। कोई भी उद्दीपन व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक वातावरण में तभी सम्मिलित मानी जाती है जब वह व्यक्ति को प्रभावित करें। मनोविज्ञान में वातावरण से तात्पर्य मनोवैज्ञानिक वातावरण से होता है।

वुडवर्थ के अनुसार "वातावरण में वह सब ग्राह्य तत्व आ जाते हैं, जिन्होंने व्यक्ति को जीवन आरम्भ करने के समय से प्रभावित किया है।

रॉस के अनुसार "पर्यावरण कोई बाहरी शक्ति हैं जो हमें प्रभावित करती है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं का सार इस प्रकार है –

1. वातावरण व्यक्ति को प्रभावित करने वाला तत्व है।
2. इसमें वाह्य तत्व आते हैं।
3. वातावरण किसी एक तत्व का नही अपितु एक समूह तत्व का नाम है।
4. इसमें प्रत्येक वह वस्तु आती है जो व्यक्ति के विकास के लिए वांछित तत्व प्रदान करती है।

इस प्रकार वातावरण उन सभी उद्दीपकों को कहते हैं जो बालक पर गर्भ से लेकर मृत्युंपर्यन्त प्रभाव डालते रहते हैं।

4.9.1 वातावरण के प्रकार

सामान्य रूप से वातावरण को दो मुख्य वर्गो में विभाजित किया जा सकता है –

(1) आन्तरिक वातावरण (Internal Environment) – आन्तरिक वातावरण का तात्पर्य जन्म से पूर्व माता के गर्भाशय के चारों ओर की परिस्थितियों से है। कोष, वंश सूत्र, जीन्स, जो वंशानुक्रम के अंग है गर्भाशय में जिस वातावरण में रहते हैं वह बहुत महत्वपूर्ण है। वंश सूत्र व जीन्स को कोष रस (Cytoplasm) घेरे रहता है। इस वातावरण को अन्तर्कोषीय वातावरण कहते हैं। इस वातावरण से जीन्स प्रभानित होकर विशेष गुणों को प्रभावित करते है।

(2) बाह्य वातावरण (External Environment) – बाह्य वातावरण के अन्तर्गत वह सभी परिस्थितियां आती हैं जो सामूहिक या मिश्रित रूप से प्राणी को प्रभावित करती है। ये परिस्थितियां मानव को चारों ओर से घेरे रहती हैं और उस पर विपरीत या अनुकूल दिशा में निरन्तर अपना प्रभाव डालती रहती हैं। इनको पुनः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं –

(अ) भौतिक वातावरण (Physical Environment)– इसके अन्तर्गत वह सभी प्राकृतिक वस्तुएं आ जाती हैं जो व्यक्ति को किसी न किसी रूप में प्रभावित करती है। जैसे– पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, जलवायु, वृक्ष आदि।

(ब) सामाजिक वातावरण (Social Environment)– इसके अन्तर्गत

मानवकृत वस्तुएं आ जाती हैं। इसके अन्तर्गत रिवाज, प्रथाएं, रूढ़ियां, रहन–सहन के ढंग आदि आते हैं।

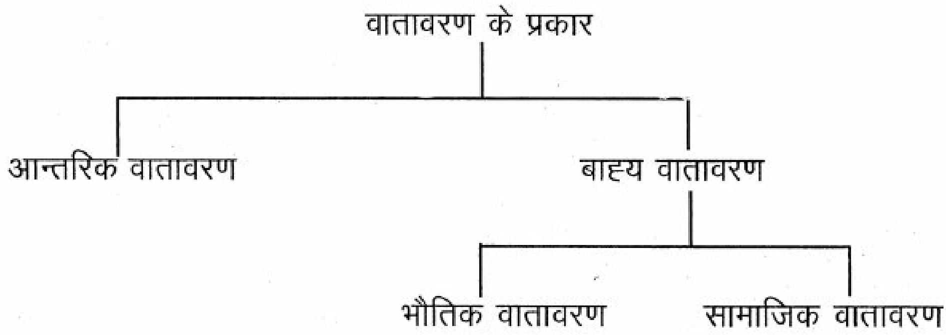

4.9.2 वातावरण का महत्व–

व्यक्ति के विकास में वातावरण का महत्वपूर्ण स्थान है। वातावरण को प्राणी के अस्तित्व से पृथक नही किया जा सकता है। कुछ विचारकों के अनुसार वातावरण व्यक्ति के विकास का मुख्य कारक है। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि वंशक्रम स्वयं वातावरण द्वारा विकसित होता है।

जॉन लॉक के अनुसार – जन्म के समय बालक का मस्तिष्क एक कोरी स्लेट के समान होता है जिस पर कुछ भी लिखा जा सकता है। कहने का तात्पर्य है कि जन्म के बाद बालक जिस प्रकार के वातावरण में रहता है उस पर उसी का प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रम में नवीन व्यक्तित्व की रचना करने की जो क्षमता है वह वातावरण में भी है।

4.9.3 बालक पर वातावरण का प्रभाव –

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने वातावरण के सम्बन्ध में अनेक अध्ययन और परीक्षण किये हैं और सिद्ध किया है कि बालक के व्यक्तित्व के प्रत्येक पहलू पर भौतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण का व्यापक प्रभाव पड़ता है।

1. शारीरिक अन्तर पर प्रभाव– फ्रेंज बोन्स का मत है कि विभिन्न प्रजातियों के शारीरिक अन्तर का कारण वंशानुक्रम न होकर वातावरण है।

2. मानसिक विकास पर प्रभाव– गोर्डन का मत है कि उचित सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण न मिलने पर मानसिक विकास की गति धीमी हो जाती है।

3. व्यक्तित्व पर प्रभाव– कूले ने सिद्ध किया है कि कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त वातावरण में रहकर अपने व्यक्तित्व का निर्माण करके महान बन सकता है।

4. अनाथ बच्चों पर प्रभाव– समाज कल्याण केन्द्रों में अनाथ और परावलम्बी बच्चे आते हैं। वुडवर्थ के अनुसार बच्चे समग्र रूप में अपने माता-पिता से अच्छे ही सिद्ध होते हैं।

5. जुड़वा बच्चों पर प्रभाव– स्टीफेन्स का विचार है कि पर्यावरण का बुद्धि पर साधारण प्रभाव होता है और उपलब्धि पर विशेष प्रभाव होता है।

6. बालक पर बहुमुखी प्रभाव – वातावरण बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि सभी अंगों पर प्रभाव डालता है। इसकी पुष्टि एवेरॉन के जंगली बालक के उदाहरण से भी होती है। स्टीफेन्स ने कहा है कि एक बच्चा जितने अधिक समय तक उत्तम पर्यावरण में रहता है वह उतना ही अधिक इस पर्यावरण की ओर प्रवृत्त होता है।

बोध प्रश्नः

टिप्पणीः क) नीचे दिए गये रिक्त स्थानों में अपने उत्तर लिखिए

ख) उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

7) वातावरण से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

8) सामान्यतः वातावरण के कितने प्रकार होते हैं जो बालक के विकास पर अपना प्रभाव डालते हैं।?

....

....

....

9) बालक पर पड़ने वाले वातावरणीय महत्व को बताइए?

....

....

....

4.10 वंशानुक्रम एवं वातावरण का सम्बन्ध

वंशानुक्रम एवं वातावरण का अलग–अलग अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि व्यक्ति के विकास में केवल वंशानुक्रम या वातावरण में से किसी एक का योगदान नही है बल्कि दोनो पहलू मिलकर एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का निर्माण कर सकते हैं। एक बीज और खेत जैसा सम्बन्ध इसमें पाया जाता है। स्वस्थ बीज तभी स्वस्थ पौधे का रूप धारण कर सकता है जबकि वातावरण स्वस्थ व संतुलित हो। लैण्डिस ने कहा है–

"वंशानुक्रम हमें विकसित होने की क्षमताएं प्रदान करता है। इस क्षमताओं के विकसित होने के अवसर हमे वातावरण से मिलते हैं। वंशक्रम हमें कार्यशील पूंजी देता है और परिस्थिति इसको निवेश करने के अवसर प्रदान करती है।

वुडवर्थ तथा मारेक्विस का कहना है"व्यक्ति वंशानुक्रम एवं वातावरण का योग्य नही, गुणलफल है।"

वंशानुक्रम व वातावरण पर हुए परीक्षणों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सामान्य वशानकम व सामान्य वातावरण होने पर भी बच्चों में भिन्नता होती है। अतः बालक के विकास पर दोनो का ही प्रभाव पडता है।

बालक वंशानुक्रम एवं वातावरण की उपज है। इसमें से एक की भी अनुपस्थिति में उसका सम्यक विकास असम्भव है अतः वुडवर्थ ने कहा है – व्यक्ति वंशानुक्रम व वातावरण का योग न होकर गुणनफल है–

व्यक्ति = वंशानुक्रम × वातावरण

4.11 सारांश

अभिवृद्धि से तात्पर्य परिमाणात्मक परिवर्तन से होता है जबकि विकास में परिमाणात्मक व गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन सम्मिलित होते हैं। यह परिवर्तन क्रमिक तथा संगत क्रम में होते हैं। बालक के विकास में वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों का महत्व होता है। बच्चों को अपने माता–पिता से अनुवांशिक रूप से बहुत कुछ प्राप्त होता है। जिनको जीन्स द्वारा माता--पिता अपने बच्चे में संचरित करते हैं। इसे ही वंशानुक्रम कहा जाता है। जन्म लेने के तुरन्त बाद जो कुछ भी व्यक्ति को प्रभावित करता है, यह सब वातावरण के अन्तर्गत आता है।

बालको के वर्धन एवं विकास में वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों का महत्व है। विभिन्न प्रकार के एकांकी बच्चों एवं पोष्य बच्चों पर किये गये अध्ययन

वंशानुक्रम एवं वातावरण के सापेक्षिक महत्व को दिखाते हैं। मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि बालकों के अधिकतर गुण चाहे वे शारीरिक हो या मानसिक, आनुवांशिकता तथा वातावरण की अन्तःक्रिया का प्रतिफल है।

4.12 अभ्यास कार्य

1 अभिवृद्धि एवं विकास में सम्बन्ध बताइये।

2. वंशानुक्रम एवं वातावरण की पारस्परिक निर्भरता व्यक्ति को किस प्रकार प्रभावित करती है।

4.13 बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. अभिवृद्धि का प्रयोग आकार की वृद्धि से होता है। जिसमें प्रायः शारीरिक पक्षों में होने वाले परिमाणात्मक परिवर्तन शामिल होते हैं।

2. – अभिवृद्धि में परिवर्तन परिमाणात्मक होता है जबकि विकास परिमाणात्मक व गुणात्मक दोनो प्रकार से होता है।

   – अभिवृद्धि का सम्बन्ध मुख्यतः शारीरिक परिवर्तनों से होता है जिन्हें प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। जबकि विकास का सम्बन्ध सभी पक्षों में होने वाले परिवर्तनों से होता है।

3. विकास क्रम जिस रूप में होता है उसे मुख्यतः निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है–

   – आकार परिवर्तन

   – अंग–प्रत्यंगों के अनुपात में परिवर्तन

   – अनेक चिहनों का लोप होना।

   – नवीन चिहनों का प्रकट होना।

4. – निश्चित दिशा का सिद्धान्त

   – निरन्तर विकास पर आधारित

   – विकास में वैयक्तिक भिन्नता का होना

   – विकास एक निश्चित प्रक्रिया में होता है

   – विकास के विभिन्न पक्षों की पारस्पिरिक निर्भरता

5. वंशा

6. वंशानुक्रम के सम्बन्ध में किये गये अध्ययन व्यक्ति के विकास पर वंशानुक्रम की महत्ता को बताते हैं। किस प्रकार एक बालक का रूप–रंग, बौद्धिक क्षमतायें आदि वंशानुक्रम से प्रभावित होती है।

7. वातावरण से तात्पर्य उन समस्त आवरणों से है जिनसे व्यक्ति घिरा है। जो व्यक्ति के किये उद्दीपन का कार्य करता है और प्राणी उससे प्रभावित होता है।

8. आन्तरिक वातावरण

   बाह्य वातावरण – भौतिक वातावरण – सामाजिक वातावरण

9. जन्म के बाद स्लेंट समान कोरे मस्तिष्क पर वातावरण से जैसे उद्दीपक मिलते हैं बालक के मन में वैसी ही छाप बन जाती है। इन वातावरणीय प्रभावों से प्रभावित होता हुआ बालक वैसे ही व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

4.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Hurlock, E.B. (1981) Development Psychology : A Life span Approach. Tata MC Crraw Hill; New Delhi.

Skinner C.E. (2004) Educational Psychology, Vikas Publishing House, New Delhi.

Santrock, J.W. (2007) Child Development eleventh edition, Tata Mc Crraw Hill, New Delhi.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAED-110
शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड

2

विकास के आयाम

इकाई-5 शारीरिक विकास	5
इकाई-6 संज्ञानात्मक विकास	20
इकाई-7 संवेगात्मक विकास	30
इकाई-8 सामाजिक विकास	44

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिकेश सिंह	आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 पी0 सी0 सक्सेना	पूर्व आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 रीना अग्रवाल	रीडर, शिक्षा विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MAED-110- शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड-1 शिक्षा मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि

इकाई-1 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ, कार्यक्षेत्र एवं महत्व

इकाई-2 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ

इकाई-3 मनोविज्ञान के स्कूलों का शिक्षा में योगदान

इकाई-4 वृद्धि एवं विकास

खण्ड-2 विकास के आयाम

इकाई-5 शारीरिक विकास

इकाई-6 संज्ञानात्मक विकास

इकाई-7 संवेगात्मक विकास

इकाई-8 सामाजिक विकास

खण्ड-3 शिक्षार्थी की विशेषताएँ

इकाई-9 भाषा विकास

इकाई-10 संप्रत्यात्मक विकास

इकाई-11 बुद्धि, अभिक्षमता एवं सृजनात्मकता

इकाई-12 व्यक्तित्व

खण्ड-4 अधिगम के पक्ष

इकाई-13 सीखना

इकाई-14 अभिप्रेरणा

इकाई-15 स्मरण, विस्मरण एवं चिन्तन

इकाई-16 विशिष्ट बालकों की शिक्षा

खण्ड परिचय-2 विकास के आयाम

भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। विभिन्न माध्यम है। आयु-वर्ग में भाषा का विकास अलग-अलग होता है। एक नवजात शिशु मात्र कुछ ध्वनियां प्रकट करता है। जबकि एक युवा का भाषा पर अधिकार होता है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है वैसे-वैसे भाषा का विकास उन्नत दिशा की ओर अग्रसर होने लगता है। भाषा विकास बहुत सारे कारक प्रभावित करते हैं। जैविकीय कारक, साथ ही बच्चा जिस तरह में वातावरण में रहता है वह भी उसके भाषा विकास को प्रभावित करते हैं। समद्ध वातावरण भाषा विकासको धनात्मक रूप से प्रभावित करता है। अतः एक अध्यापक का यह प्रयास होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों के समक्ष अच्छी भाषा का प्रयोग करें। साथ ही ऐसी सामग्री उपलब्ध करानी चाहिए जोकि शिक्षार्थियों की सही भाषा सीखने में मदद करें। जब अनेक वस्तुओं को सामान्य नियम के आधार पर एक साथ जोड़ दिया जाता है और इसके बनने वाले मानसिक प्रारूप को संप्रत्यय की संज्ञा दी जाती है। बच्चों में जो संप्रत्यय बनते हैं उनकी अपनी कुछ विशेषतायें होती हैं। इन विशेषताओं में प्रमुख हैं- प्रत्यय सरल से जटिल होते हैं, प्रत्यय सामान्य से विशिष्ट की और विकसित होते हैं, प्रत्यय में संचयी होने का गुण होता है व एक क्रम में होते हैं।

बालकों में कई तरह के संप्रत्ययों का विकास होता है। जिसमें जीवन का प्रत्यय, जगह का प्रत्यय, सम्बन्धित आकार का प्रत्यय, भार का प्रत्यय, संख्या का प्रत्यय, धन प्रत्यय तथा समय का प्रत्यय प्रमुख है। शिक्षा के लिये बालकों का संप्रत्यय विकास एक महत्वपूर्ण आधार का काम करता है। शिक्षक के लिए संप्रत्यय विकास का ज्ञान रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। प्रत्येक मनुष्य के कुछ मानसिक क्षमताएं होती हैं जिसमें बुद्धि, अभिक्षमता तथा सृजनात्मक प्रमुख है। बुद्धि कई तरह की क्षमताओं का योग है जिसके द्वारा व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रियाएं करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ समायोजन करता है। बुधि मुख्य रूप से सामाजिक अमूर्त एवं मूर्त होती हैं। बद्धि की अभिव्यक्ति बुद्धिलब्धि के रूप में होती है। बुद्धि मापन के लिए विभिन्न परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है जिसमें बिने साइमन परीक्षण, वेसलर बुद्धिपरीक्षण, रैवेन प्रोग्रेसिव परीक्षण, कैटेल संस्कृति मुक्त परीक्षण प्रमुख है। बुद्धि का व्याख्या कारक सिद्धान्त तथा प्रक्रिया उन्मुखी के रूप में की जाती है। वंशानुक्रम एवं वातावरण व्यक्ति को मुख्य रूप से बुद्धि के निर्धारण में सहायक होते हैं।

अभिक्षमता का तात्पर्य व्यक्ति की उस आन्तरिक क्षमता से होता है जो यह बताता है कि व्यक्ति किसी विशेष क्षेत्र में कितना सफल होगा। इसके लिए सामान्य अभिक्षमता परीक्षण तथा विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। अलग-अलग क्षेत्रों के लिए अलग-अलग प्रकार के अभिक्षमता परीक्षण बनाये गए हैं।

सृजनात्मकता का तात्पर्य है हटकर सोचना या करना। सृजनात्मक के कई पहलू होते हैं जैसे धारा प्रवाहित, लचीलापन, मौलिकता तथा विस्तारण। सृजनात्मकता को मापने के लिए मुख्य रूप से गिलफोर्ड प्रविधि तथा टारेन्स विधि का प्रयोग होता है।

वर्तमान समय में इन मानसिक योग्यताओं का पता लगाकर व्यक्ति को उचित परामर्श के द्वारा सफल बनाया जा सकता है। सृजनात्मकता को कई कारक प्रभावित करते हैं। शिक्षक उचित विधियों का प्रयोग कर छात्रों में सृजनशक्ति को विकसित कर सकता है। व्यक्तित्व मनोदैनिक गुणों का एक गत्यात्मक संगठन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने वातावरण से समायोजन करता है। व्यक्तित्व की व्याख्या मनोवैज्ञानिकों द्वारा अलग-अलग की गयी है। व्यक्तित्व का सबसे पुराना सिद्धान्त है। जिसमें व्यक्तियों को एक खास प्रकार में बांटकर बताया गया है। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों जैसे युंग एवं आइजेनक ने व्यक्तित्व के प्रकार सिद्धान्त में कुछ मनोवैज्ञानिक गुणों को प्रधानता दी है। व्यक्तित्व का दूसरा सिद्धान्त शीलगुण सिद्धान्त है। इसमें व्यक्तित्व की संरचना में शीलगुणों को प्रमुख आधार माना है। आलपोर्ट तथा कैटेल के शीलगुण सिद्धान्त में अपना बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। व्यक्तित्व की व्याख्या करने में सिममण्ड फ्रायड का मनोवैश्लेषिक सिद्धान्त भी प्रमुख है। फ्रायड ने व्यक्तित्व की व्याख्या करने में अचेतन प्रेरकों पर विशेष बल डाला है।

व्यक्तित्व की व्याख्या मानवतावादी विचारधारा के समर्थक मैसलो व कार्ल रोजर्स द्वारा भी की गयी है। मैसलो का मानना था कि हर व्यक्ति में क्षमता होती है कि वह अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। इसके लिए उन्होंने आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त दिया। इसी श्रृंखला में संवृत्तिशास्त्र विचारधारा के समर्थक रोजर्स ने व्यक्तित्व का व्यक्ति केन्द्रित सिद्धान्त दिया है। जिसमें व्यक्ति की अनुभूतियों भावों को प्रमुख माना है।

व्यक्तित्व को मापने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की प्रविधियों का वर्णन किया है। व्यक्तित्व प्रविधि के अन्तर्गत प्रश्नावली, साक्षात्कार आत्मकथा प्रमख है। वस्तुनिष्ठ प्रविधि में निरीक्षण, समाजमिति व व्यक्तित्व प्रश्नावली है। प्रक्षेपण विधि के रूप में रोरर्शा परीक्षण, थीमेटिक अपरेशन परीक्षण तथा वाक्यपूर्ति आदि प्रमुख है।

इकाई 5 शारीरिक विकास

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 जन्म से पूर्व शारीरिक विकास

5.3.1 डिम्बावस्था

5.3.2 पिण्ड वस्था अथवा भ्रूर्णाम अवस्था

5.3.3 भ्रूणावस्था

5.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास

5.5 बाल्या वस्था में शारीरिकविकास

5.6 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

5.7 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

5.8 सारांश

5.9 अभ्यास कार्य

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

बालक के विकास का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका शारीरिक विकास है। बालक का शारीरिक विकास उसके समस्त व्यवहार तथा विकास के अन्य सभी पक्षों को प्रभावित करता है। शारीरिक विकास के अन्तर्गत शरीर रचना, स्नायु मण्डल, माँसपेशीय वृद्धि अंतः स्त्रावि ग्रन्थियों आदि प्रमुख रूप से आती है। बालक के शारीरिक विकास का उसके मानसिक तथा सामाजिक विकास पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि शैक्षिक दृष्टि से शारीरिक विकास को अत्याधिक महत्वपूर्ण स्वीकार किया जाता है। पिछले अध्याय में आप पढ़ चुके हैं कि विकास और वृद्धि से क्या तात्पर्य है। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में शारीरिक विकास की प्रक्रिया भिन्न–भिन्न होती है। प्रस्तुत अध्याय में भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक विकास की चर्चा की गयी है। मनुष्य के विकास क्रम को निम्नलिखित अवस्थाओं में विभक्त किया गया है।

- भ्रूणावस्था (जन्म से पूर्व)
- शैशवावस्था (जन्म से लगभग 5–6 वर्ष तक)
- बाल्यावस्थ (7 से 12 वर्ष तक)
- किशोरावस्थ (12 से 18 वर्ष तक)
- युवावस्था (18 वर्ष से लेकर 35 वर्ष तक)
- प्रौढ़ावस्था (35 वर्ष से लेकर 60 वर्ष तक)

5.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि:

1. शारीरिक विकास का अर्थ भली–भाति समझ पायेंगे।
2. शारीरिक विकास की जन्मपूर्व तथा जन्म के पश्चात की स्थितियों से भलि–भाति परिचित हो सकेंगे।
3. जन्म से पूर्व शिशु के विकास की क्रमागत अवस्थाओं को समझ पायेंगे।
4. विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का ज्ञान प्राप्त कर पायेंगे।
5. उन कारकों को अलग कर पायेंगे जो शिशु के विकास को प्रभावित करते है।

5.3 जन्म पूर्व शारीरिक विकास

ज्यों ही अण्ड शुक्राणु से मिलकर निशेचित होता है, त्यों ही मानव जीवन का प्रारम्भ हो जाता है। निशेचित अण्ड सर्वप्रथम **दो** कोषों में विभाजित होता है, जिसमे से प्रत्येक कोष पुनः दो–दो में विभाजित हो जाते हैं। कोष विभाजन की यह प्रक्रिया अत्यंत तीव्र गति से चलने लगती है। इनमें ये कुछ कोष प्रजनन कोष बन जाते हैं तथा अन्य शरीर कोष बन जाते हैं। शरीर कोषों से ही माँसपेशियों, स्नायुयों तथा शरीर के अन्य भागों का निर्माण होता है। निषेचन से जन्म तक के समय को जन्म पूर्वकाल अथवा जन्म पूर्व विकास का काल कहा जाता है। सामान्यतः जन्म पूर्वकाल दस चन्द्रमास अथवा नौ कैलेण्डर मास अथवा चालीस सप्ताह अथवा 280 दिन का होता है। भ्रूणावस्था में शारीरिक विकास तीन चरणों में होता है।

5.3.1 डिम्बावस्था –

डिम्बावस्था या गर्भास्थिति, शुक्राणु एवं डिम्ब के संयोग के समय से लेकर दो सप्ताह तक मानी जाती है। इस अवस्था में कोषों का विभाजन होता है। जाइगोट या सिंचित डिम्ब में महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगते है। कोषों के भीतर खोखलापन विकसित होने लगता है। संसेचित डिम्ब, डिम्बवाहिनी नलिका द्वारा गर्भाशय में आ जाता है, गर्भाशय में पहुँचने पर इसका आकार हुक के समान हो जाता है। गर्भाशय में कुछ दिनों पश्चात यह इसको सतह का आधार लेकर चिपक जाता है यहाँ पर गर्भ अपना पोषण माता से प्राप्त करने लगता है। कभी–कभी डिम्ब डिम्बवाहिनी नलिका से ही चिपक कर वृद्धि करने लगता है, ऐसे गर्भ को नलिका गर्भ कहते है। इस प्रक्रिया को आरोपण कहते है। आरोपण हो जाने के पश्चात संयुक्त कोष एक परजीवी हो जाता है। तथा जन्म पूर्व का काल वह इसी अवस्था में व्यतीत करता है। डिम्बावस्था तीन कारणों से महत्पूर्ण हो–प्रथम, निसेचित अण्ड गर्भाशय में आरोपित होने से पूर्व निष्क्रिय हो सकता है। द्वितीय, आरोपण गलत स्थान पर हो सकता है, तथा तृतीय, आरोपण होना सम्भव नही हो सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : (क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान पर अपने उत्तर लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये उत्तरों से तुलना कीजिए।

1. शारीरिक विकारा से आप क्या समझते है?

   ....

   ....

   ....

2. डिम्बावस्था में होने वाले प्रमुख विकास का उल्लेख करिये।

   ....

   ....

   ....

5.3.2– पिण्डावस्था अथवा भ्रूणीय अवस्था –

जन्म पूर्व विकास का द्वितीय काल पिण्डावस्था अथवा पिण्ड काल कहलाता है। यह अवस्था निषेचन के तीसरे सप्ताह से शुरू होकर आठवे सप्ताह

तक चलती है। लगभग छहः सप्ताह तक चलने वाली पिण्डावस्था परिवर्तन की अवस्था है, जिसमें कोषों का समूह एक लघु मानव के रूप में विकसित हो जाता है। शरीर की लगभग समस्त मुख्य विशेषताए, वाहय तथा आन्तरिक, इस लघु अवधि में स्पष्ट हो जाती है। इस काल में विकास मष्तक– अधोमुखी दिशा मे होता है अर्थात सर्वप्रथम मष्तक क्षेत्र का विकास होता है तथा फिर धड़ क्षेत्र का विकास होता है और अन्त में पैर क्षेत्र का विकास होता है। कुपोषण, संवेगात्मक सदमों, अत्याधिक शारीरिक गतिशीलता, ग्रान्थियों के कार्यो में व्यवधान अथवा अन्य किसी कारण से भ्रूण गर्भाशय की दीवार से विलग हो सकता है। जिसके परिणाम स्वरूप स्वतः गर्भपात हो जाता हैं।

5.3.3– भ्रूणावस्था –

यह समय गर्भ तिथि के दूसरे मास से लेकर बालक के जन्म तक अर्थात दसवे चन्द्रमास अथवा नवे कैलेण्डर मास तक रहता है। तीसरे मास में 3.5 इन्च लम्बा एवं 3/4 औस भार का गर्भ होता है। दो मास बाद इसकी लम्बाई 10 इंच एवं भार 9 से 10 औंस हो जाता है। आठवें महीने में इसकी लम्बाई 10 इंच व भार 4 से 5 पौण्ड तथा जन्म के समय तक गर्भाशय भ्रूण की लम्बाई 20 इंच एवं भार 7 से 7.5 पौण्ड हो जाता है।

भ्रूणावस्था के दौरान शरीर के विभिन्न अंगों की लम्बाई में अनुपात

शरीर के अंग	8 सप्ताह का भ्रूण	20 सप्ताह का भ्रूण	40सप्ताह का भ्रूण
सिर	45%	35%	35%
धड़	35%	40%	40%
पैर	20%	25%	25%

भ्रूणावस्था चार दृष्टियों से महत्वपूर्ण मानी जाती है।

1. गर्भाधान के उपरान्त पाँच माह तक गर्भपात की सम्भावना बनी रहती है।
2. माता के गर्भ में बालक को मिल रहे वातावरण की प्रतिकूल परिस्थितियाँ भ्रूण के विकास को प्रभावित कर सकती है।
3. अपरिपक्व प्रसव हो सकता है।
4. प्रसव की सरलता अथवा जटिलता सदैव ही जन्म पूर्व परिस्थितियों से प्रभावित होती है।

बोध प्रश्न

क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

3. पिण्डावस्था तथा भ्रूणावस्था में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

....

....

....

5.4 शैशवावस्था में शारीरिक विकास

सामान्यता: मनोवैज्ञानिकों ने शैशवावस्था का अर्थ उस अवस्था से लगाया जो औसतन जन्म से 5–6 वर्ष तक चलती है। एडलर के अनुसार "शैशवावस्था द्वारा जीवन का पूरा क्रम निश्न्चित होता है। शैशवावस्था में विशेषकर जन्म से 3 वर्ष तक की आयु होने के दौरान शारीरिक विकास की गति अत्यंत तीव्र रहती है। शैशवावस्था में होने वाले शारीरिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण तथ्य अध ाोलिखित हैं।

1. **कोमल अंग**—जन्म के पश्चात शिशु और उसके अंग कोमल एवं निर्बल होते है। माता–पिता पर वह सभी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु आश्रित रहता है।

2. **लम्बाई व भार**—जन्त के समय शिशु की लम्बाई लगभग 51 से० मी० होती है। प्रायः बालक जन्म के समय बालिकाओं से लगभग आधा सेमी० अधिक लम्बे होते है। शैशवावस्था के विभिन्न वर्षो में बालक–बालिका की लम्बाई (सेमी0 में) निम्नांकित तालिका में दर्शाई गयी है।

तालिका

शैशवावस्था में बालक एवं बालिकाओं की औसत लम्बाई (सेमी0)

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	51-5	62-7	64-9	69-5	73-9	81-6	88-8	96-0	102-1	108-5
बालिका	51-0	60-9	64-4	66-7	72-5	80-1	87-5	94-5	101-4	107-4

प्रारम्भ में शरीर का ढाँचा लगभग 17 से 22 इंच तक लम्बा होता है और 5–6 वर्ष तक यह लम्बाई 3 फुट हो जाती है इसी प्रकार से भार का विकास होता है। शैश्वावस्था में भार (किलोग्राम) की बढ़ोत्तरी निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाई गयी है।

तालिका

शैशवावस्था में बालक एवं बालिकाओं की औसत भार (किग्रा0)

आयु	जन्म के समय	3 माह	6 माह	9 माह	1 वर्ष	2 वर्ष	3 वर्ष	4 वर्ष	5 वर्ष	6 वर्ष
बालक	3-2	5-7	6-9	7-4	8-4	10-1	11-8	13-5	14-8	16-3
बालिका	3-0	5-6	6-2	6-6	7-8	9-6	11-2	12-9	14-5	16-0

3. **मस्तिष्क तथा सिर**– नवजात का सिर उसके शरीर की अपेक्षा बड़ा होता है। जन्म के समय सिर की लम्बाई कुल शरीर की लगभग एक चौथाई होती है। मस्तिष्क का भार जन्म के समय लगभग 300–350 ग्राम होता है।

4. **दाँत**– जन्म के समय शिशु के दाँत नही होते है, लगभग छठे या सातवे माह में अस्थायी दूध के दाँत निकलने लगते है। एक वर्ष की आयु तक दूध के सभी दाँत निकल आते है

5. **हड्डियाँ**:– कई मनोवैज्ञानिको ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि शिशु की बनावट और उसकी हड्डियों के परिपक्व होने की गति के मध्य एक सम्बन्ध होता है। जिनका शरीर अधिक मजबूत और गठीला होता है, उनके शरीर की हड्डियों में परिपवक्ता तेजी से आती है।

6. **स्नायु विकास**– स्नायु मण्डल तथा स्नायुकेन्द्रों का विकास भी 3 वर्ष तक शीघ्रता से होता है।

7. **माँसपेशियाँ**–नवजात शिशु की माँसपेशियों का भार उसके शरीर के कुल भार का लगभग 23 प्रतिशत होता है। माँसपेशियों के प्रतिशत भार में धीरे–धीरे बढोत्तरी होती जाती है।

8. **अन्य अंग**– शिशु की भुजाओं तथा टांगो का विकास भी तीव्र गति से होता है। जन्म के समय शिशु के हृदय की धड़कन अनियमित होती है। कभी वह तीव्र हो जाती है तथा कभी धीमी हो जाती है। जैसे–जैसे हृदय बड़ा होता है वैसे–वैसे धड़कन में स्थिरता आ जाती है।

9. **समस्त प्रणालियों का विकास–** जन्म के पश्चात शरीर की समस्त प्रणालियों में विकास होता है, माँसपेशियां, स्नायुतन्त्र, रक्तसंचार–क्रिया आदि का उत्तरोतर विकास होता है।

बोध प्रश्न

क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गंये उत्तरों से तुलना कीजिए!

4. शैशवावस्था से आप क्या समझते है?

....

....

....

5. शैशवावस्था में होने वाले प्रमुख शारीरिक विकासों का उल्लेख करिये।

....

....

....

5.5 बाल्यावस्था में शारीरिक विकास

छः वर्ष की आयु से लेकर बारह वर्ष की आयु तक की अवधि बाल्यावस्था कहलाती है। बाल्यावस्था के प्रथम तीन वर्षो के दौरान अर्थात 6 से 9 वर्ष की आयु तक शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है। बाद में शारीरिक विकास की गति कुछ धीमी हो जाती है। बाल्यावस्था में होने वाले शारीरिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन अग्रांकित है।

1. **लम्बाई व भारः–** 6 वर्ष से 12 वर्ष की आयु तक चलने वाली बाल्यावस्था में शरीर की लम्बाई लगभग 5 सेमी० से 7 सेमी० प्रतिवर्ष की गति से बढ़ती है। बाल्यावस्था के प्रारम्भ में जहाँ बालकों की लम्बाई बालिकाओं की लम्बाई से लगभग एक सेमी० अधिक होती है वहीं इस अवधि की समाप्ति पर बालिकाओं की औसत लम्बाई बालकों की औसत लम्बाई से लगभग 1 सेमी० अधिक हो जाती है। लम्बाई में अन्तर निम्नलिखित तालिका द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका

बाल्यावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत लम्बाई (से०मी०)

आयु	6 वर्ष	7 वर्ष	8 वर्ष	9 वर्ष	10 वर्ष	11 वर्ष	12 वर्ष
बालक	108.5	113.9	119.3	123.7	128.4	133.4	138.3
बालिका	107.4	112.8	118.2	122.9	128.4	133.6	139.2

बाल्यावस्था के दौरान बालकों के भार में काफी वृद्धि होती है। 9–10 वर्ष की आयु तक बालकों का भार बालिकाओं के भार से अधिक होता है। बाल्यावस्था के विभिन्न वर्षों में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार (किलोग्राम) निम्नलिखित तालिकाओं में दर्शाया गया है।

तालिका

बाल्यावस्था में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार (किग्रा0)

आयु	6 वर्ष	7 वर्ष	8 वर्ष	9 वर्ष	10 वर्ष	11 वर्ष	12 वर्ष
बालक	16.3	18.0	19.0	21.5	23.5	25.9	28.5
बालिका	16.0	17.6	19.4	21.3	23.6	26.4	29.8

2- **सिर तथ मस्तिष्क–** बाल्यावस्था में सिर के आकार में क्रमशः परिवर्तन होता रहता है, परन्तु शरीर के अन्य अंगों की तुलना में यह भी अपेक्षाकृत बड़ा होता है। बाल्यावस्था में मस्तिष्क आकार तथा भार दोनों ही दृष्टि से लगभग पूर्णरूपेण विकसित हो जाता है।

3. **दांत–** लगभग 5–6 वर्ष की आयु में स्थायी दाँत निकलने प्रारम्भ हो जाते है। 16 वर्ष की आयु तक लगभग सभी स्थायी दाँत निकल आते है। स्थायी दाँतों की संख्या लगभग 28–32 होती है।

4. **हड्डियाँ–** बाल्यावस्था में हड्डियों की संख्या तथा उनकी दृढ़ता दोनो में ही वृद्धि होती है। इस अवस्था में हड्डियों की संख्या 270 से बढ़कर लगभग 320 हो जाती है। इस अवस्था के दौरान हड्डियों का दृढ़िकरण अथवा अस्थिकरण तेजी से होता है।

5. **माँसपेशियाँ–** बाल्यावस्था में माँसपेशियों का धीरे–धीरे विकास होता जाता है। इस अवस्था में बालक माँसपेशियों पर पूर्ण नियंत्रण करने लगता है।

6. **शरीर के आकार में भिन्नता**— बालक जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है, उसमें शारीरिक भिन्नता अधिक स्पष्ट होने लगती है। चेहरा, धड़, भुजाएं या टागें आदि में पहलेसे भिन्नता परिलक्षित होने लगती है।

7. **आन्तरिक अवयव**—शरीर के आन्तरिक अवयवों का विकास भी अनेक रूपों में होता है यह विकास रक्त संचार, पाचन संस्थान तथा श्वसन प्रणाली में होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी:—क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

6 बाल्यावस्था में कौन से शारीरिक परिवर्तन प्रमुख है.

उ०..

....

....

....

....

5.6 किशोरावस्था में शारीरिक विकास

किशोरावस्था विकास की अत्यंत महत्वपूर्ण सीढ़ी है। किशोरावस्था का महत्व कई दृष्टियों से दिखाई देता है प्रथम यह युवावस्था की ड्योढी है जिसके ऊपर जीवन का समस्त भविष्य पाया जाता है। द्वितीय यह विकास की चरमावस्था है। तृतीय यह संवेगात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण मानी जाती है।

किशोरावस्था के लिए अंग्रेजी का शब्द Adolescence है यह लैटिन भाषा को Adolecere शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है— "परिपक्वता की ओर बढ़ना अतः स्पष्ट है कि किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति बाल्यावस्था के बाद पदार्पण करता है, किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक विकास से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन निम्नलिखित है।

1. **लम्बाई तथा भार**— किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं की लम्बाई बहुत तीव्र गति से बढ़ती है। बालिकाए प्रायः 16 वर्ष की आयु तक तथा बालक लगभग 18 वर्ष की आयु तक अपनी अधिकतम लम्बाई प्राप्त कर लेते है। किशोरावस्था में बालक— बालिकाओं की औसत लम्बाई (सेमी0)

निम्नांकित तालिका में दर्शाई गयी है।

तालिका

किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत लम्बाई (सेमी0)

आयु	12वर्ष	13 वर्ष	14 वर्ष	15 वर्ष	16 वर्ष	17 वर्ष	18 वर्ष
बालक	138.3	144.6	150.1	155.5	159.5	161.4	161.8
बालिका	139.2	143.9	147.6	149.6	151.0	151.5	151.6

किशोरावस्था में भार में काफी वृद्धि होती है। बालको का भार बालिकाओं के भार से अधिक बढ़ता है। इस अवस्था के अंत में बालकों का भार बालिकाओं के भार से अधिक बढ़ता है। किशोरावस्था के विभिन्न वर्षों में बालक तथा बालिकाओं का औसत भार (किग्रा0) निम्नांकित तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका

किशोरावस्था में बालक तथा बालिकाओं की औसत भार (कि०ग्रा०)

आयु	12 वर्ष	13 वर्ष	14 वर्ष	15 वर्ष	16 वर्ष	17 वर्ष	18 वर्ष
बालक	28.5	32.1	35.7	39.6	43.2	45.7	47.3
बालिका	29.8	33.3	36.8	39.8	41.1	42.2	43.12.

2. **सिर तथा मस्तिष्क–** किशोरावस्था में सिर तथा मस्तिष्क का विकास जारी रहता है, परन्तु इसकी गति काफी हो जाती है लगभग 16 वर्ष की आयु तक सिर तथा मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो जाता है।

3. **हड्डियाँ–** किशोरावस्था में हड्डियों के दृढिकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। जिसके परिणाम स्वरूप अस्थियों का लचीलापन समाप्त हो जाता है तथा वे दृढ़ हो जाती है किशोरावस्था में हडिडयों की संख्या कम होने लगी है। प्रौढ व्यक्ति में केवल 206 हड्डियाँ होती हैं।

4. **दाँत–** किशोरावस्था में प्रवेश करने से पूर्ण बालक तथा बालिकाओं के लगभग 28–32 स्थायी दाँत निकल जाते है।

5. **मॉसपेशियाँ–** किशोरावस्था में मॉसपेशियों का विकास तीव्र गति से होता है। किशोरावस्था की समाप्ति पर मॉसपेशियों का भार शरीर के कुल भार का लगभग 45 प्रतिशत हो जाता है।

6. **अंगो की वृद्धि**– आन्तरिक अंगो की वृद्धि होती है। पाचन प्रणाली, रक्त संचार प्रणाली, ग्रन्थिप्रणाली, श्वांस तन्त्र आदि में विकास चरमोत्कर्ष पर होता है।

7. **गले की ग्रन्थि का विकास**– गले के थायराइड-ग्रन्थि बढ़ने से किशोर–किशोरियों की वाणी में अन्तर आ जाता है। किशोरों की वाणी कर्कश होने लगती है जबकि किशोरियों की वाणी में कोमलता और क्षीणता आने लगती है।

8. **काम ग्रन्थि का विकास**– काम ग्रन्थि के विकास स्वरूप किशोर तथा किशोरियों में लिंगीय परिवर्तन होने लगते हैं। किशोरियों में मासिक रक्त स्त्राव आरभ होता है तथा किशोरों में रात्रि–दोष के लक्षण पाये जाते है।

9. **विशेष अंगो का विकास**– कुछ अन्य शारीरिक अंगो में भी परिवर्तन होते है। किशोरियों में वक्षस्थल तथा स्तनों की वृद्धि होती है। किशोरो के कन्धों की चौड़ाई बढ़ जाती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः– क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

7 किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों को लिखिए?

....

....

....

8. बालिकाओं में होने वाले प्रमुख शारीरिक परिवर्तन का उल्लेख करिये।

....

....

....

5.7 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक विकास को अनेक कारक प्रभावित करते है जो निम्नवत है।

5.7.1 जन्म पूर्व अवस्था को प्रभावित करने वाले तत्वः–

1. **भोजनः–** गर्भकाल में भ्रूण का विकास बहुत शीघ्रता से होता है उसे प्रोटीन, खनिज, वसा आदि पोषक तत्वों की आवश्यकता है। इन्ही तत्वों से भ्रूण का संतुलित विकास होता है। ऐसी अवस्था में यदि माता को संतुलित आहार नहीं मिलता है तो वह कुपोषण की शिकार हो जाती है जिसका सीधा असर भ्रूण विकास पर पड़ता है।

2 **माता का स्वास्थ्यः–** यदि माता को पहले से सिफलिस गोनोरिया आदि रोग हो तो भ्रूण का विकास प्रभावित हो सकता है।

3. **मद्यपानः–** मद्यपान तथा धूम्रपान से शिशु में रक्तचाप दोष उत्पन्न हो जाता है। यह गर्भस्थ शिशु के ह्रदय को दुर्बल कर देता।

4. **सांवेगिकताः–** यदि माता बहुत अधिक संवेदन शील है तो उसके सुख–दुख दोनों का प्रभाव होने वाले शिशु पर पड़ता है।

5.7.2 जन्म के पश्चात शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1. **वंशानुक्रम–** बालक के शारीरिक विकास पर उसके माता–पिता के स्वास्थ्य, शारीरिक संरचना या पूर्वजों के शारीरिक दोषों व रोगो का प्रभाव पड़ता है। स्वस्थ माता–पिता की संतान प्रायः शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ होती है।

2. **वातावरण–** बालक के शारीरिक विकास में उसको मिलने वाले वातावरण का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। वायु, धूप तथा स्वच्छता वातावरण के तीन मुख्य तत्व है। यह तत्व शारीरिक विकास को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनो रूप में प्रभावित करता है।

3. **भोजन–** पौष्टिक तथा संतुलित भोजन बालक के शारीरिक विकास की स्वाभाविक ढ़ग से होने में विशेष रूपसे सहायता प्रदान करता है। पौष्टिक तथा संतुलित भोजन मिलने पर बालक को शारीरिक स्वास्थ्य उत्तम होता है।

4. **पारिवारिक स्थिति–** परिवार की सामाजिक, आर्थिक, तथा सांस्कृतिक परिस्थिति का भी बालक के शारीरिक विकास पर प्रभाव पड़ता है।

परिवार के रहन–सहन, सामाजिक परम्पराओं तथा खान–पान के अनुरूप ही बालक का विकास होता है।

5. **दिनचर्याः–** बालक की दिनचर्या का उसके शारीरिक विकास पर बहुत प्रभाव पड़ता है। नियमित दिनचर्या अच्छे स्वास्थ्य की आधार शिला होती है। खाने–नहाने, पढ़ने, खेलने सोने आदि दैनिक कार्यो को नियमित समय पर करने से बालक का स्वस्थ्य विकास होता है।

6. **विश्राम तथा निन्द्रा**– शरीर के स्वस्थ विकास के लिए विश्राम तथा निद्रा आवश्यक है। थकान शारीरिक विकास में बाधा उत्पन्न करती हैं। विश्राम तथा निन्द्रा थकान को दूर करके बालक के शरीर को विकसित होने के अनुकूल अवसर प्रदान करते है। बाल्यावस्था में लगभग दस घण्टे व किशोरावस्था में लगभग आठ–घण्टे की निद्रा प्रर्याप्त होती है।

7. **खेल तथा व्यायाम**– शारीरिक विकास पर खेल तथा व्यायाम का बहुत प्रभाव होता है, इसलिए बालकों के खेल तथा व्यायाम पर पर्याप्त ध्यान देना चाहिए। छोटा शिशु अपने हाथों व पैरों को चला कर व्यायाम कर लेता है। परन्तु बालकों तथा किशोरों के लिए खुली हवा में खेलने तथा व्यायाम करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8. **प्रेम तथा सहानुभूतिः**– माता–पिता, परिवारजनों, अध्यापको तथा अन्य व्यक्तियों से मिलने वाला प्रेम, स्नेह तथा सहानुभूति पूर्ण व्यवहार बालक के शारीरिक विकास को द्विगुणित कर सकता है। माता–पिता के स्नेह से वंचित बालक दुखी रहने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप उसका संतुलित शारीरिक विकास नहीं हो पाता है।

9. **अन्य कारक–** उपरोक्त वर्णित कारकों के अतिरिक्त कुछ अन्य कारक भी व्यक्ति के विकास को प्रभावित कर सकते हैं। यह निम्नलिखित हैं –

- रोगो के कारण शरीर में उत्पन्न विकृतियॉ।
- दुघर्टना के कारण शारीरिक अंगो की हानि अथवा कार्यक्षमता में कमी।
- भौगोलिक परिस्थितियॉ।
- गर्भावस्था में की गयी असावधनियॉ।

बोध प्रश्न

टिप्पणी:– क नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

9. शारीरिक परिवर्तन किस प्रकार वातावरणीय कारकों से प्रभावित होता हैं?

....

....

....

10. आनुवांशिक कारक किस प्रकार शारीरिक परिवर्तनों को प्रभावित करते हैं?

....

....

....

5.8 सारांश

गर्भावस्था, शैशवावस्था, तथा किशोरावस्थ में होने वाले शारीरिक विकास तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों के विवेचन से स्पष्ट है कि शारीरिक विकास मानव विकास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है तथा उचित परिस्थितियों में ही शारीरिक रूप से स्वस्थ शिशुओं, बालकों तथा किशोरों का निर्माण किया जा सकता है।

5.9 अभ्यास कार्य

1. किशोरावस्था में पाये जाने वाले प्रमुख लक्षणों का उल्लेख करें।
2. एक बालक के शारीरिक विकास का अवलोकन करें और उसमें कौन–कौन से परिवर्तन दृष्टिगत हो रहे हैं उनका चार्ट बनायें।

5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. शरीर के वाह्य एवं आन्तरिक अंगों में जो आयु के अनुसार परिवर्तन होते हैं, वह शारीरिक विकास के अन्तर्गत आता है।
2. जन्म से पूर्व डिम्ब में जो विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते हैं उनका अध यन करें और जो विकास होते हैं उनका उल्लेख करें।

3. पिण्डावस्था एवं भ्रूणावस्था का अध्ययन करें निम्नलिखित आधार पर अन्तर लिखें।

- अवधि के आधार पर
- आकार के आधार पर
- क्रियाओं के आधार पर

4. बालक के जन्म लेने के तुरन्त बाद से लगभग 5–6 वर्ष तक जो अवस्था होती है, शैशवावस्था कहलाती है।

5. शरीर के कोमल अंगों का विकास

   लम्बाई व भार का विकास

   शरीर के आन्तरिक अंगों का विकास

   स्नायु संस्थान का विकास

6. बाल्यावस्था में होने वाले विकास का अध्ययन करें व उनकों क्रमबद्ध लिखें।

7. लम्बाई व भार में परिवर्तन

   मस्तिष्क में परिवर्तन

   हड्डियों व दांत में परिवर्तन

   विशेष शारीरिक अंगों में परिवर्तन व विकास

   आन्तरिक अंगों में परिवर्तन

8. शारीरिक संरचना में परिवर्तन

   आन्तरिक अंगों में परिवर्तन

   लिंगीय परिवर्तन

9. वातावरणीय कारकों का अध्ययन करें। उनका शारीरिक परिवर्तन पर क्या प्रभाव पड़ता है क्रमबद्ध करके लिखें।

10. वंशानुक्रम सम्बन्धी कारकों का अध्ययन करें का अवलोकन करें। माता पिता की शारीरिक संरचना, शारीरिक कमी, स्वास्थ्य आदि कारक हैं।

5.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंह, ए0के0 (1994) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।

Hurlock, E.B. (1981) Developmental Psychology : A life span approach fifth edition. Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

Hurlock, E.B. (1997) Child Development : Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई 6 संज्ञानात्मक विकास

संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 संज्ञानात्मक विकास का अर्थ

6.4 प्याजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

6.4.1 संवेदी–गामक अवस्था

6.4.2 पूर्व संक्रियात्मक अवस्था

6.4.3 मूर्त संक्रियात्मक अवस्था

6.4.4 औपचारिक संक्रिया की अवस्था

6.5 वायगास्की का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

6.6 जेराम ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

6.6.1 प्रतिनिधित्व

6.6.1.1 सक्रियता प्रतिनिधित्व

6.6.1.2 दृश्य प्रतिमा प्रतिनिधित्व

6.6.1.3 सांकेतिक प्रतिनिधित्व

6.7 सारांश

6.8 अभ्यास कार्य

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में शारीरिक विकास के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया गया है। इस इकाई में संज्ञानात्मक विकास के पक्षों का अध्ययन किया जायेगा। मनुष्य के विकास में संज्ञानात्मक विकास की उपयोगिता अत्यन्त है। समस्त प्रकार की मानसिक प्रक्रियायें, संज्ञानात्मक विकास के अन्तर्गत आती है। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का मत है कि एक शिक्षक के लिये संज्ञानात्मक विकास का ज्ञान होना अत्यन्त महत्वपूर्ण है। तभी वह विद्यार्थियों को ठीक प्रकार से समझ पाता है। संज्ञानात्मक विकास बालकों में होने वाले बौद्धिक विकास को इंगित करता

है। इस इकाई का अध्ययन करके आप संज्ञानात्मक विकास के बहुआयामीय पक्षों को समक्ष सकेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप इस योग्य हो जायेंगे कि:

- संज्ञान का अर्थ समझ सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास का अर्थ समझ सकेंगे व जो मानसिक क्रियायें इनसे जुड़ी हैं, उसकी विवेचना कर सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास में प्याजे के द्वारा किये गये कार्यों की महत्ता की विवेचना कर सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास में किये गये अन्य मनोवैज्ञानिकों के प्रयास का अध्ययन कर सकेंगे।
- संज्ञानात्मक विकास के शैक्षिक निहितार्थ की विवेचना कर सकेंगे।

6.3 संज्ञानात्मक विकास का अर्थ

संज्ञानात्मक विकास मनुष्य के विकास का महत्वपूर्ण पक्ष है। 'संज्ञान' शब्द का अर्थ है 'जानना' या 'समझना'। यह एक ऐसी बौद्धिक प्रक्रिया है जिसमें विचारों के द्वारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। संज्ञानात्मक विकास शब्द का प्रयोग मानसिक विकास के व्यापक अर्थों में किया जाता है जिसमें बुद्धि के अतिरिक्त सूचना का प्रत्यक्षीकरण, पहचान, प्रत्याह्वान और व्याख्या आता है। अतः संज्ञान में मानव की विभिन्न मानसिक गतिविधियों का समन्वय होता है।

मनोवैज्ञानिक 'संज्ञान' का प्रयोग ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया के रूप में करते हैं। 'संज्ञानात्मक मनोविज्ञान' शब्द का प्रयोग Vlric Neisser ने अपनी पुस्तक 'संज्ञानात्मक मनोविज्ञान' में सन् 1967 ई0 में किया था।

संज्ञानात्मक विकास इस बात पर जोर देता है कि मनुष्य किस प्रकार तथ्यों को ग्रहण करता है और किस प्रकार उसका उत्तर देता है। संज्ञान उस मानसिक प्रक्रिया को सम्बोधित करता है जिसमें चिन्तन, स्मरण, अधिगम और भाषा के प्रयोग का समावेश होता है। जब हम शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में संज्ञानात्मक पक्ष पर बल देते है तो इसका अर्थ है कि हम तथ्यों और अवधारणाओं की समझ पर बल देते हैं।

यदि हम विभिन्न अवधारणाओं के मध्य के सम्बन्धों को समझ लेते हैं हमारी संज्ञानात्मक समझ में वृद्धि होती है संज्ञानात्मक सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति किस प्रकार सोचता है, किस प्रकार महसूस करता है और किस प्रकार व्यवहार करता है। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया अपने अन्दर ज्ञान के सभी रूपों यथा स्मृति, चिन्तन, प्रेरणा और प्रत्यक्षण को शामिल करती है।

6.4 प्याजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण स्थान Jean Piaget का है। उन्होंने अपने तीन बच्चों और एक भतीजे के विकास का अध्ययन किया और बताया कि बच्चों का संज्ञानात्मक विकास बड़ों के संज्ञानात्मक विकास से अलग होता है। बच्चों का संज्ञानात्मक विकास यथार्थ की एक अलग समझ पर आध ारित होता है जो कि परिपक्वता और अनुभव के साथ धीरे–धीरे बदलता जाता है। इन सभी बदलावों को आयु के आधार पर अवस्थाओं में बांटा जा सकता है।

6.4.1 संवेदी–गामक अवस्था

यह अवस्था जन्म से दो वर्ष तक चलती है। इस अवस्था का बालक चीजों को इधर–उधर करना, वस्तुओं को पहचानने की कोशिश करना, किसी चीज को पकड़ना, मुंह में डालना आदि क्रियाएं करता है। इन क्रियाओं के माध यम से शिशु अपने आस–पास के वातावरण का संवेदी–गामक ढांचा बनाता है अर्थात उसकी संवेदनाएँ परिष्कृत होती है तथा पेशीयों में मजबूती व गत्यात्मक क्रियाओं में नियन्त्रण आना प्रारम्भ हो जाता है। शिशु असहाय जीवधारी से गतिशील, अर्द्ध–भाषी तथा सामाजिक प्राणी बनने की प्रक्रिया में होते हैं। वे आवाज व प्रकाश के प्रति प्रतिक्रिया करते है। रूचिकर कार्यों को करते रहने की कोशिश करते है व वस्तुओं को स्थिर मानते है।

6.4.2 पूर्व संक्रियात्मक अवस्था

यह अवस्था दो वर्ष से सात वर्ष तक चलती है। इस अवस्था की दो प्रमुख विशेषताएं होती है प्रथम, संवेदी–गामक संगठन का संवर्धन तथा दूसरा, कार्यो के आत्मीकरण का प्रारम्भ जिससे संक्रियाओं का निर्माण होने लगे। साथ ही, इस अवस्था में संकेतात्मक कार्यो का प्रादुर्भाव तथा भाषा का प्रयोग भी होता है। इस अवस्था को दो भागों में बांटा जा सकता है –

1. पूर्व–प्रत्ययात्मक काल

2. आंत–प्रज्ञ काल

पूर्व–प्रत्यात्मक काल लगभग 2 वर्ष से 4 वर्ष तक चलता है। इस स्तर का बच्चा सूचकता विकसित कर लेता है अर्थात किसी भी चीज के लिए प्रतिभा, शब्द आदि का प्रयोग कर लेता है। छोटा बच्चा माँ की प्रतिमा रखता है। बालक विभिन्न घटनाओं और कार्यों के संबंध में क्यों और कैसे जानने में रूचि रखते हैं। इस अवस्था में भाषा विकास का विशेष महत्व होता है। दो वर्ष का बालक एक या दो शब्दों के वाक्य बोल लेता है जबकि तीन वर्ष का बालक आठ–दस शब्दों के वाक्य बोल लेता है। आंत–प्रज्ञ चिन्तन की अवस्था 4 वर्ष से 7 वर्ष तक चलती है। बालक वातावरण में जैसा दिखता है वैसी प्रतिक्रिया देता है। उसमें तार्किक चिन्तन की कमी होती है। अर्थात बालक का चिन्तन प्रत्यक्षीकरण से प्रभावित होती है। उदाहरण के लिए एक गिलास पानी को यदि किसी चौड़े बर्तन में लोट देते हैं और बच्चे से पूछे कि "पानी की मात्रा उतनी ही है या कम या अधिक हो गयी। तो बच्चा कहेगा "चौड़े बर्तन में पानी कम है। क्योंकि इस पानी की सतह नीची है।" ऐसा बालक द्वारा कारण व परिणाम को अलग न कर पाने के कारण होता है।

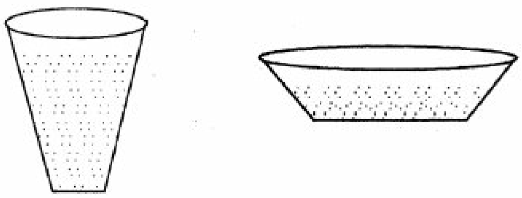

मात्रा का संरक्षण

6.4.3 मूर्त संक्रियात्मक अवस्था

यह अवस्था सात वर्ष से बारह वर्ष तक चलती है। इस अवस्था में यदि समस्या को स्थूल रूप में बालक के सामने प्रस्तुत किया जाता है जो वह समस्या का समाधान कर सकते हैं तथा तार्किक संक्रियाएँ करने लगते हैं। इस अवस्था में बालक गुणों के आधार पर वस्तुओं को वर्गीकृत कर सकते है जैसे एक गुच्छे मे गुलाब व गुल्हड़ के फूल एक साथ हैं। बालक इनको अलग–अलग रख सकता है। वे चीजों को छोटे से बड़े के क्रम में ठीक प्रकार लगा लेते हैं।

प्याजे ने इस अवस्था की सबसे बड़ी उपलब्धि बालक के द्वारा संरक्षण के प्रत्यय की प्राप्ति माना है। मूर्त संक्रियावस्था में बालकों में आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति कम होने लगती है और वे अपने बाह्य जगत को अधिक महत्व देने लगते है। जब मूर्त सक्रियाएं बालकों की समस्या का समाधान करने की दृष्टि से उपयुक्त नही रह पाती है तब बालक बौद्धिक विकास के अन्तिम चरण की ओर अग्रसर होने

लगता है।

6.4.4 औपचारिक संक्रिया की अवस्था

औपचारिक सक्रिया की अवस्था ग्यारह वर्ष से पन्द्रह वर्ष तक चलती है। चिन्तन ज्यादा लचीला तथा प्रभावशाली हो जाता है। बालक अमूर्त बातों के सम्बन्ध में तार्किक चिन्ता करने की योग्यता विकसित कर लेता है। अर्थात शाब्दिक व सांकेतिक अभिव्यक्ति का प्रयोग तार्किक चिन्तन में करता है। बालक परिकल्पना बनाने लगता है, व्याख्या करने लगता है तथा निष्कर्ष निकालने लगता है। तर्क की अगमन तथा निगमन दोनों विधियों का प्रयोग वह करता है। अब समस्या को मूर्त रूप में प्रस्तुत करना जरूरी नही है। बालक का चिन्तन पूर्णतः क्रमबद्ध हो जाता है अतः दी गयी समस्या का तार्किक रूप से सम्भावित समाधान ढूंढ लेता है।

प्याजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की ये चार अवस्थाएं क्रम में होती है। दूसरी अवस्था में पहुंचने से पहले पहली अवस्था से गुजरना आवश्यक है। एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक पहुंचने के क्रम में बालक में सोचने में मात्रात्मक के साथ–साथ गुणात्मक वृद्धि होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

(ख) इस इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1. संज्ञानात्मक विकास से क्या तात्पर्य समझते हैं?

....

....

....

2. प्याजे द्वारा संज्ञानात्मक विकास की किन विभिन्न अवस्थाओं का उल्लेख किया गया है?

....

....

....

3. मूर्त संक्रिया अवस्था में सामान्यतः बालकों में कौन–कौन से प्रत्यय बन जाते हैं?

....

....

....

6.5 वायगास्की का संज्ञानात्मंक विकास का सिद्धान्त

वायगास्की ने सन 1924–34 में इंस्टीट्यूट आफ साइकोलाजी (मास्को) में अध्ययन किया। यहां पर उन्होंने संज्ञानात्मक विकास पर विशेष कार्य किया विशेषकर भाषा और चिन्तन के सम्बन्ध पर। उनके अध्ययन में संज्ञान के विकास के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और सामाजिक कारकों के प्रभाव का वर्णन किया गया है। वायगास्की के अनुसार भाषा समाज द्वारा दिया गया प्रमुख सांकेतिक उपकरण है जो कि बालक के विकास में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

जिस प्रकार हम जल के अणु का अध्ययन उसके भागों (H_2 & H_2) के द्वारा नहीं कर सकते हैं उसी प्रकार व्यक्ति का अध्ययन भी उसके वातावरण से पृथक होके नही किया जा सकता है। व्यक्तिं का उसके सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक सन्दर्भ में अध्ययन ही हमें उसकी समग्र जानकारी प्रदान करता है। वायगास्की ने संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन के दौरान प्याजे का अध्ययन किया और फिर अपना दृष्टिकोण विकसित किया।

Piaget के अनुसार विकास और अधिगम दो अलग धारणाएं हैं जिनमें संज्ञान भाषा के विकास को एक प्राकृतिक प्रक्रिया के रूप में प्रभावित करता है। विकास हो जाने के पश्चात् उस विशेष अवस्था में आवश्यक कौशलों की प्राप्ति ही अधिगमं है।

इस प्रकार Piaget के सिद्धान्त के अनुसार विकास, अधिगम की पूर्वावस्था है न कि इसका परिणाम। अर्थात् अधिगम का स्तर विकास के ऊपर है। Piaget के अनुसार अधिगम के लिए सर्वप्रथम एक निश्चित विकास स्तर पर पहुंचना आवश्यक है।

वायगास्की के अनुसार अधिगम और विकास पारस्परिक प्रक्रिया में बालक की सक्रिय भागीदारी होती है जिसमें भाषा का संज्ञान पर सीधा प्रभाव होता है। अधिगम और विकास अन्तर्सम्बन्धित प्रक्रियाएं है। जो कि छात्र के जीवन के पहले दिन से प्रारम्भ हो जाती है। वायगास्की के अनुसार विभिन्न बालकों के अलग–अलग विकास स्तर पर अधिगम की व्यवस्था समरूप तो हो सकती है किन्तु एकरूप नही क्योंकि सभी बच्चों का सामाजिक अनुभव अलग होता है। उनके अनुसार अधिगम विकास को प्रेरित करता है। उनका यह दृष्टिकोण Piaget एवं अन्य सिद्धान्तों से भिन्न है।

वायगास्की अपने सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धान्त के लिए जाने जाते है।

इस सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक अर्न्तक्रिया ही बालक की सोच व व्यवहार में निरन्तर बदलाव लाता है और जो एक संस्कृति से दूसरे में भिन्न हो सकता है। उनके अनुसार किसी बालक का संज्ञानात्मक विकास उसके अन्य व्यक्तियों से अन्तर्सम्बन्धों पर निर्भर करता है।

वायगास्की ने अपने सिद्धान्त में संज्ञान और सामाजिक वातावरण का सम्मिश्रण किया। बालक अपने से बड़े और ज्ञानी व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर चिन्तन और व्यवहार के संस्कृति अनुरूप तरीके सीखते है। सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धान्त के कई प्रमुख तत्व है। प्रथम महत्वपूर्ण तत्व है– व्यक्तिगत भाषा। इसमें बालक अपने व्यवहार को नियंत्रित और निर्देशित करने के लिए स्वयं से बातचीत करते है।

सामाजिक–सांस्कृतिक सिद्धान्त का दूसरा महत्वपूर्ण तत्व है–निकटतम विकास का क्षेत्र।

वायगास्की ने शिक्षक के रूप में अनुभव के दौरान यह जाना है कि बालक अपने वास्तविक विकास स्तर से आगे जाकर समस्याओं का समाधान कर सकते है। यदि उन्हें थोड़ा निर्देश मिल जाए। इस स्तर को वायगास्की ने सम्भावित विकास कहा। बालक के वास्तविक विकास स्तर और सम्भावित विकास स्तर के बीच के अन्तर/क्षेत्र को वायगास्की ने निकटतम विकास का क्षेत्र कहा।

6.6 जेरोम ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त

ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास का माडल प्रस्तुत किया। उनके अनुसार यह वह माडल है जिसके द्वारा मनुष्य अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करता है।

ब्रूनर ने अपना संज्ञान सम्बन्धी अध्ययन सर्वप्रथम प्रौढ़ो पर किया, तत्पश्चात् विद्यालय जाने वाले बालकों पर, फिर तीन साल के बालकों पर और फिर नवजात शिशु पर किया।

6.6.1 प्रतिनिधित्व–

प्रतिनिधित्व का ब्रूनर के सिद्धान्त में महत्वपूर्ण स्थान है। प्रतिनिधित्व उन नियमों की व्यवस्था है जिनके द्वारा व्यक्ति अपने अनुभवों को भविष्य में आने वाली घटनाओं के लिए संरक्षित करता है। यह व्यक्ति विशेष के लिए उसके

संसार को/वातावरण का प्रतिनिधित्व करता है।

प्रतिनिधित्व तीन प्रकार से हो सकता है –

प्रतिनिधित्व

संक्रियानात्मक प्रतिनिधित्व | दृश्यप्रतिमा प्रतिनिधित्व | प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व

6.6.1.1 सक्रियता प्रतिनिधित्व–

यह प्रतिनिधितव की सबसे प्रारम्भिक अवस्था है जो जीवन के प्रथम वर्ष के उत्तरार्द्ध में पाया जाता है। इसके अन्तर्गत वातावरणीय वस्तुओं पर बालक की प्रतिक्रिया आती है। इस प्रकार का प्रतिनिधित्व संवेदी–गामक अवस्था की पहचान हैं यह व्यक्ति पर केन्द्रित होता है। अतः इसे आत्म केन्द्रित भी कह सकते है।

6.6.1.2 दृश्यप्रतिमा प्रतिनिधित्व –

यह प्रत्यक्षीकरण को क्रिया से अलग करता है। क्रियाओं की पुनरावृत्ति द्वारा ही बालक के मन में क्रियाओं की अवधारणा का विकास होता है। अर्थात् क्रियाओं को स्थानिक परिपेक्ष्य में समझना आसान हो जाता है। इस प्रकार इस प्रतिनिधित्व में क्रियामुक्त अवधारणा का विकास होता है। यह प्रतिनिधित्व प्रथम वर्ष के अन्त तक पूर्णतया विकसित हो जाता है।

6.6.1.3 सांकेतिक प्रतिनिधित्व –

यह किसी अपरिचित जन्मजात प्रतीकात्मक क्रिया से प्रारम्भ होता है जो कि बाद में विभिन्न व्यवस्थाओं में रूपान्त्रित हो जाता है। क्रिया और अवधारणा प्रतिकात्मक क्रियाविधि को प्रदर्शित कर सकती है। लेकिन भाषा प्रतिकात्मक क्रिया का सबसे अधिक विकसित रूप है।

प्रतिनिधित्वों के मध्य सम्बन्ध और अन्तः क्रिया

यह तीनों प्रतिनिधित्व वैसे तो एक दूसरे से पृथक व स्वतन्त्र है किन्तु यह एक दूसरे में तब्दील भी हो सकते है। यह स्थिति तब होती है जब बालक के मन में कोई दुविधा होती है और वह अपनी समस्या को सुलझाने के लिए सभी प्रतिनिधि त्वों की पुनरावृत्ति करता है। यह तीन प्रकार से हो सकता है –

1. मिलान द्वारा
2. बेमिलान द्वारा
3. एक दूसरे से स्वतन्त्र रहकर

अगर दो प्रतिनिधित्व आपस में मिलान करते है तो व्यक्ति को दुविधा नहीं होती है और वह सामान्य प्रक्रियाओं को करते हुए अपनी समस्याओं को सुलझा लेता है। जब दो प्रतिनिधित्व में बेमिलान होता है तो किसी एक में सुधार किया जाता है या उसे दबा कर दिया जाता है। पूर्व किशोरावस्था में यह दुविधा क्रिया और दृश्य व्यवस्था के बीच होती है जिनमें उन्हें एक या अन्य चुनना होता है। बार–बार समस्या समाधान करते–करते उनमें प्राथमिकता का विकास होता है।

क्रिया और प्रतिनिधित्व एक दूसरे से स्वतन्त्र नहीं हो सकते है किन्तु प्रतिकात्मक प्रतिनिधित्व उन दोनों से स्वतन्त्र हो सकता है। प्रतिनिधित्व के माध्यम के रूप में भाषा अनुभव से अलग होती है और जब यह अनुभव और चिन्तन के आधार पर प्रयोग किया जाता है तो उच्च स्तर की मानसिक क्रियाओं को करने में सक्षम होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

4) वायगास्की के संज्ञानात्मक विकास में भाषा सम्बन्धी विचार क्या है ?

....

....

....

5) ब्रूनर द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्त में अनुभूतियों को मानसिक रूप से एक शिशु किन तरीकों से प्रकट करता है ?

....

....

....

6.7 सारांश

संज्ञान से तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से होता है जिसमें संवेदना, प्रत्यक्षण, स्मृति, चिंतन आदि समस्त मानसिक क्रियाये सम्मिलित होती है। संज्ञानात्मक विकास का एक सिद्धान्त प्याजे द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसर बालकों में संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थायें होती है–संवेदी–पेशीय अवस्था, प्राक संक्रियात्मक अवस्था, ठोस संक्रिया की अवस्था तथा औपचारिक संक्रिया की अवस्था। पियाजे के सिद्धान्त की शिक्षकों व शिक्षार्थियों के लिये अत्यन्त उपयोगिता है।

संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या वायगोस्की द्वारा भी की गयी। वायगास्की ने अपने सिद्धान्त में भाषा और चिंतन के महत्व पर जोर दिया। संज्ञानात्मक विकास में ब्रूनर ने भी एक सिद्धान्त की व्याख्या की है। इसके अनुसार बालकों के संज्ञानात्मक विकास में सक्रियता, दृश्य प्रतिमा तथा सांकेतिक का महत्वपूर्ण स्थान है।

6.8 अभ्यास कार्य

1. जॉ प्याजे व वायगास्की के संज्ञानात्मक सिद्धान्त का तुलनात्मक विवेचन करें।
2. जेराम ब्रूनर द्वारा दिये गये सिद्धान्त का उल्लेख करे।
3. संज्ञानात्मक विकास के तीनों सिद्धान्तों का शैक्षिक परिस्थितियों में निहितार्थ लिखे।

6.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समस्त प्रकार की मानसिक क्रियायें जिसमें संवेदन, प्रत्यक्षण, स्मरण, चिंतन आदि का

   समावेश होता है, उनका सही विकास।
2. 1) संवेदी–पेशीय अवस्था

   2) प्राकसंक्रियात्मक अवस्था

   3) ठोस संक्रिया की अवस्था

   4) औपचारिक संक्रिया की अवस्था
3. संरक्षण, संबन्ध तथा वर्गीकरण सम्बन्धी विभिन्न प्रत्यय।
4. वायगास्की के सिद्धान्त का अध्ययन करे। जिसमें संज्ञानात्मक विकास में भाषा के

   महत्व को इंगित किया गया है। उनकी विवेचना करके लिखे।
5. 1) सक्रियता

   2) दृश्य प्रतिमा

   3) सांकेतिक

6.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंह, ए0के0 (1994) शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना।

Santrock, J.W. (2007) Child Development, eleventh edition. Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई –7 संवेगात्मक विकास

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 संवेगात्मक विकास

7.4 संवेगों की विशेषताएं

7.5 बच्चों के संवेगों की विशेषताएँ

7.6 बच्चों के सामान्य संवेगात्मक ढ़ग

7.6.1 डर

7.6.2 क्रोध

7.6.3 ईष्या

7.6.4 हर्ष संतोष एंव सुख

7.6.5 स्नेह

7.6.6 उत्सुकता

7.7 किशोर के सामान्य संवेगात्मक ढ़ग

7.7.1 डर

7.7.2 चिन्ता

7.7.3 दुश्चिन्ता

7.7.4 क्रोध

7.7.5 ईष्या

7.7.6 जलन की भावना

7.7.7 नाराज होना

7.7.8 उत्सुकता

7.7.9 स्नेह

7.7.10 दुःख

7.7.11 खुशी

7.8 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

7.9 संवेगात्मक विकास का शैक्षिक निहितार्थ

7.10 सांराश

7.11 अभ्यास कार्य

7.12 बोध प्रश्नो के उत्तर

7.13 कुछ उपयोगी पुस्मकें

7.1 प्रस्तावना

संज्ञानात्मक विकास का मानव जीवन पर कितना प्रभाव पड़ता है इसकी चर्चा पिछली इकाई में की जा चुकी है। मनुष्य एक संवेदनशील प्राणी है। विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के व्यवहार उसके द्वारा प्रकट किये जाते है। एक व्यक्ति एक ही परिस्थिति के उत्पन्न होने पर अलग–अलग व्यवहार क्यों प्रकट करता है, यह उसके संवेग पर निर्भर करता है। एक बच्चे द्वारा हँसते हुये अचानक हाथ पैर पटकने का व्यवहार दूसरे को आश्चर्य में डाल सकता है। इस तरह के संवेगात्मक व्यवहार की विशेषतायें, संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न घटक, अलग–अलग आयु–वर्ग में प्रकट होने वाले संवेग आदि की जानकारी आवश्यक है। प्रस्तुत इकाई को इन्ही समस्त बातों को ध्यान में रखकर लिखा गया है। जिसकी जानकारी आपको मिलेंगी।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जाएँगे कि:

- संवेग का अर्थ समझ सकेंगे;
- संवेगात्मक विकास का अर्थ समझ सकेंगे;
- संवेगों की सामान्य विशेषताएँ समझ सकेंगे तथा बच्चों में पाये जाने वाले संवेगों की विशेषताएं जान सकेंगे;
- बच्चों तथा किशोरों में पाये जाने वाले संवेगात्मक व्यवहार के प्रारूप को समझ सकेंगें;
- संवेगात्मक विकास को कौन–कौन से कारक प्रभावित करते है, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे;
- विभिन्न आयु में प्रकट होने वाले संवेगो का ज्ञान प्राप्त कर सकेगे व इन संवेगों का शैक्षिक निहितार्थ समझ सकेंगे;

7.3 संवेगात्मक विकास

जीवन में संवेगों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है तथा व्यक्ति के वैयक्तिक

एवं सामाजिक विकास में संवेगों का योगदान होता है। लगातार संवेगात्मक असन्तुलन/अस्थिरता व्यक्ति के वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करती है तथा अनेक प्रकार की शारीरिक, मानसिक और समाजिक समस्याओं को उत्पन्न करती है। दूसरी ओर संवेगात्मक रूप से स्थिर व्यक्ति खुशहाल, स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करता है। अतः संवेग व्यक्ति के व्यक्तित्व के सभी पक्षों को प्रभावित करते है।

अंग्रेजी का 'Emotion' शब्द लेटिन भाषा के शष्द 'Emovere' से लिया गया है। 'Emovere' का अर्थ होता है– Stir up, to agitate या to excite अर्थात – उत्तेजित हौना।

इंगलिश तथा इंगलिश (1958) के अनुसार– "संवेग एक जटिल भाव की अवस्था होती है जिसमें कुछ खास–खास शारीरिक व ग्रन्थीएँ क्रियाएँ होती हैं।"

बेरान, बर्न तथा कैण्टोविल (1980) के अनुसार– " संवेग से तात्पर्य एक एसी आत्मनिष्ठ भाव की अवस्था से होता है जिसमें कुछ शारीरिक उत्तेजना पैदा होती है और फिर जिसमें कुछ खास–खास व्यवहार होते है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि –संवेग–

1. जटिल मानसिक अवस्था है जिसमें शारीरिक व मानसिक पक्षों का समावेश होता है।
2. किसी व्यक्ति, वस्तु एवं स्थिति के सम्बन्ध में सुख–दुख की अनुभूति कम या अधिक मात्रा में होती है।
3. संवेग की अवस्था में आंगिक प्रक्रियाओं जैसे नाड़ी, श्वसन, ग्रन्थिस्त्रावों का एक विसरित उद्दीपन होता है।
4. व्यक्ति की चिन्तन एवं तर्क शक्ति क्षीण हो जाती है।
5. व्यक्ति आवेगी बल का अनुभव करता है।

संवेगो के विकास के सन्दर्भ में दो मत है–

1. **संवेग जन्मजात होते है** इस मत को मानने वालो में वेकविन तथा हांलिगवर्थ आदि है।

   हांलिगवर्थ का मानना है कि प्राथमिक संवेग जन्मजात होते है। वाटसन ने बाताया कि जन्म के समय बच्चे में तीन प्राथमिक संवेग भय, क्रोध व प्रेम होते है।

2. **संवेग अर्जित किए जाते है** - कुछ मनोवैज्ञनिको का मत है कि संवेग विकास एवं वृद्धि की प्रक्रिया के दौरान प्राप्त किए जाते है। इस सम्बन्ध में हुए प्रयोग स्पष्ट करते है कि जन्म के समय संवेग निश्चित रूप से विद्यमान नही होते है। बाद में धीरे–धीरे बच्चा ऐसी निश्चित प्रतिक्रियाएँ करता है जिससे ज्ञात होता है कि उसे सुखद व दुखद अनुभूति हो रही है।

7.4 संवेगो की विशेषताएँ

1. संवेगात्मक अनुभव किसी मूल प्रवृति या जैविकीय उत्तेजना से जुड़े होते है।
2. सामान्यतः संवेग प्रत्यक्षीकरण का उत्पाद होते हैं।
3. प्रत्येक संवेगात्मक अनुभव के दौरान प्राणी में अनेक शारीरिक परिवर्तन होते है।
4. संवेग किसी स्थूल वस्तु या परिस्थिति के प्रति अभिव्यक्त किए जाते है।
5. प्रत्येक जीवित प्राणी में संवेग होते है।
6. विकास के सभी स्तरों में संवेग होते है और बच्चे व बूड़ो में उत्पन्न किए जा सकते है
7. एक ही संवेग को अनेक प्रकार के उतेजनाओं (वस्तुओं या परिस्थितियों) से उत्पन्न किया जा सकता है
8. संवेग शीघ्रता से उत्पन्न होते है और धीरे–धीरे समाप्त होते है।

7.5 बच्चों के संवेगों की विशेषताएँ

1. बच्चों के संवेग थोड़े समय के लिए होते है बच्चे अपने संवेगो की अभिव्यक्ति बाहरी व्यवहार द्वारा तुरन्त कर देते है जब कि बड़े होने पर बाहरी व्यवहार पर सामाजिक नियन्त्रण होता है।
2. बच्चों के संवेग तीव्र होते है। बच्चे डर, क्रोध व खुशी आदि की अभिव्यक्ति अत्यधिक तीव्रता से करते है।
3. बच्चों के संवेग अस्थिर होते है। बच्चों के संवेगो में शीघ्रता से बदलाव होता है उदाहरणार्थ अभी लड़ाई और थोड़ी ही देर में तुरन्त दोस्ती कर लेते है।
4. बच्चों के संवेग बार–बार दिखायी देते है क्योकि वे अपने संवेगों को छिपाने

में असमर्थ होते है। बच्चे दिन में अनेक बार गुस्सा करते है या खुश होते है।

5. बच्चों की संवेगात्मक प्रतिक्रिया में भिन्नता पायी जाती है एक ही संवेग की अवस्था में प्रत्येक बच्चा अलग–अलग प्रतिक्रिया देता है– उदाहरणार्थ :– अजनबी के सामने एक बच्चा भाग जाएगा व दूसरा रोने लगेगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी:– क. अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए। लिखए।

ख. इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरो से अपने उत्तर मिलाइए।

1. संवेग से क्या समझते है?

....

....

....

2. बालकों में पाये जाने वाले संवेगो की प्रमुख विशेषताए बताइए

....

....

....

7.6 बच्चों के सामान्य संवेगात्मक ढ़ंग

7.6.1 डर –

प्रथम वर्ष के अन्त के पहले ही डर से सम्बन्धित उत्तेजनाऍं बच्चे पर प्रभाव डालने लगती है। समय के साथ–साथ उन वस्तुओं की संख्या बढती जाती है जो बच्चे को डराती है। मानसिक विकास के साथ–साथ वह इस योग्य होता है कि उन वस्तुओं और व्यक्तियों को पहचान सके जो उसे डराती हैं। डर चाहे तार्किक हो या अतार्किक इसकी जड़ बच्चों के अनुभवों में होती है। छोटा बच्चा सामान्यतः जोर की आवाज, अजनबी – लोग, –जगह, –वस्तुएँ, अंधेरी जगह व अकेले रहने से डरते है। यह डर अवस्था के साथ–साथ कम हो जाता है। डर के प्रति बच्चे की प्रतिक्रिया इस बात पर निर्भर करती है कि उसकी शारीरिक व मानसिक दशा क्या है। यदि बच्चा थका हुआ है तो ऐसी स्थितिया डर को और

बढ़ाती है। Boston ने अपने अध्ययनों में पाया कि बुद्धिमान बच्चे डर अधिक प्रदर्शित करते है क्योंकि वे खतरे की सम्भावनाओं को समझते है। डर तब उपयोगी होता है जब यह खतरे से सावधान करता है।

7.6.2 क्रोध –

यह संवेगात्मक प्रतिक्रिया बच्चे ज्यादा करते है क्योंकि वातावरण में क्रोध दिलाने वाले उत्तेजक डर की अपेक्षा अधिक होते है। अधिकतर बच्चे शीघ्र ही यह समझ जाते है कि क्रोध ध्यान आकृष्ड करने का अच्छा तरीका है। इससे उनकी इच्छा की पूर्ति होती है।

छोटे बच्चे को आराम न मिलने पर क्रोध आता है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है तो वह स्वयं काम करना चाहता है और कार्य न कर पाने पर गुस्सा दिखाता है। विद्यालय जाने से पूर्व की आयु के बच्चे उन पर गुस्सा करते है जो उनके खेल की चीजो को छूते है व उनके खेलने में बाधा उत्पन्न करते है। उत्तर बाल्यावस्था में बच्चें की मजाक उड़ाने, उनकी गलती निकालने व दूसरे बच्चो से तुलना करने पर उनके गुस्सा आता है। क्रोध को अभिव्यक्त करने का ढ़ंग वातावरण से सीखा जाता है।

7.6.3 ईर्ष्या –

ईर्ष्या बच्चे तब दिखाते है जब प्यार की कभी के लिए वास्तव में कोई स्थिति जिम्मेदार होती है या बच्चा प्यार की कमी महसूस करता है। ईर्ष्या इस बात पर निर्भर करती है कि दूसरे उससे कैसा व्यवहार करते है व बच्चे को कैसा प्रशिक्षण मिला है। कभी–कभी माता–पिता दूसरो की प्रशंसा अत्याधिक करते है उस प्रकार वे अपने बच्चों में प्रतिद्वन्दिता व स्पर्धा उत्पन्न करते है। ईर्ष्या की स्थिति में बच्चे विभिन्न प्रतिक्रिया देते है।

1. **गुस्सा करनाः**– यह दो प्रकार से प्रकट किया जाता है–

(अ) प्रत्यक्ष रूप से जिससे ईर्ष्या होती है उसके रास्ते में मिल जाने पर उस पर प्रहार करना

(ब) अप्रत्यक्ष रूप से जिससे ईर्ष्या होती है उसकी अनुपस्थिति में उसके बस्ते से उसकी कापी या किताब चुराना लेना।

2. **आत्मीकरण करनाः**– जिससे ईर्ष्या होती है उससे बच्चा आत्मीकरण कर लेते है।

3. अधिक प्यार मिलने वाले से स्वयं को अलग करना

4. **दमनः–** बच्चा अपनी भावनाओं को यह कहते हुए दबा देता है कि मैं परवाह नही करता

5. **मार्गान्तीकरण–** यदि बच्चा पढने में तेज बच्चे से ईर्ष्या करता है तो वह खेल में स्वयं को आगे कर लेता है।

7.6.4 हर्ष, सन्तोष एवं सुख–

ये तीनो सुखद संवेग है। इनमें मात्रा का अन्तर है। ये निश्चयात्मक संवेग है। क्योकि व्यक्ति उस परिस्थिति को स्वीकार करता है जो इस संवेग को उत्पन्न करती है। छोटे बच्चों में ये संवेग शारीरिक कष्ट न होने पर देखा जाता है। बडे बच्चों को सन्तोष व हर्ष तब होता है जब उन्हे सफलता मिलती है, दूसरें से प्रशंसा मिलती है व दूसरो से उच्चता या श्रेष्ठता का अनुभव होता है।

7.6.5 स्नेह –

स्नेह बच्चे किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति दिखाते है। छोटे बच्चे उनके प्रति स्नेह दिखाते है जो उनकी आवश्यमताओं की परवाह करते है, उनसे खेलते है, सामान्यतः जो उन्हे हर्ष एवं सन्तोष प्रदान करते है। परिवार के सदस्यों एवं ऐसे लोग जिनसे खून का सम्बन्ध नही है, बच्चा स्नेह दिखाएगा या नही यह इस बात पर निर्भर करता है कि बच्चे के प्रति इन लोगो का व्यवहार कैसा है।

7.6.6 उत्सुकता या कौतुहल –

छः से सात महीने के बाद बच्चे नई चीजों को पकड़ना चाहते है। पकड़ने के बाद सब तरफ से देखकर, छूकर, पटककर, हिलाडुला कर, मुहँ में डालकर विभिन्न ऐन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करते है। जैसे ही बच्चे बोलना सीखते है वे अपने कौतुहल को प्रश्न पूछकर कौतुहल को शान्त करते है आठ से नौ वर्ष के बच्चे इसी इच्छा के कारण अपना अधिक समय पढ़ने में लगाते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

(ख) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3. बच्चों में सामान्यतः कौन–कौन से संवेग पाये जाते है ?

....

....

....

4. सामान्यतः ईर्ष्या संवेग में बच्चें किस तरह की प्रतिक्रियायें प्रकट करते है ?

....

....

....

7.7 किशोर के सामन्य संवेगात्मक ढंग

7.7.1 डर –

किशोर सामाजिक परिस्थितियों, अपरिचित व्यक्तियों एवं नई स्थिति में जाने से डरते है। डर की अभिव्यक्ति में लिंग भेद पाया जाता है । क्योकि लड़के व लड़कियों के मूल्यों में अन्तर होता है। लड़किया व्यक्तिगत सुरक्षा को विशेष महत्व देती है इसलिए अपरिचित के सामने डरती है जबकि लड़कों में ऐसा नही पाया जाता। डर पर सामाजिक – आर्थिक स्तर का भी प्रभाव पड़ता है।

7.7.2 चिन्ता –

चिन्ता डर से उत्पन्न होती है। ये काल्पनिक कारणों से होती है। इसमें वास्तविकता का अंश भी होता है लेकिन ये अनावश्यक रूप से बड़ी छुपी अवस्था है अर्थात् परेशानी अभी है नही, लेकिन आ सकती है इस बात की चिन्ता होती हैं। चिन्ता किसी वस्तु, व्यक्ति एवं स्थिति से सम्बन्धित हो सकती है। जैसे परीक्षा में अच्छे नम्बर आयेगें या नही, नौकरी मिलेगी या नही या फिर दूसरों के सामने बोलने से डरते है। लड़के व लडकियों के मूल्यों में अन्तर अलग–अलग होते है। जैसे लड़के नौकरी व व्यवसाय को लेकर चिन्तित होते है जबकि लड़कियां बाहय आकृति एवं सामाजिक मान्यता को लेकर अधिक चिन्तित रहती है।

7.7.3 दुश्चिन्ता –

दुश्चिन्ता आन्तरिक द्वन्द्व के कारण उत्पन्न होती है। यह लगातार रहने वाली कष्टकारी मानसिक दशा है। व्यक्ति बेचैनी का अनुभव करता है। उसे यह

स्पष्ट नही होता है कि वह क्या करे और क्या न करें। जब अनेक चिन्ताएं एकत्रित होती है तो वह दुश्चिन्ता का रूप धारण कर लेती है। उदाहरण के लिए यदि किशोर ऐसे सांस्कृतिक समूह में रहता है जहां वाह्य आकृति, प्रसिद्धि, अध्ययन व सम्प्राप्ति को महत्व दिया जाता है और किशोर स्वयं को इन सांस्कृतिक आशाओं के अनुरूप नही पाता तो दुश्चिन्ता हो जाती है।

7.7.4 क्रोध –

किशोरो को पक्षपातपूर्ण व्यवहार से गुस्सा आता है। यह पक्षपातपूर्ण व्यवहार घर पर भी हो सकता है। यदि कोई उन पर रोब जमाता है तो गुस्सा आता हैं। भाई बहनों द्वारा एक दूसरे का सामान प्रयोग करने पर, व्यंग्यात्मक बातों का प्रयोग करने पर, आदतों मे बाधा होने पर, योजना को सफलतापूर्वक सम्पन्न न करने पर क्रोध आता है। क्रोध की अभिव्यक्ति में किशोर चीजों को तोड़ते, फेंकते है, तेज बोलते है। कभी कभी बोलना बन्द कर देते है।

7.7.5 ईर्ष्या –

इसमें दो संवेग शामिल होते है। सामाजिक स्तर खोने का डर और क्रोध । किशोरावस्था में ईर्ष्या भाई बहनों के प्रति कम और संगी साथियों के प्रति ज्यादा होती है। जितना अधिक किशोर सामाजिक स्थितियों में असुरक्षा का अनुभव करेगा उतना अधिक उन लोगों से ईर्ष्या करेगा जिनकों सामाजिक मान्यता प्राप्त है। असन्तुष्ट बच्चा ईर्ष्या का शिकार होता है। इस संवेग की अनुभूति पर मौखिक अभिव्यक्ति होती है। जैसे मजाक उड़ाना या व्यंग्य करना।

7.7.6. जलन की भावना –

जलन की भावना व्यक्ति की चीजों के प्रति होती है जैसे कोई अमीर घर का लड़का कार में आता है, अच्छे कपड़े पहनता है, अच्छे खिलौने रखता है। तो गरीब घर के लड़के को उसकी इन सुविधाओं से जलन होती है।

7.7.7 नाराज होना –

यह गुस्से से कम तीव्र संवेग है। किशोर गुस्से की तुलना में नाराज अधिक होते है। किशोर उन चीजों के बारे में बात करके सुख का अनुभव करते है। जो उसे नाराज करती है। किशोर दूसरें लोगों के भाषण, व्यवहार करने के तरीके से अधिक नाराज़ होते है। किशोर जब आशा के अनुरूप कार्य नही कर पाता, उसका समायोजन अच्छा नही होता वे नाराज होते है।

7.7.8 जिज्ञासा/उत्सुकता –

किशोर लिंग, वैज्ञानिक चीजों, संसार की घटनाओं, धर्म व नैतिकता में उत्सुकता दिखाते है और इन विषयों पर वे प्रश्न भी करते है। वे किताबें, पत्र पत्रिकाएं पढ़कर अपनी जिज्ञासा को शान्त करते है।

7.7.9 स्नेह –

यह व्यक्ति, वस्तु या जानवर के प्रति कोमल लगाव है। यह सुखद अनुभवों पर आधारित होता है। किशोरावस्था व बाल्यावस्था के इस संवेग में अन्तर होता है। किशोर स्नेह निर्जीव व जानवरों की तुलना में व्यक्तियों के प्रति अधिक करते है। किशोर के लिए स्नेह में भी तीव्रता होती है। लेकिन किशोर बच्चों की तरह केवल घर के लोगों से भी स्नेह नही करते वरन संग–साथी व बाहर के लोगों से भी करते है।

7.7.10 दु:ख –

इस संवेग की अनुभूति तब होती है जब व्यक्ति ऐसी चीज खो देता है जिसको वो बहुत महत्व देता है। तथा उससे उसे संवेगात्मक लगाव होता है। किशोर को इस संवेग का अनुभव बार–बार होता है क्योकि किशोर में अब सोचने समझने की शक्ति बढ़ जाती है। किशोर बच्चों की तरह रोते नही है वरन् अपने चारों तरफ के लोगों व चीजों में रूचि नही लेते है। एकान्त में रहते है। भूख कम लगती हैं व नींद कम आती है। इसका किशोर के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

7.7.11 खुशी –

किशोर खुशी का अनुभव तब करता है जब उसका समायोजन अच्छा होता है। प्रशिक्षण व योग्यता से किशोर इस योग्य होता है कि वह परिस्थिति के साथ ठीक से समायोजन कर सके। अच्छा समायोजन व्यक्ति को आत्म सन्तोष देता है। यदि किशोर समाज द्वारा मान्यता प्राप्त कार्यो को सफलतापूर्वक करता है तो उसमें उच्चता की भावना आती है उससे भी उसे सन्तोष मिलता है। अन्ततः वह खुशी का अनुभव करता है।

7.8 संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

1. परिपक्वता – व्यक्ति के विकास पर संवेगात्मक विकास निर्भर करता है विशेष रूप से स्नायु तन्त्र के विकास पर। यदि Frontal Lobe को हटा

दिया जाए तो संवेगों में स्थिरता नही रहती है।

2. स्वास्थ्य और शारीरिक विकास – बच्चे के स्वास्थ्य, शारीरिक विकास एवं संवेगात्मक विकास में धनात्मक सहसम्बन्ध होता है। स्वास्थ्य में गिरावट से संवेगात्मक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

3. बुद्धि – Hurlock ने अध्ययनों में पाया कि सामान्य व कम बुद्धि के लोगों में अपने संवेगों पर नियन्त्रण कम होता है। चूंकि बुद्धिमान व्यक्ति के पास चिन्तन व तर्क की योग्यता होती है इसलिए संवेगों पर नियन्त्रण कर लेते है।

4. सीखना – व्यक्ति समाज व संस्कृति द्वारा मान्य ढंग से संवेगों को व्यक्त करना सीखता है। उदाहरण के लिए नीग्रों के डर को व्यक्त करने का तरीका भारतीयों से भिन्न प्रकार का होता है। बच्चे संवेगात्मक व्यवहार को दो प्रकार से सीखते है –

   (अ) अनुबन्धन द्वारा – Watson ने Albert नामक बच्चे पर प्रयोग किया। यह बच्चा खरगोश से बहुत प्यार करता था और उसके साथ खेलता था। Watson ने इस बच्चे को ख़रगोश से डरना सिखाया। अतः जब कभी बच्चा खरगोश के साथ खेलता था तो वे जोर की आवाज (जो डरावनी थी) करते थे। इससे बच्चा डरने लगा। धीरे–धीरे बच्चा खरगोश से डरने लगा। बाद में वह सफेद फर वाली सभी चीजों से डरना सीख गया।

   (ब) अनुकरण – यदि माता–पिता चिन्तित रहते है तो बच्चे चिन्तित रहना सीख जाते है। इसी प्रकार माता–पिता शान्त तो बच्चे भी शान्त होते है। Turner ने पाया कि शिक्षकों के संवेगात्मक व्यवहार का प्रभाव छात्रों पर पड़ता है।

5. विद्यालयी वातावरण – शिक्षकों का अपने व्यवसाय एवं छात्रों के प्रति मनोवृत्ति, विद्यालय अनुशासन, विद्यालय में अकादमिक सुविधाए, भौतिक सुविधाए, शिक्षण विधि, पाठ्य सहगामी क्रियाएं आदि का बच्चे के संवेगात्मक विकास पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए यदि विद्यालय में अत्यन्त कठोर अनुशासन होता है या अनुशासन विहीन विद्यालय दोनों का बच्चे के संवेगात्मक विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

6. संगी–साथी – संवेगात्मक व्यवहार अनुकरण द्वारा सीखे जाते है। साथ ही कहावत है– संगत का असर पड़ता है। अतः बच्चों के संवेगात्मक

विकास पर मित्रों, संगी साथियों व सह पाठियों के व्यवहार का प्रभाव पड़ता है।

7. परिवारिक वातावरण – माता–पिता व बच्चे के मध्य सम्बन्ध, बच्चे का जन्म क्रम, लड़का व लड़की, परिवार का आकार, परिवार का सामाजिक आर्थिक स्तर, अनुशासन, माता–पिता का बच्चे के प्रति मनोवृत्ति, आदि बच्चे के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी (क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गये स्थान का प्रयोग कीजिए।

(ख) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

5. किशोरों में कौन–कौन से संवेगात्मक व्यवहार पाये जाते है ?

....

....

....

6. संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन से है ?

....

....

....

7.9 संवेगात्मक विकास का शैक्षिक निहितार्थ

सभी सीखने की क्रियाओं क सम्बन्ध संवेगों से होता है। विद्यालय में दिया जाने वाला शिक्षण सफल नहीं होगा यदि छात्रों का बौद्धिक विकास तो हो रहा है लेकिन वे संवेगात्मक रूप से विचलित है। UNESCO रिपोर्ट (1955) के अनुसार – " Learning in the strict educational sense will not proceed satisfactorly if the child's emotional life is disturbed."

1. कक्षा में पढ़ाते समय शिक्षक को इस बात के लिए संवेदनशील होना चाहिए कि उनके प्रति छात्रों के कैसे संवेग हैं

2. प्रत्येक कक्षा में हम भावना (Feeling Tone) होती है। जिसके कारण छात्र कक्षा में सुरक्षित महसूस करते है। शिक्षक का प्रयास होना चाहिए कि यह भावना बनी रहे और छात्र कक्षा में किसी भी प्रकार का तनाव का अनुभव

न करें।

3. छात्रों के संवेगों व संवेगात्मक व्यवहार के प्रति शिक्षक का सकारात्मक दृष्टिकोण होना चाहिए।
4. स्वस्थ प्रतिस्पर्धा को महत्व देना चाहिए।
5. परीक्षा में नम्बरों पर बहुत बल नही होना चाहिए।
6. सम्पूर्ण उपस्थिति के स्थान पर बच्चे के स्वास्थ्य पर बल देना चाहिए।
7. संवेगात्मक समस्याओ के समाधान हेतु निर्देशन का प्रबन्ध होना चाहिए।
8. छात्रों को सामाजिक मान्यता प्राप्त ढंग से संवेगात्मक व्यवहार करने का तरीका सिखाना चाहिए।
9. छात्रों के संवेगों को समझते समय शिक्षक का पक्षपात रहित व वस्तुनिष्ठ व्यवहार होना चाहिए।

7.10 सारांश

संवेग व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था है। मानव जीवन में संवेगों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। बालकों में संवेगों का विकास किस रूप में हुआ है। इसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि कुछ संवेग जन्मजात होते है। जबकि बहुत से संवेगों का विकास वातावरण में धीरे–धीरे होता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालकों में सभी प्रमुख संवेगों अर्थात् क्रोध, डर, उत्सुकता, हर्ष, स्नेह, दुःख आदि का विकास हो जाता है। किशोरावस्था तक आते–आते बालकों में वे सभी संवेग होते है जो कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था में होते हैं। किन्तु इनका प्रकटीकरण बाल्यावस्था से भिन्न होता है।

परिपक्वता, शारीरिक विकास, बुद्धि, वातावरण आदि कारक व्यक्ति के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करते है। संवेगात्मक विकास किस रूप में होता है यह पूर्वानुमेय है। विभिन्न संवेगों का प्रकटीकरण आयु के अनुसार बढ़ता जाता है। इन संवेगों का ज्ञान एक अध्यापक को होना चाहिये। इनका अपना शैक्षिक निहितार्थ है।

7.11 अभ्यास कार्य

1. बाल्यावस्था में पाये जाने वाले संवेगों का शैक्षिक निहितार्थ लिखिए।
2. विभिन्न आयु में प्रकट होने वाले संवेगों का चार्ट बनाइए।
3. बालकों व किशोरों में पाये जाने वाले संवेगों में अन्तर लिखिए।
4. व्यक्ति में संवेग जन्मजात पाये जाते है या अर्जित होते है। विवेचना कीजिए।

7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. संवेग व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था होती है। जिसमें विभिन्न तरह के शारीरिक व ग्रंथीय परिवर्तन होते है।

2. संवेग किसी न किसी मूल प्रवृत्ति से जुड़े होते है।
   - अस्थायी होते है।
   - संवेग की तीव्रतर मात्रा
   - संवेगों की पुनरावृत्ति
   - संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में विभिन्नता

3. क्रोध, ईर्ष्या, हर्ष, संतोष, स्नेह, उत्सुकता आदि संवेग पाये जाते है।

4. बच्चे प्रायः गुस्सा करके अपने संवेग का प्रकटीकरण करते है। कभी–कभी बच्चे अपने इस भाव को दवा लेते है। जिससे इन भावनाओं का प्रकटन नहीं हो पाता। तादात्मीकरण या मार्गान्तरण के माध्यम से भी ईर्ष्या संवेग को बच्चे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से प्रकट करते है।

5. किशोरों में डर, चिन्ता, दुश्चिन्ता आदि संवेगात्मक व्यवहार दिखायी पड़ते है। थोड़ी सी बात में क्रोध व नाराज होने जैसे भाव इनके व्यवहार में दिखायी पड़ते है। दुःख का भाव प्रकट करने के साथ ही उनमें स्नेह की कोमल भावनायें भी होती है।

6. 1.) शारीरिक कारक
   2.) मानसिक कारक
   3.) वातावरणीय कारक

7.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Chauhan, S.S. (1996) Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House, New Delhi.

Hurlock, E.B. (1981) Developmental Psychology : A life span approach fifth edition. Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

Hurlock, E.B. (1997) Child Development : Tata Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई 8 सामाजिक विकास

संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 सामाजिक विकास का अर्थ

8.4 सामाजिक प्रौढ़ता तथा अप्रौढ़ता

8.5 शैशावस्था में सामाजिक विकास

8.6 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

8.7 किशोरावस्था में सामाजिक विकास

8.8 वयस्क अवस्था

8.9 सामाजिक विकास के मूल आधार

8.10 सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियां

8.11 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

8.12 सामाजिक विकास का शैक्षिक महत्व

8.13 सारांश

8.14 अभ्यास कार्य

8.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.16 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसे समाज में रहकर समाज के अनुकूल व्यवहार करना होता है अतः प्रत्येक बालक के लिये शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक विकास के साथ–साथ सामाजिक विकास का भी अत्यन्त महत्व है। एक शिक्षक के लिये सामाजिक विकास तथा सामाजीकरण की प्रक्रिया से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योकि बालक अपने माता–पिता तथा परिवार के सम्पर्क में आने के पश्चात् विद्यालय तथा शिक्षक के सम्पर्क में आकर समाज के अनुकूल व्यवहार करना सीखता है।

इस इकाई में सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में बालक किस प्रकार व्यवहार करना सीखता है, किस प्रकार बालक एक सामाजिक प्रौढ़ बनता

है आदि के विषय में जानकारी दी जायेगी। साथ ही उन कारकों का वर्णन भी किया गया है जो बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करते है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि :

- सामाजिक विकास को परिभाषित कर सकेगे।
- सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं से परिचित हो सकेंगे।
- सामाजिक रूप से प्रौढ़ तथा अप्रौढ़ व्यक्ति में अन्तर कर सकेगे।
- उन कारकों की पहचान कर सकेगे जो बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करते है।
- सामाजिक विकास में शिक्षक की भूमिका का वर्णन कर सकेगे।
- सामाजीकरण की प्रक्रिया से परिचित हो सकेगे।
- सामाजीकरण के प्रमुख साधनों की व्याख्या कर सकेगे।
- समाजीकरण की विभिन्न प्रविधियों से अवगत हो सकेगे।

8.3 सामाजिक विकास का अर्थ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह दूसरो के व्यवहार को प्रभावित करता है और उसके व्यवहार से प्रभावित होता है। इस परस्पर व्यवहार के व्यवस्थापन पर ही सामाजिक संबंध निर्भर होते हैं। इस परस्पर व्यवहार में रूचियों, अभिवृत्तियों, आदतों आदि का बड़ा महत्व है। सामाजिक विकास में इन सभी का विकास सम्मिलित है। जब सामाजिक परिस्थिति इस प्रकार की होती है कि शिशु समाज केदृ नियमों तथा नैतिक मानक को आसानी से सीख लेता है तो यह कहा जाता है कि उसमें सामाजिक विकास हुआ है।

सोरेन्सन ने सामाजिक विकास को परिभाषित करते हुये लिखा है – "सामाजिक वृद्धि और विकास से तात्पर्य अपने साथ और दूसरों के साथ भली प्रकार चलने की बढ़ती हुई योग्यता से है।"

हरलाक (1978) के अनुसार – "सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता सीखने से होता हैं।"

इस प्रकार सामाजिक विकास में लगातार दूसरों के साथ अनुकूलन करने

की योग्यता में वृद्धि पर जोर दिया जाता है। मनुष्य की सामाजिक परिस्थितियां बदलती रहती है। इस परिवर्तन के साथ व्यक्ति को बराबर बदलना होता है।

8.4 सामाजिक प्रौढ़ता तथा अप्रौढ़ता

सामाजिक विकास के अर्थ को भली प्रकार समझने में सामाजिक प्रौढ़ता अथवा सामाजिक दृष्टि से परिपक्व व्यक्ति के व्यवहार प्रतिमानों को समझने में सहायता मिलेगी। एक सामाजिक दृष्टि से परिपक्व व्यक्ति दूसरों से सहयोग करता है और उनका विरोध बहुत कम करता है। वह कभी भी अशिष्ट नही होता बल्कि सदैव दूसरे व्यक्तियों के प्रति शिष्ट, दयालु और मैत्रीपूर्ण रहता हैं। इसलिए उनके मित्रों की संख्या भी बहुत अधिक होती है। सामाजिक दृष्टि से प्रौढ़ व्यक्ति कला, अध्ययन, खेल आदि में अच्छी रूचि का परिचय देता है। वह अच्छे–अच्छे लेखकों की रचनाएं पढ़ता है और अपनी आयु के उपयुक्त खेलों और मनोरंजन में भाग लेता है।

सामाजिक रूप से प्रौढ़ व्यक्ति के विरूद्ध सामाजिक दृष्टि से अप्रौढ़ अथवा अविकसित व्यक्ति समूह में झेंपता और शर्माता है। वह दूसरों की उपस्थिति में बेचैनी महसूस करता है। वह अपनी माता की राय पर अत्यधिक निर्भर होता है और उसके साथ लगा रहता है। उसके मित्रों की संख्या बहुत कम होती है और उसे दूसरों से मिलने जुलने में कठिनाई होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी:– क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख. अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

1. सामाजिक विकास से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

2. सामाजिक रूप से प्रौढ़ व्यक्ति के व्यक्तित्व में कौन–कौन सी विशेषताएं परिलक्षित होती है?

....

....

....

8.5 शैशवस्था में सामाजिक विकास

यद्यपि जन्म के समय शिशु सामाजिक नही होता है परन्तु दूसरे व्यक्तियों के प्रथम सम्पर्क से ही उसके समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, जो निरन्तर आजीवन चलती रहती है। सामाजिक विकास निम्नांकित ढंग से होता है–

(क) प्रथम माह – प्रथम माह मे शिशु किसी व्यक्ति या वस्तु को देखकर कोई स्पष्ट प्रतिक्रिया नही करता हैं वह तीव्र प्रकाश तथा ध्वनि के प्रति प्रतिक्रिया अवश्य करता है। वह रोने तथा नेत्रों को घुमाने की प्रतिक्रियायें करता है।

(ख) द्वितीय माह – दूसरे माह में शिशु आवाजों को पहचानने लगता है जब कोई व्यक्ति शिशु से बातें करता है या ताली बजाता है या खिलौना दिखाता है तो वह सिर घुमाता है तथा दूसरों को देखकर मुस्कराता है।

(ग) तृतीय माह – तीसरे माह में शिशु माँ को पहचानने लगता है। जब कोई व्यक्ति शिशु से बातें करता है या ताली बजाता है तो वह रोते–रोते चुप हो जाता है।

(घ) चतुर्थ माह – चौथे माह में शिशु पास आने वाले व्यक्ति को देखकर हँसता है, मुस्कराता है। जब कोई व्यक्ति उसके साथ खेलता है तो वह हँसता है तथा अकेला रह जाने पर रोने लगता है।

(ङ) पंचम माह – पाँचवे माह में शिशु प्रेम व क्रोध के व्यवहार में अंतर समझने लगता है। दूसरे व्यक्ति के हँसने पर वह भी हँसता है तथा डाँटने पर सहम जाता है।

(च) षष्टम माह – छठे माह में शिशु परिचित–अपरिचित में अंतर करने लगता है। वह अपरिचितों से डरता है। बड़ों के प्रति आक्रामक व्यवहार करता है। वह बड़ों के बाल, कपड़े, चश्मा आदि खींचने लगता है।

(छ) नवम् माह – नवे माह में शिशु दूसरों के शब्दों, हावभाव तथा कार्यों का अनुकरण करने का प्रयास करने लगता है।

(ज) प्रथम वर्ष – एक वर्ष की आयु में शिशु घर के सदस्यों से हिल–मिल जाता है। बड़ों के मना करने पर मान जाता है तथा अपरिचितों के प्रति भय तथा नापसन्दगी दर्शाता है।

(झ) द्वितीय वर्ष – दो वर्ष की आयु में शिशु घर के सदस्यों को उनके कार्यों में सहयोग देने लगता है। इस प्रकार वह परिवार का एक सक्रिय सदस्य बन जाता है।

(ञ) तृतीय वर्ष – तीन वर्ष की आयु में शिशु अन्य बालकों के साथ खेलने लगता है। खिलौनों के आदान प्रदान तथा परस्पर सहयोग के द्वारा वह अन्य बालकों से सामाजिक संबन्ध बनाता है।

(य) चतुर्थ वर्ष – चौथे वर्ष के दौरान शिशु प्रायः नर्सरी विद्यालयों में जाने लगता है जहां वह नए–नए सामाजिक संबन्ध बनाता है तथा नए सामाजिक वातावरण में स्वयं को समायोजन करता है।

(र) पंचम वर्ष – पांचवे वर्ष में शिशु में नैतिकता की भावना का विकास होने लगता है। वह जिस समूह का सदस्य होता है उसके द्वारा स्वीकृत प्रतिमानों के अनुरूप अपने को बनाने का प्रयास करता है।

(ल) षष्ठम वर्ष – छठे वर्ष में शिशु प्राथमिक विद्यालय में जाने लगता है जहां उसकी औपचारिक शिक्षा का आरम्भ हो जाता है तथा नवीन परिस्थितियों से अनुकूलन करता है।

शैशावस्था में बालक के द्वारा किए जाने वाले उपरोक्त वर्णित सामाजिक व्यवहारों के अवलोकन से स्पष्ट है कि जन्म के उपरान्त धीरे–धीरे बालक का समाजीकरण होता है। जन्म के समय शिशु सामाजिक प्राणी नही होता है। परन्तु अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आने पर उसके समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

8.6 बाल्यावस्था में सामाजिक विकास

बाल्यावस्था में समाजीकरण की गति तीव्र हो जाती है। बालक वाह्य वातावरण के सम्पर्क में आता है। जिसके फलस्वरूप उसका सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है। बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास को निम्नांकित ढंग से व्यक्त किया जा सकता है।

1. बालक किसी न किसी टोली या समूह का सदस्य बन जाता है। यह टोली अथवा समूह ही उसके खेलो, वस्त्रों की पसंद तक्षा अन्य उचित–अनुचित बातों का निर्धारण करते है।

2. समूह के सदस्य के रूप में बालक के अंदर अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है। उत्तरदायित्व, सहयोग, सहनशीलता, सद्भावना,

आत्मनियन्त्रण, न्यायप्रियता आदि सामाजिक गुण बालक में धीरे–धीरे उदित होने लगते है।

3. इस अवस्था में बालक तथा बालिकाओं की रूचियों में स्पष्ट अंतर दृष्टिगोचर होता है।

4. बाल्यावस्था में बालक प्रायः घर से बाहर रहना चाहता है, और उसका व्यवहार शिष्टतापूर्ण होता है।

5. इस अवस्था में बालक में सामाजिक स्वीकृति तथा प्रशंसा पाने की तीव्र इच्छा होती है।

6. प्यार तथा स्नेह से वंचित बालक इस आयु में प्रायः उद्धण्ड हो जाते है।

7. बाल्यावस्था में बालक मित्रों का चुनाव करते है। वे प्रायः कक्षा के सहपाठियों को अपना घनिष्ठ मित्र बनाते है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि इस अवस्था में बालक के सामाजिक जीवन का क्षेत्र कुछ विस्तृत हो जाता है जिसके फलस्वरूप बालक – बालिकाओं के समाजीकरण के अवसर तथा सम्भावनायें बढ़ जाती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः– क. नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

3. बाल्यावस्था में बच्चों में किन–किन सामाजिक गुणों का विकास होता है?

....

....

....

4. शैशवावस्था में शिशु सामाजिक होता है विवेचना कीजिए?

....

....

....

8.7 किशोरावस्था में सामाजिक विकास

किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियों का सामाजिक परिवेश अत्यन्त विस्तृत हो जाता है। शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक परिवर्तनों के साथ

–साथ उनके सामाजिक व्यवहार में भी परिवर्तन आना स्वाभाविक है। किशोरावस्था में होने वाले अनुभवों तथा बदलते सामाजिक संबंधो के फलस्वरूप किशोर – किशोरियां नए ढंग के सामाजिक वातावरण में समायोजित करने का प्रयास करते है। किशोरावस्था में सामाजिक विकास का स्वरूप निम्नांकित होता है –

1. समूहों का निर्माण – किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियां अपने–अपने समूहों का निर्माण कर लेते है। परन्तु यह समूह बाल्यावस्था के समूहों की तरह अस्थायी नही होते है। इन समूहों का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना होता है। पर्यटन, नृत्य, संगीत पिकनिक आदि के लिए समूहों का निर्माण किया जाता है। किशोर–किशोरियों के समूह प्रायः अलग–अलग होते है।

2. मैत्री भावना का विकास– किशोरावस्था में मैत्रीभाव विकसित हो जाता है। प्रारम्भ में किशोर–किशोरो से तथा किशोरियां–किशोरियों से मित्रता करती है। परन्तु उत्तर किशोरावस्था में किशोरियों की रूचि किशोरो से तथा किशोरों की रूचि किशोरियों से मित्रता करने की भी हो जाती है। वे अपनी सर्वोत्तम वेशभूषा, श्रृंगार व सजधज के साथ एक दूसरे के समक्ष उपस्थित होते है।

3. समूह के प्रति भक्ति– किशोरों में अपने समूह के प्रति अत्यधिक भक्तिभाव होता है। समूह के सभी सदस्यों के आचार–विचार, वेशभूषा, तौर–तरीके आदि लगभग एक ही जैसे होते है। किशोर अपने समूह के द्वारा स्वीकृत बातों को आदर्श मानता है तथा उनका अनुकरण करने का प्रयास करता है।

4. सामाजिक गुणों का विकास समूह के सदस्य होने के कारण किशोर–किशोरियों में उत्साह, सहानुभूति, सहयोग, सद्भावना, नेतृत्व आदि सामाजिक गुणों का विकास होने लगता है। उनकी इच्छा समूह में विशिष्ट स्थान प्राप्त करने की होती है, जिसके लिए वे विभिन्न सामाजिक गुणों का विकास करते है।

5. सामाजिक परिपक्वता की भावना का विकास– किशोरावस्था में बालक–बालिकाओं में वयस्क व्यक्तियों की भांति व्यवहार करने की इच्छा प्रबल हो जाती है। वे अपने कार्यो तथा व्यवहारों के द्वारा समाज में सम्मान प्राप्त करना चाहते हैं। स्वयं को सामाजिक दृष्टि से परिपक्व मान कर वे समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने का प्रयास करते है।

6. **विद्रोह की भावना** – किशोरावस्था में किशोर किशोरियों मे अपने माता–पिता तथा अन्य परिवारीजनों से संघर्ष अथवा मतभेद करने की प्रवृत्ति आ जाती है। यदि माता–पिता उनकी स्वतंत्रता का हनन करके उनके जीवन को अपने आदर्शो के अनुरूप ढ़ालने का प्रयत्न करते है अथवा उनक समक्ष नैतिक आदर्शो का उदाहरण देकर उनका अनुकरण करने पर बल देते है तो किशोर–किशोरियां विद्रोह कर देते है।

7. **व्यवसाय चयन में रूचि** – किशोरावस्था के दौरान किशोरों की व्यावसायिक रूचियां विकसित होने लगती है। वे अपने भावी व्यवसाय का चुनाव करने के लिये सदैव चिन्तित से रहते है। प्रायः किशोर अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा तथा अधिकार सम्पन्न व्यवसायों को अपनाना चाहते है।

8. **बर्हिमुखी प्रवृत्ति** – किशोरावस्था में बर्हिमुखी प्रवृत्ति का विकास होता है। किशोर–किशोरियों को अपने समूह के क्रियाकलापों तथा विभिन्न सामाजिक क्रियाओं में भाग के अवसर मिलते है, जिसके फलस्वरूप उनमें बर्हिमुखी रूचियां विकसित होने लगती है।

8.8 वयस्क अवस्था

सामाजिक विकास की यह अवस्था वास्तव में किशोरावस्था का परिणाम मात्र है। इस अवस्था में द्वितीयक समाजीकरण, विसमाजीकरण तथा पुर्नसमाजीकरण की प्रक्रिया मन्द गति से जारी रहती है। इस अवस्था की मुख्य विशेषता यह है कि यहां व्यक्ति वैवाहिक जीवन को निभाने में सक्रिय हो जाता है, जीविकोपार्जन भी इस अवस्था की मुख्य विशेषता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: क) अपना उत्तर नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कीजिए।

5) किशोरावस्था में सामाजिक विकास का स्वरूप किस प्रकार का होता है ?

....

....

....

8.9 सामाजिक विकास के मूल आधार

बालक के सामाजिक विकास का प्रक्रम अर्जित ही होता हैं अतः इसका स्वरूप इस तथ्य पर आधारित है कि बालक की अन्य व्यक्तियों के प्रति कैसी अभिवृत्तियां है और स्वयं उसके इस संबन्ध के साथ अपने कैसे विशेष अनुभव है। आगे इसके अतिरिक्त उसे इस संबंध में विकास के कैसे अवसर मिले है। इस प्रकार एक बालक के सामाजिक विकास से संबन्धित विभिन्न मूल आधारों को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है –

- बालक को दूसरों के साथ रहने व व्यवहार के पर्याप्त अवसर मिलते रहने चाहिए।
- एक बालक को अन्य व्यक्तियों के साथ अपनी भावाभिव्यक्ति के अतिरिक्त दूसरे व्यक्ति के रूचियों को भी समझना आवश्यक है।
- बालक को सामाजिक बनने के लिए प्रेरणा देना चाहिये।
- बालकों को मार्गदर्शन प्रदान करना चाहिए।

8.10 बालक के सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियां –

बालक के सामाजिक विकास के मूल्यांकन की प्रमुख कसौटियां प्रायः निम्नलिखित होती है –

1. सामाजिक अनुरूपता – एक बालक जितनी शीघ्रता व कुशलता से अपने समाज की परम्पराओं, नैतिक मूल्यों व आदर्शो के अनुरूप व्यवहार करना सीख लेता है। उसके सामाजिक विकास का स्तर भी प्रायः उतना ही अधिक उच्च होता है। स्पष्टतः यहां सामाजिक अनुरूपता व सामाजिक विकास में एक प्रकार का ध नात्मक सह–सम्बन्ध देखने में आता है।

2. सामाजिक समायोजन – एक बालक अपनी सामाजिक स्थितियों को जितनी अधिक सफलता व कुशलता से समझने व सुलझाने में सम्पन्न होता है, जितनी अधिक उसमें समायोजन की शक्ति होती है उसके सामाजिक विकास का स्तर भी प्रायः उतना ही अधिक होता है।

3. सामाजिक अन्तः क्रियाएं – एक बालक की सामाजिक अन्तः क्रियाओं का स्तर जितना अधिक विस्तृत व जटिल होता है, यह स्थिति भी लगभग उसी समानुपात में उसकी सामाजिक विकास के स्तर की द्योतक होती है।

4. **सामाजिक सहभागिता** – एक बालक अथवा व्यक्ति जितने अधिक सहज भाव और जितने अधिक आत्मविश्वास के साथ सामाजिक गतिविधियां में भाग लेता जाता है, वह भी प्रायः उसके उच्च सामाजिक विकास का ही सूचक होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) अपना उत्तर नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कीजिए।

6) बालक के सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियां कौन–कौन सी है ?

....

....

....

8.11 सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक

वातावरण और संगठित साधनों के कुछ ऐसे विशेष कारक हैं जिनका बालक के सामाजिक विकास की दशा पर निश्चित और विशिष्ट प्रभाव पड़ता है।

1. **परिवार के वातावरण का स्वरूप**– परिवार ही वह साधन है जहां बालक का सबसे पहले समाजीकरण होता है। जिस परिवार का वातावरण सामान्यतः पारस्परिक, सुखद और सुन्दर भावनाओं पर आधारित होता है व जिसमें बालकों के प्रति आवश्यक स्नेह व सहानुभूति बनी रहती है। तब ऐसे उत्साहपूर्ण व प्रेरक पारिवारिक परिवेश में बालक के व्यवहार में भी पारस्परिक आधार पर आदान–प्रदान की मधुर सामाजिक भावनाएं विकसित होती है।

2. **पास–पड़ोस के परिवेश का प्रभाव**– बच्चे का कुछ समय अपने पड़ोसियों के साथ गुजरता है। अतः पड़ोसियों के साथ पारस्परिक अन्तःक्रिया का प्रभाव उसके सामाजिक विकास पर पड़ता है।

3. **वंशानुक्रम** – मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सामाजिक विकास पर वंशानुक्रम का भी प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रम व्यक्ति को शारीरिक तथा मानसिक विकास के साथ–साथ उसके सामाजिक विकास को भी प्रभावित करता है। अनेक सामाजिक गुण व्यक्ति को वंश परम्परा के रूप में अपने पूर्वजों से प्राप्त होते है।

4. **शारीरिक तथा मानसिक विकास** – शारीरिक तथा मानसिक विकास का व्यक्ति के सामाजिक विकास से घनिष्ठ संबन्ध होता है। शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तथा विकसित मस्तिष्क वाले बालकों के समाजीकरण की सम्भावनायें अधिक होती है, जबकिं अस्वस्थ तथा कम विकसित मस्तिष्क वाले बालकों के समाजीकरण की सम्भावना कम होती है। बीमार, अपंग, शारीरिक दृष्टि से अनाकर्षक, विकृत मस्तिष्क वाले, अल्प बुद्धि वाले बालक प्रायः सामाजिक अवहेलना तथा तिरस्कार सहते रहते है। जिसके फलस्वरूप उनमें हीनता की भावना विकसित हो जाती है तथा वे अन्य बालकों के साथ स्वयं को समायोजित करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

5. **संवेगात्मक विकास** – सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार संवेगात्मक विकास होता है। संवेगात्मक तथा सामाजिक व्यवहार एक दूसरे के अनुयायी होते हैं। जिन बालकों में प्रेम, स्नेह, सहयोग, हास–परिहास के भाव अधिक होते हैं, वे सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं तथा स्नेह व आकर्षण का पात्र बन जाते हैं। इसके विपरीत जिन बालकों में ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, घृणा, नीरसता आदि भाव होते हैं, वे किसी को भी अच्छे नही लगते हैं, तथा ऐसे बालकों की सभी उपेक्षा करते हैं।

6. **पालन–पोषण प्रणाली**– बालकों में सामाजिक विकास उनके पालन–पोषण के ढंग द्वारा अधिक प्रभावित होता है। जिन बालकों के पालन पोषण में माता–पिता द्वारा उचित दुलार–प्यार दिया जाता है तथा बालकों की देख–रेख उनके द्वारा स्वयं की जाती है, उनमें सामाजिक नियमों को सीखने तथा उनके अनुरूप व्यवहार करने की तीव्र प्रेरणा होती है। अतः ऐसे बालकों का सामाजिक विकास अधिक तीव्र तथा संतोषजनक होती है।

7. **सामाजिक वर्ग–भेद**– सामाजिक आर्थिक स्थिति के आधार पर समाज को मुख्य मुख्य रूप से तीन वर्गो अर्थात निम्न, मध्य तथा उच्च वर्ग में विभाजित किया जा सकता है। प्रत्येक सामाजिक वर्ग के नियमों, मूल्यों, मानदण्डो, विश्वासों तथा लोकरीतियों में अंतर होता है, इस कारण भिन्न–भिन्न वर्गो के बच्चों के समाजीकरण में अंतर होता है।

8. **समाज**– समाज का भी बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान रहता है। सामाजिक व्यवस्था बालक के समाजीकरण को एक निश्चित दिशा प्रदान करती है। समाज के कार्य, आदर्श तथा प्रतिमान बालक के सामाजिक दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं।

9. **विद्यालय** – बालक के सामाजिक विकास में उसके विद्यालय की उतनी ही आवश्यकता होती है, जितना कि उसके परिवार की। विद्यालय में बालक नियम आत्म संयम, अनुशासन, नम्रता जैसे गुणों को लगभग सहज रूप से ही अधिगत कर लेता है। यदि विद्यालय का वातावरण जनतंत्रीय है, तो बालक का विकास अविराम गति से उत्तम रूप ग्रहण करता चला जाता है।

10. **अध्यापक–** बालकों के सामाजिक विकास पर उनके अध्यापकों का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता हैं। छात्र अपने अध्यापक से उसी के समान व्यवहार करना सीखते हैं। यदि अध्यापक शांत, शिष्ट तथा सहयोगी होता हैं तो छात्रों में भी शिष्टता, धैर्य तथा सहकारिता के गुण विकसित हो जाते हैं। इसके विपरीत यदि शिक्षक अशिष्ट, क्रोधी तथा असहयोगी हैं तो छात्र भी उसी के समान बन जाते हैं।

11. **अभिजात समूह–** बालक को सामाजिक विकास में उसके संगी–साथियों की मंडली की भी प्रभावशाली भूमिका रहती है। समान आयु के बच्चे एक अलग समूह का निर्माण कर लेते है, जो ऐच्छिक होता है। एक बालक की मित्र मंडली, जितनी बड़ी, विषम व जितनी अधिक विभिन्न अभिरूचियों व अभिवृत्तियों वाली होती है। उतना ही बालक का सामाजिक विकास का क्षेत्र तद्नुसार अधिक देखने में आता है।

12. **संस्कृति** – प्रत्येक संस्कृति के अपने कुछ प्रतिमान, परम्पराएँ मूल्य होते हैं जिन्हें सांस्कृतिक प्रतिमान अथवा प्रतिरूप कहते है। बच्चे अपनी संस्कृति के इन प्रतिरूपों को माता–पिता, शिक्षक आदि के माध्यम से सीख लेते है। इस सीखने में समाजीकरण के कई संरचन सहायक होते हैं, जिसमें प्रत्यक्ष निर्देशन, अनुकरण, निरीक्षण, प्रतिरूपण, प्रबलन आदि मुख्य हैं।

13. **प्रचार के माध्यम–** बालकों के सामाजिक विकास पर प्रचार के भिन्न–भिन्न माध्यमों जैसे रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, अखबार, मैंगजीन आदि का भी प्रभाव पड़ता है। इन माध्यमों द्वारा भिन्न–भिन्न सामाजिक पहलुओं पर अपने–अपने ढंग से जोर डाला जाता है। बालकों को इन माध्यमों से तरह–तरह की बातें बताई जाती हैं। इन बातों का वे तुलनात्मक अध्ययन एवं विश्लेषण करते हैं, जिससे उनमें सामाजिक सूझ भी विकसित हो जाती है, जो उन्हें विभिन्न तरह के सामाजिक व्यवहार सीखने में मदद करती है।

14. **सामाजिक वंचन–** जब बालक को अन्य साथियों एवं व्यक्तियों से मिलने जुलने का अवसर नही दिया जाता है तो इससे उनका सामाजिक विकास

पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा इस स्थिति को सामाजिक वंचन कहा जाता है। कई बार सामाजिक वंचन अधिक होने से बालकों में असामाजिकता का शीलगुण विकसित होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) अपना उत्तर नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कीजिए।

7) बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक बताइयें?

....

....

....

8.12 सामाजिक विकास का शैक्षिक महत्व

बालक के सामाजिक विकास में प्रत्येक अवस्था में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का सामाजिक विकास करना है। इसलिए शिक्षा को सविचार व सप्रयोजन क्रिया कहा गया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन और परिमार्जन होता रहता है, जिससे वह आने वाली परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित कर सके। मानसिक विकास का भी सामाजिक विकास से सम्बन्ध होता है। सामाजिक विकास पर कई बातों का प्रभाव पड़ता है।

(1) वृद्धि का प्रभाव – बालक जैसे–जैसे बढ़ता है वैसे–वैसे वह सामाजिक बनता जाता है। इस ओर आरम्भ से ही ध्यान देना आवश्यक है।

(2) लिंग भेद का प्रभाव – बालक और बालिका के सामाजिक व्यवहार में भिन्नता पाई जाती है। अतः दोनों को भिन्न–भिन्न उपयुक्त सामाजिक व शैक्षिक वातावरण मिलना चाहिए।

(3) सीखने का प्रभाव– बालक समाज में रहकर ही अनुभव प्राप्त करता है और सीखता है और सीखकर शिक्षा प्राप्त करके ही सामाजिक व्यक्ति बनता है।

(4) सांस्कृतिक और आर्थिक दशा का प्रभाव– बालक के सामाजिक व्यवहार पर उसके सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है इसी प्रकार परिवार की आर्थिक स्थिति उसके सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करती है।

(5) भाषा का प्रभाव– सामाजिक जीवन पर भाषा का महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। भाषा के माध्यम से विचारों का आदान प्रदान होता है और इसी के द्वारा हमें शिष्ट और सभ्य समझा जाता है।

बालकों के सामाजिक विकास को विकसित करने में शिक्षक की भूमिका

बालकों के सामाजिक विकास में शिक्षक का काफी महत्वपूर्ण योगदान होता है। स्कूली अवस्था में बालकों का सम्पर्क शिक्षकों से सीधा होता है। अतः शिक्षकगण बालक के सामाजिक विकास को सीधे प्रभावित करते हैं। बालकों के सामाजिक विकास को सही दिशा में विकसित करने में शिक्षक तथा स्कूल की महत्वपूर्ण भूमिका है –

(1) यदि स्कूल में शिक्षक एक ऐसा सामाजिक वातावरण बनाकर रखते हैं, जिससे कि बालकों में अनुशासन एवं आज्ञापालिता का भाव विकसित होता है, तो उससे बालकों में सामाजिक विकास तीव्र गति से होता है।

(2) बालकों का सामाजिक विकास करने के लिए स्कूल में पर्याप्त मात्रा में पाठ्येत्तर कार्यक्रमों जैसे नाटय, राष्ट्रीय सामाजिक सेवा, खेलकूद, वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि का संचाचन होना चाहिए।

(3) शिक्षकों को अध्यापन कार्य में प्रजातंत्रात्मक साधनों का सहारा अधिक लेना चाहिए तथा दण्डात्मक साधनों का प्रयोग न के बराबर करना चाहिए।

(4) शिक्षकों को बालकों में सामाजिक उत्तरदायित्व उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से अवगत कराना चाहिए।

(5) स्कूल में शिक्षक अभिभावक सभा समय–समय पर आयोजित की जानी चाहिए।

(6) शिक्षक बालकों के सामाजिक विकास करने के लिए कुछ खास–खास विषयों जैसे सामाजिक अध्ययन तथा नागरिक शास्त्र के अध्ययन पर अधिक जोर डालकर, बालकों को विभिन्न तरह की सामाजिक समस्याओं से अवगत करा सकते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) अपना उत्तर नीचे दिए गए रिक्त स्थान में लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तरों की जांच कीजिए।

8) सामाजिक विकास का शैक्षिक महत्व लिखिए।

....

....

....

8.13 सारांश

हमें यह आशा है कि आपको इस इकाई में सामाजिक विकास से संबंधित विभिन्न पहलुओं को पढ़ने में आनन्द आया होगा। आपने इस इकाई में पढ़ा कि सामाजिक विकास भी बालक के विकास का एक प्रमुख घटक है। सामाजिक विकास को शैक्षिक दृष्टिकोण से भी अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। सामाजिक विकास से तात्पर्य सामांजिक प्रत्याशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता सीखने से होता है।

विभिन्न अवस्थाओं जैसे– शैशवावस्था, बाल्वावस्था, किशोरावस्था, व्यस्कावस्था में बालक के सामाजिक विकास किस रूप में होता है का भी उल्लेख किया गया है।

सामाजिक विकास के मूल आधार के लिए बालकों को दूसरों के साथ रहने व व्यवहार करने के पर्याप्त अवसर मिलते रहने चाहिए। उन्हें दूसरे व्यक्तियों के साथ भावाभिव्यक्ति के साथ–साथ उनकी रूचियों को भी समझना चाहिए। साथ ही बालक को सामाजिक बनने की प्रेरणा तथा मार्गदर्शन भी प्रदान करना चाहिए।

सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियों के रूप में सामाजिक अनुरूपता, सामाजिक समायोजन, सामाजिक अन्तः क्रियाएं, सामाजिक सहभागिता, सामाजिक परिपक्वता आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

बालकों के सामाजिक विकास में शिक्षकों की भूमिका काफी अधिक है क्योंकि शिक्षकगण बालक के सामाजिक विकास को सीधे प्रभावित करते हैं।

8.14 अभ्यास कार्य

1. अपने आस–पास के विभिन्न अवस्थाओं के बालकों में पाये जाने वाले सामाजिक व्यवहार के लक्षणों की सूची बनाइये।
2. सामाजिक विकास में एक शिक्षक की भूमिका का मूल्यांकन करें।

8.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. समाज के नियमों, मान्यताओं को सीखते हुए सामाजिक रूप से प्रतिबद्ध व्यवहार करना।

2. सामाजिक रूप से परिपक्व व्यवहार करते हुए ऐसे व्यक्ति अपने विचारों को प्रकट करने में सक्षम होते हैं। साथ ही अपनी रूचियों, भावनाओं को स्वस्थ रूप में प्रस्तुत करते हैं।

3. – समूह भावना का विकास
   – अनेक सामाजिक गुणों का विकास
   – लिंगानुसार रूचियों का विकास
   – सामाजिक अनुमोदन पाने की इच्छा

4. जन्म के बाद से लेकर शैशवावस्था तक बच्चे के द्वारा जो व्यवहार प्रकट किया जाता है, उन लक्षणों को आधार बनाकर सामाजिक विकास को लिखें।

5. किशोरावस्था में बालक सामाजिक विकास के रूप में समूहों का निर्माण करता है, उसमें मैत्री भावना का विकास होता है। साथ ही समूह के प्रति भक्ति, सामाजिक गुणों का विकास, सामाजिक परिपक्वता की भावना का विकास विद्रोह की भावना, व्यवसाय चयन में रूचि, राजनैतिक दलों का प्रभाव तथा बर्हिमुखी प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है।

6. बालक के सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियां निम्न है :

   1. सामाजिक अनुरूपता
   2. सामाजिक समायोजन
   3. सामाजिक अन्तः क्रियाएँ
   4. सामाजिक सहभागिता

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAED-110
शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड

3

शिक्षार्थी की विशेषताएँ

इकाई-9 भाषा विकास	5
इकाई-10 संप्रत्यात्मक विकास	18
इकाई-11 बुद्धि, अभिक्षमता एवं सृजनात्मकता	28
इकाई-12 व्यक्तित्व	49

MAED-110 - शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड-1 शिक्षा मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि

इकाई-1 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ, कार्यक्षेत्र एवं महत्व

इकाई-2 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ

इकाई-3 मनोविज्ञान के स्कूलों का शिक्षा में योगदान

इकाई-4 वृद्धि एवं विकास

खण्ड-2 विकास के आयाम

इकाई-5 शारीरिक विकास

इकाई-6 संज्ञानात्मक विकास

इकाई-7 संवेगात्मक विकास

इकाई-8 सामाजिक विकास

खण्ड-3 शिक्षार्थी की विशेषताएँ

इकाई-9 भाषा विकास

इकाई-10 संप्रत्यात्मक विकास

इकाई-11 बुद्धि, अभिक्षमता एवं सृजनात्मकता

इकाई-12 व्यक्तित्व

खण्ड-4 अधिगम के पक्ष

इकाई-13 सीखना

इकाई-14 अभिप्रेरणा

इकाई-15 स्मरण, विस्मरण एवं चिन्तन

इकाई-16 विशिष्ट बालकों की शिक्षा

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव — कुलपति - अध्यक्ष

डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल — वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक

श्री एम0 एल0 कनौजिया — कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता — निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 राम शकल पाण्डेय — पूर्व आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रो0 हरिकेश सिंह — आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता — निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 पी0 सी0 सक्सेना — पूर्व आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 रीना अग्रवाल — रीडर, शिक्षा विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खण्ड परिचय-3 शिक्षार्थी की विशेषताएँ

शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक प्रयुक्त शाखा है। जिसमें अधिगम परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र काफी विस्तृत है। इसमें अधिगमार्थी, अधिगम के स्वरूप सीखने को परिस्थिति, मापन एवं मूल्यांकन आदि का अध्ययन किया जाता है। शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षार्थी एवं शिक्षक के लिए काफी उपयोगी है। शिक्षा मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करने के लिये अनेक विधियों का उल्लेख किया गया है। अन्तर्निरीक्षण विधि एक ऐसी विधि है जिसमें व्यक्ति स्वयं अपनी मनोदशा का विधिवत निरीक्षण करता है। आत्मनिरीक्षण के साथ ही वस्तुनिष्ठ प्रेक्षण विधि को प्रयोग में लाया गया। जिसमें किसी शिक्षार्थी या बालक के व्यवहार का निरीक्षण अलग-अलग परिस्थितियों में किया जाता है। इन व्यवहारों का प्रेक्षण कभी-कभी स्वाभाविक परिस्थितियों में किया जाता है। इन व्यवहारों का प्रेक्षण कभी-कभी स्वाभाविक परिस्थितियों में किया जाता है और कभी-कभी नियंत्रित वातावरण में किया जाता है। अध्ययन क्रम में प्रयोगात्मक विधि की उपयोगिता सर्वाधिक है। इस विधि में अध्ययनकर्ता एक शोध प्रारूप बनाकर आश्रित चर में कारण परिणाम संबंध कायम करने की कोशिश करता है। व्यक्ति इतिहास विधि का तब किया जाता है जब किसी समस्यात्मक बालक की अनुभूतियों व घटनाओं का विवरण तैयार करके उनका विश्लेषण करने की आवश्यकता हो।

शिक्षा मनोविज्ञान में इसके अतिरिक्त परिस्थिति अनुसार विकासात्मक विधि, मानक सर्वेक्षण आदि विधियों का प्रयोग होता रहता है। मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों ने जो विचार दिये उनका शैक्षिक परिस्थितियों में विशेष महत्व है। संरचनावाद जिसने मनोविज्ञान को प्रयोगात्मक रूप प्रदान किया, विलियम बुण्ट द्वारा स्थापित पहला स्कूल था। जिसने अन्तर्निरीक्षण विधि पर विशेष बल दिया। कार्यवाद की स्थापना संरचनावाद के विरोध में हुयी थी। इस स्कूल ने भी शिक्षा में महत्वपूर्ण योगदान दिया। व्यवहारवाद की स्थापना का श्रेय जे0बी0 वाटसन को जाता है। व्यवहारवाद द्वारा व्यक्ति के विकास में पर्यावरणी द्वारा व्यक्ति के विकास में पर्यावरणी कारकों पर अधिक बल डाला। जिसने अधिगमार्थी के व्यवहार को समझने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिक ने आणविक विचारधारा के विरुद्ध आवाज उठाते हुए संर्वागिक पर बल डाला। मनोविश्लेषण जिसकी स्थापना नैदानिक परिस्थितियों में साइमण्ड फ्रायड द्वारा की गयी थी, ने मुख्य रूप से जीवन के प्रारम्भिक वर्षों की महत्ता को बताया। जिसने बालकों के व्यक्तित्व को संवारने व समझने में काफी मदद की। हारमिक मनोविज्ञान की स्थापना मैक्डूगल ने की। इस सम्प्रदाय द्वारा मूल प्रवृत्ति का सिद्धान्त प्रमुख था जिसने शिक्षार्थी के संवेगात्मक व्यवहार को समझने में सहायता करी। अभिबृद्धि से तात्पर्य परिमाणात्मक परिवर्तन से होता है जबकि विकास में परिमाणात्मक व गुणात्मक दोनों प्रकार के परिवर्तन सम्मिलित होते हैं। यह परिवर्तन क्रमिक तथा संगत क्रम में होते हैं। बालक के विकास में वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों का महत्व होता है। बच्चों को अपने माता - पिता से अनुवांशिक रूप से बहुत कुछ प्राप्त होता है। जिनको जीन्स द्वारा माता-पिता अपने बच्चे में संचरित करते हैं। इसे ही वंशानुक्रम कहा जाता है। जन्म लेने के तुरन्त बाद जो कुछ भी व्यक्ति को प्रभावित करता है, वह सब वातावरण के अन्तर्गत आता है।

बालकों के वर्धन एवं विकास में वंशानुक्रम एवं वातावरण दोनों का महत्व है। विभिन्न प्रकार के एकांकी बच्चों एवं पोष्य बच्चों पर किये गये अध्ययन वंशानुक्रम एवं वातावरण के सापेक्षिक महत्व को दिखाते हैं। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि बालकों के अधिकतर गुण चाहे वे शारीरिक हो या मानसिक, आनुवांशिकता तथा वातावरण की अन्तःक्रिया का प्रतिफल है।

इकाई 9 भाषा विकास

संरचना

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 भाषा का अर्थ

9.4 भाषा विकास

9.5 भाषा विकास का क्रम

9.5.1 शैशवावस्था

9.5.1.1 रूदन

9.5.1.2 बलबलाना

9.5.1.3 इंगित करना

9.5.1.4 बोलना

9.5.1.5 भाषा ध्वनि की पहचान

9.5.1.6 प्रथम शब्द

9.5.1.7 शब्द–युग्म का उच्चारण

9.5.2 बाल्यावस्था में भाषा विकास

9.5.3 किशोरावस्था में भाषा विकास

9.6 भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

9.6.1 वृद्धि

9.6.2 अन्य जैविकीय कारक

9.6.3 वातावरणीय कारक

9.6.3.1 विद्यालय और शिक्षक

9.6.3.2 व्यवसाय एवं कार्य

9.6.3.3 अभिप्रेरण अनुबंधन तथा अनुकरण

9.7 सारांश

9.8 अभ्यास कार्य

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सर्वाधिक विकसित प्राणी माना जाता है। अन्य प्राणियों के समक्ष ऐसा कोई माध्यम नही है जिसके द्वारा वे अपने विचार एवं भाव दूसरे प्राणी तक स्पष्ट रूप से पहुंचा सके और उसे प्रकट कर सकें। यह विशेष अनुकम्पा सिर्फ मानव जाति को ही प्राप्त है। इसकी विशेषता इसकी भाषा और वाणी है। मनुष्य अपनी वाक् इन्द्रियों के द्वारा अपनी भाषा का प्रयोग करता है। उसकी वाणी इसी इन्द्रिय की क्रियाशीलता होती है, तब अपनी आन्तरिक प्रेरणा से वह अपने आपका प्रकाशन वाणी के माध्यमं से करता है। भाषा इसी वाणी का उत्पाद है जिसमें मनुष्य की बौद्धिक कुशलता निहित होती है। इस इकाई के अन्तर्गत आप भाषा तथा इसका विकास किस प्रकार हुआ जानेंगे।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन करने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे कि :

1. भाषा का अर्थ भलीं भांति समझ पायेंगे।
2. भाषा की उत्पत्ति से सम्बन्धित तथ्यों से अवगत होंगे।
3. भाषा विकास के प्रमुख तथा आधारभूत सोपानों को जान पायेंगे।
4. भाषा की विभिन्न इकाइयों से परिचित होंगे।
5. भाषा विकास का वर्गीकरण आयु वर्ग के आधार पर कर सकेंगे।
6. भाषा को प्रभावित करने वाले कारकों को पहचान पायेंगे।

9.3 भाषा का अर्थ

भाषा का अर्थ होता है– कही हुई चीज। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भाषा दूसरों तक विचारों को पहुंचाने की योग्यता हैं इसमें विचार–भाव के आदान प्रदान के प्रत्येक साधन सम्मिलित किये जाते हैं। जिसमें विचारों और भावों के प्रतीक बना लिये जाते हैं जिससे कि आदान प्रदान के व्यापक रूप में भिन्न रूपों जैसे लिखित, बोले गये, सांकेतिक, मौखिक, इंगित प्रहसन तथा कला के अर्थ बताये जाते हैं।

9.4 भाषा विकास

भाषा विकास बौद्धिक विकास की सर्वाधिक उत्तम कसौटी मानी जाती

है। बालक को सर्वप्रथम भाषाज्ञान परिवार से होता है।

कार्ल सी गैरिसन के अनुसार "स्कूल जाने से पूर्व बालकों में भाषा ज्ञान का विकास उनके बौद्धिक विकास की सबसे अच्छी कसौटी है। भाषा का विकास भी विकास के अन्य पहलुओं के लाक्षणिक सिद्धान्तों के अनुसार होता है। यह विकास परिपक्वता तथा अधिगम दोनों के फलस्वरूप होता है और इसमें नयी अनुक्रियाएं सीखनी होती है और पहले की सीखी हुई अनुक्रियाओं का परिष्कार भी करना होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

1) भाषा से आप क्या समझते हैं?

....

....

....

2) भाषा विकास से क्या तात्पर्य है?

....

....

....

9.5 भाषा विकास का क्रम

भाषा विकास क्रमागत निम्न बिन्दुओं पर आधारित है–

1) बाल्यावस्था
2) पूर्व शैशवास्था
3) मध्य एवं अपरांह शैशवावस्था
4) किशोरावस्था

9.5.1 शैशवावस्था–

यह तथ्य सर्वविदित है कि शैशवावस्था मनुष्य की सबसे सक्रिय कम–अवधि है। इस अवस्था में मस्तिष्क की सतर्कता, ज्ञानेन्द्रियों की तेजी, सीखने और समझने की अधिकता अपने चरमोत्कर्ष पर होती है। फ्रायड के अनुसार मनुष्य

शिशु जो कुछ बनता है जीवन के प्रारम्भिक चार–पांच वर्षो में ही बन जाता है। भाषा को क्रमानुसार निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है।

9.5.1.1 रूदन – चूंकि बोलना एक लम्बी एवं जटिल प्रक्रिया के बाद सीखा जाता है, अतएव उसका प्रारूप हमें रूदन अथवा चीखने–चिल्लाने में मिलता है। रिबिल के अनुसार रूदन प्रारम्भ में संकटकालीन होता है। यह अनियमित तथा अनियंत्रित होता है। अतः रूदन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जो शिशु अकारण ही करता है। स्टीवर्ट के अनुसार जीवन के प्रारम्भिक दिनों में शिशु रूदन भिन्न मात्रा में पाया जाता है और वह दूसरे सप्ताह में प्रकट होता है। तीसरे सप्ताह में स्वार्थवश रूदन कम हो जाता है। रूदन तीव्रता तथा शिशु के विचारों तथा भावों को अभिव्यक्त करता है। यह रूदन पीड़ा, तेज रौशनी, तीक्ष्ण आवाज, थकान, भूख आदि के कारण हो सकता है।

9.5.1.2 बलबलाना – इरविन महोदय के अनुसार रूदन में सुस्पष्ट आवाजें पायी जाती है। यह ध्वनि चौथे पांचवें मास के पश्चात स्पष्ट होना प्रारम्भ हो जाती है। बलबलाने में जीवन के प्रथम वर्ष में स्वर ध्वनि सुनाई देती है। अ–आ–इ–ई–ए–ऐ इसके साथ ही इसी समय तक जबकि आगे के कुछ दांत आ जाते हैं जो होठों के मेल से शिशु ब, ल, त, द, म जैसे व्यंजनों को प्रकट करता है।

9.5.1.3 इंगित करना– भाषाविदों ने इंगित करने को भाषा विकास का तृतीय सोपान कहा। जरसील्ड मैकार्थी ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि इसके द्वारा शिशु दूसरे को अपने भाव विचार समझाता है। इसे लेरिक ने सम्पूर्ण शरीर की भाषा भी माना है। शिशु 'हां' या 'ना' की मुद्रा में गर्दन हिला कर भी उत्तर देता है।

9.5.1.4 बोलना– भाषा प्रयोग की यह अन्तिम अवस्था है। इसका आरम्भ एक डेढ़ वर्ष के करीब होता है। भाषा बोलना भी एक कौशल है अतः इसे अभ्यास की आवश्यकता होती है। यह शरीरिक अवयवों की पुष्टता पर निर्भर करता है। शुरू में निरर्थक शब्द बोले जाते हैं जैसे वा, ला, मा, दा, ना इत्यादि। परन्तु क्रमशः साहचर्य के नियमों के कारण निरर्थक शब्दों में सार्थकता आ जाती है और वे सोद्देश्य प्रयुक्त होते हैं।

शब्द बोलने में एक समस्या उच्चारण की होती है। शुरू में बालक अनुकरण से ही उच्चारण सीखता है। शैशवावस्था में उच्चारण योग्यता लचीली मानी जाती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

3) आयु के बढ़ने पर शिशुओं में किस प्रकार भाषा का विकास होता है?

....

....

....

....

....

....

9.5.1.5 भाषा के ध्वनि की पहचान – जैसे पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि शब्दों को सीखने से पहले शिशु भाषा की ध्वनि में अन्तर करना सीख जाता है। जैसे रा तथा ला में अन्तर स्पष्ट कर लेते हैं।

9.5.1.6 प्रथम शब्द – 8 से 12 माह की आयु में बच्चा प्रथम शब्द बोलता है। इससे पूर्व वह बलबलाना, इंगन आदि अन्य भाव भंगिमाओं के द्वारा अपनी भावाभिव्यक्ति करता है। ब्रेकों के अनुसार बोलना शिशु के सम्प्रेषण की विभिन्न अवस्थाओं का अगला पड़ाव है।

शिशु सर्वप्रथम अपने परिवार से जुडे व्यक्तियों जिसमें उसका भावनात्मक लगाव होता है उनको पुकारना प्रारम्भ करता है जैसे बड़ों को दादा, पालतू जानवर को किटी, खिलौनों को टाम खाने को दूध इत्यादि।

9.5.1.7 शब्द युग्म का उच्चारण – 18 से 24 माह की आयु तक शिशु प्रायः शब्दों युग्मों को बोलना प्रारम्भ कर देता है यह शब्द युग्म वे अपनी इंगन, कुशलता, शारीरिक इंगन तथा सिर के विभिन्न मुद्राओं के साथ बोलते है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है।

स्थान पहचानना	–	वहाँ पुस्तक
दोहराना	–	दूध और
किसी वस्तु के प्रति विशेष लगाव	–	मेरा खिलौना

वस्तु की पहचान	–	कार बड़ी
क्रिया प्रतिक्रिया	–	तुम्हें मारूंगा
क्रिया वस्तु	–	चाकू काटो
प्रश्न	–	बाल कहाँ

शिशुओं की शब्दावली का अध्ययन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों (स्मिथ एवं सीशोर) द्वारा हुआ है तथा कुछ इस प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त हुये हैं।

आयु	शब्द संख्या
8 मास	0
10 मास	1
1 वर्ष	3
1–3 वर्ष	19
1–6 वर्ष	22
1–9 वर्ष	118
2 वर्ष	272
4 वर्ष	1550 (स्मिथ)
4 वर्ष	1560 (सीशोर)
5 वर्ष	2072 (स्मिथ)
5 वर्ष	9600 (सीशोर)
6 वर्ष	2562 (स्मिथ)
6 वर्ष	14700 (सीशोर)

उपर्युक्त तालिका से शैशवावस्था में शब्दों की संख्या मालूम होती है जो शिशु प्रायः उच्चारित करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

4) शिशुओं में ध्वनि की पहचान किस माह से आरम्भ होती है?

....

....

....

5) किस प्रकार के शब्द युग्मों का उच्चारण शिशु प्रायः करता है?

....

....

....

6) विभिन्न मनोविज्ञानी के अनुसार आयु के बढ़ते क्रमानुसार शब्द संख्याओं को लिखिये?

....

....

....

9.5.2 बाल्यावस्था में भाषा विकास–

बाल्यावस्था जन्मोपरान्त मानव विकास की दूसरी अवस्था है जो शैशवावस्था की समाप्ति के उपरान्त प्रारम्भ होती है। बाल्यावस्था में प्रवेश करते समय बालक अपने वातावरण से काफी सीमा तक परिचित हो जाता है। इस अवस्था में वह व्यक्तिगत तथा सामाजिक व्यवहार करना सीखना प्रारंम्भ करता है तथा उसकी औपचारिक शिक्षा का प्रारम्भ भी इसी अवस्था में होता है। बाल्यावस्था में भाषा विकास तीव्र गति से होता है। शब्द भण्डार में वृद्धि होती है। बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में भाषा का विकास तेजी से होता है। वाक्य रचना एवं वाक पटुता में भी बालिकाएं श्रेष्ठ होती है।

सीशोर ने बालक–बालिकाओं के शब्द भण्डार का अध्ययन करके बताया कि उनके शब्दों की संख्या 10–12 साल तक 35,000 के लगभग पहुंच जाती है।

आयु	शब्दों की संख्या
7 साल	21200
8 साल	26300
10 साल	34300
12 साल	50500

उपर्युक्त सारिणी देखने से ज्ञात होता है कि बाल्यावस्था में क्रमशः एक

वाक्य में अधिक शब्द होते है। बालक अब मिश्रित एवं संयुक्त वाक्यों का प्रयोग अधिक करता है न कि सरल वाक्यों का।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

7) बाल्यावस्था में भाषा विकास को किन प्रक्रमों द्वारा निर्देशित किया जा सकता है?

....

....

....

8) बाल्यावस्था में भाषा विकास किस प्रकार होता है?

....

....

....

9.5.3 किशोरावस्था में भाषा विकास–

किशोरावस्था जन्मोपरान्त मानव विकास की तृतीय अवस्था है जो बाल्यावस्था की समाप्ति के उपरान्त प्रारम्भ होती है तथा प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भ होने तक चली है। यद्यपि व्यक्तिगत भेदों, जलवायु आदि के कारण किशोरावस्था की अवधि में कुछ अन्तर पाया जाता है फिर भी प्रायः 12 से 18 वर्ष की आयु के बीच की अवधि को किशोरावस्था कहा जाता है। इस अवस्था को बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के बीच का संधिकाल माना जाता है।

चूंकि भाषा का विकास इस अवस्था में सम्प्रत्यात्मक स्तर पर निर्भर होता है, अतः किशोर किशोरियों में कल्पनाशील साहित्य के अध्ययन एवं सृजन की अभिकार्य होती है, प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग भी किशोरवर्ग अधिक करता है। अतः इनके शब्द भण्डार की विविधता तथा प्रचुरता स्वभावतः पायी जाती है।

किशोरावस्था में भाषा के विकास में आदत एवं बुद्धि का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है, आदत एक प्रकार चेतन सजगता एवं अर्न्तदृष्टि की ओर संकेत

करती है। इस क्षमता के कारण किशोर समस्याओं की परख करता है और उपयुक्त भाषा का प्रयोग करता है। यदि उपयुक्त भाषा नही मिलती तो वह उन्हें तोड़–मरोड़ के नये शब्द गढ़ता है। यहीं पर उसकी बुद्धि, उसकी कल्पना और उसकी आदत या अभ्यास भाषा के विकास में अपना योगदान देते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: क) नीचे दिए गए रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अपने उत्तरों की इकाई के अंत में दिए गये उत्तरों से तुलना कीजिए।

9) किशोरावस्था में भाषा विकास किन कारकों से प्रभावित होता है?

....

....

....

9.6 भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारक

9.6.1 बुद्धि –

भाषा की क्षमता एवं योग्यता का सम्बन्ध हमारी बुद्धि से अटूट होता है। भाषा की कुशलता भी उन बालकों में अधिक होती है, जो बुद्धि में अधिक होते हैं। बर्ट ने अपने "वैकवार्ड चाइल्ड" में संकेत किया है जिन बालकों की बुद्धि क्षीण होती है वे भाषा की योग्यता भी कम रखते हैं और पिछड़े भी होते हैं। तीक्ष्ण बुद्धि बालक भाषा का प्रयोग उपयुक्त ढंग से करते हैं।

9.6.2 जैविकीय कारक –

मस्तिष्क की बनावट भी भाषा विकास को प्रभावित करते हैं। भाषा बोलने तथा समझने के लिए स्नायु तन्त्र, तथा वाक–यन्त्र की आवश्यकता होती है। बहुत हद तक इनकी बनावट तथा कार्य शैली तथा स्नायु नियन्त्रण भाषा को प्रभावित करते हैं।

9.6.3 वातावरणीय कारक –

भाषा सम्बन्धी विकास पर व्यक्ति जिस स्थान और परिस्थिति में रहता है, आचरण करता है, विचारों का आदान–प्रदान करता है उसमें भाषा का विकास

होता हैं। उदाहरण स्वरूप निम्न श्रेणी के परिवार व समाज के लोगों में भाषा का विकास कम होता है क्योंकि उन्हें दूसरों के सम्पर्क में आने का अवसर कम मिलता है, इसी प्रकार परिवार में कम व्यक्तियों के होने पर भी भाषा संकुचित हो जाती है।

9.6.3.1 विद्यालय और शिक्षक – विद्यालय और शिक्षक भाषा विकास में महती भूमिका का निर्वाहन करते हैं। विद्यालय में विभिन्न विषयों एवं क्रियाओं का सीखना–तथा सिखाना भाषा के माध्यम से होता है। इस प्रक्रिया में भाषा सम्बन्ध ी विकास अच्छे से होता है।

9.6.3.2 व्यवसाय एवं कार्य – ऐसे बहुत से व्यवसाय हैं जिनमें भाषा का प्रयोग अत्यधिक होता है, उदाहरण स्वरूप अध्यापन, वकालत, व्यापार कुछ ऐसे व्यवसाय है जिनमें भाषा के बिना कोई कार्य नहीं चल सकता। अतएव वातावरण के अन्तर्गत इनको भी सम्मिलित किया गया है।

9.6.3.3 अभिप्रेरण, अनुबंधन तथा अनुकरण – मनोवैज्ञानिक के विचारानुसार भाषा सम्बन्धी विकास अभिप्रेरण, अनुबंधन एवं अनुकरण पर निर्भर करता है। एक निरीक्षण से ज्ञात हुआ कि बोलने वाले शिशु को प्रलोभन देकर स्पष्ट भाषी बनाया गया। एक दूसरे निरीक्षण में शिशुओं को चित्र दिखाकर उनके नाम याद कराये गये। ये अभिप्रेरण के महत्व को प्रकट करते हैं। भाषण प्रतियोगिता में पुरस्कृत होने पर छात्र को अधिक प्रभावशाली भाषा का प्रयोग करने का अभिप्रेरणा मिलती है।

अनुबन्धन की प्रक्रिया में प्रलोभन पुरस्कार या अभिप्रेरण के साथ प्रयत्न इस प्रकार जोड़ा जाता है कि प्रक्रिया पूरी हो जाती है। अनुकरण वास्तव में एक सामान्य प्रकृति है जो सभी को अभिप्रेरित करती है। अनुकरण की प्रवृत्ति एक आन्तरिक अभिप्रेरक होती है। कक्षा में अध्यापक की सुस्पष्ट साहित्यिक तथा शुद्ध भाषा का अनुकरण सचेतन एवं अचेतन रूप में छात्र करते हैं तथा भाषा सम्बन्धी विकास करने में सफल होते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

10) व्यवसाय में भाषा किस प्रकार सहायक है?

....

....

....

11) अभिप्रेरण किस प्रकार भाषा विकास में सहायता करता है?

....

....

....

9.7 सारांश

भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। विभिन्न आयु–वर्ग में भाषा का विकास अलग–अलग होता है। एक नवजात शिशु मात्र कुछ ध्वनियां प्रकट करता है जबकि एक युवा का भाषा पर अधिकार होता है। जैसे–जैसे आयु बढ़ती है वैसे–वैसे भाषा का विकास उन्नत दिशा की ओर अग्रसर होने लगता है। भाषा बिकास बहुत सारे कारक प्रभावित करते हैं। जैविकीय कारक, साथ ही बच्चा जिस तरह के वातावरण में रहता है वह भी उसके भाषा विकास को प्रभावित करते है। समद्ध वातावरण भाषा विकास को धनात्मक रूप से प्रभावित करता है। अतः एक अध्यापक का यह प्रयास होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों के समक्ष अच्छी भाषा का प्रयोग करें। साथ ही ऐसी सामग्री उपलब्ध करानी चाहिए जोकि शिक्षार्थियों की सही भाषा सीखने में मदद करें।

9.8 अभ्यास कार्य

1. किशोरावस्था में भाषा किस प्रकार व्यक्ति की बुद्धि परिलक्षित करती है?
2. भाषा विकास को जैविकीय कारक किस तरह प्रभावित करते हैं?

9.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. भाषा संप्रेषण का माध्यम होती है। यह विचारों के आदान–प्रदान का एक सशक्त माध्यम है। भाषा के अभाव में जीवन में जटिलता अधिक होगी और एक व्यक्ति सामाजिक रूप से सफल नही हो पायेगा। भाषा एक प्रकार की योग्यता है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने अन्दर उठ रहे विचारों की अभिव्यक्ति भलीं–भांति कर पाता है।

2. एक शिशु किस प्रकार अपने वातावरण के प्रति संवेदनशीलता प्रकट करता है वह क्रमागत भाषा विकास के सोपानों द्वारा भलीं भांति समझा जा सकता

है। भाषा विकास परिपक्वता तथा अधिगम दोनों के फलस्वरूप होता है।

3. शिशु का विकास दिन–प्रतिदिन शैनेः–शैनेः होता है। जैसे–जैसे शिशु परिपक्वता की ओर अग्रसर होता है उसमें क्रमागत भाषा विकास होता है प्रथमतः शिशु रूदन से वाणी प्रस्फुटित करता है। कुछ समय पश्चात रूदन बलबलाने में परिवर्तित हो जाता है, बलबलाना एक प्रकार की खेल भाषा होती है जिसमें शिशु एक ही शब्द का उच्चारण की आवृत्ति दिखाता है। करीब 8–12 माह का शिशु उंगली तथा शरीर के इंगन द्वारा चीजों को दिखाता है। कुछ समय पश्चात तकरीबन् 13–18 माह तक का शिशु शब्द उच्चारण प्रारम्भ करता है।।

4. शिशुओं में ध्वनि की पहचान तथा वह विभिन्न प्रकार की उच्चारित ध वनियों में अन्तर करना 18 से 24 माह से प्रारम्भ कर देता है। उदाहरण स्वरूप यदि शिशु के समक्ष दादा तथा पापा बोला जाता है तो वह उसी व्यक्ति की तरफ देखता है। अर्थात वह दादा या पापा से उत्पन्न होने वाली ध्वनि में अन्तर कर ले रहा है।

5. 18–24 माह का शिशु शब्द युग्मों का उच्चारण करना प्रारम्भ कर देता है। यह शब्द युग्म वे अपनी इंगन कुशलता, शारीरिक संगठन तथा विभिन्न मुद्राओं द्वारा बोलते है। शिशु द्वारा बोले जाने वाले कुछ शब्द युग्म इस प्रकार है – वहां पुस्तक, और दूध, गाय खड़ी आदि।

6. मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिये गये क्रम का अवलोकन करें व उसे क्रमबद्ध लिखे।

7. बाल्यावस्था में प्रत्यक्षात्मक स्तर के बजाय संप्रत्यात्मक स्तर पर भाषा का विकास होता है। हम अवस्था में शब्दों के उच्चारण भी स्थिर हो जाते हैं।

8. बाल्यावस्था में होने वाले भाषा विकास का अध्ययन करें तत्पश्चात उनका चार्ट तैयार कर अध्ययन करे।

9. – संप्रत्यात्मक विकास

– बुद्धि

– आदत

10. जो व्यवसाय इस प्रकार के होते हैं जिनमें बोलने की आवश्यकता अधिक होती है उनके लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति का भाषा पर अधिकार हो।

11. विभिन्न प्रकार के पुरस्कार सही भाषा विकास को प्रोत्साहित करते है।

कभी–कभी दण्ड भी भाषा विकास में सहायक होता है।

9.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Hurlock, E.B. (1981) Developmental Psychology : A life span approach fifth edition. Mc Graw-Hill, New Delhi.

सिंह, ए0के0 (1994) : शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पटना।

Santrock, J.W. (2007) Child Development, eleventh edition. Mc Graw-Hill, New Delhi.

इकाई–10 संप्रत्यात्मक विकास

संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 सम्प्रत्यय निर्माण

10.4 प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया

10.5 बच्चों के प्रत्ययों की विशेषताएँ

10.6 बाल्यावस्था के कुछ सामान्य प्रत्यय

10.6.1 जीवन प्रत्यय

10.6.2 जगह प्रत्यय

10.6.3 सम्बन्धित आकार का प्रत्यय

10.6.4 भार का प्रत्यय

10.6.5 संख्या का प्रत्यय

10.6.6 धन का प्रत्यय

10.6.7 समय का प्रत्यय

10.6.8 आत्म प्रत्यय

10.7 प्रत्यय निर्माण में शिक्षक की भूमिका

10.8 सारांश

10.9 अभ्यास कार्य

10.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

बच्चों में भाषा विकास विभिन्न अवस्थाओं में किस प्रकार से होता है इसका ज्ञान आप इकाई –9 में कर चुके हैं इस इकाई में संप्रत्ययात्मक विकास का अध्ययन करेंगे। जैसे–जैसे परिवेश के सम्पर्क में बच्चा आता है विभिन्न प्रकार के प्रत्ययों का निर्माण करना आरम्भ कर देता है। बच्चों में कैसे–कैसे प्रत्ययों का

निर्माण हुआ है यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि उसका परिवेश किस प्रकार का है।

सही संप्रत्यय निर्माण कैसे होता है, उनकी क्या–क्या विशेषतायें होती है, एक शिक्षक के लिये इन प्रत्ययों की जानकारी रखना व उनके उचित विकास में सहयोग देना कितना आवश्यक है, इनका ध्यान रखकर इस इकाई को लिखा गया है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि :

- संप्रत्यय का अर्थ समझ सकेंगे।
- संप्रत्यय विकास का अर्थ समझ कर संप्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया जान सकेंगे।
- बच्चों में बनने वाले विभिन्न प्रत्ययों की विशेषतायें जान सकेंगे।
- बाल्यकाल में बनने वाले विभिन्न प्रत्ययों की चर्चा कर सकेंगे।
- बच्चों और बड़ों में बनने वाले प्रत्ययों में अन्तर की विवेचना कर सकेंगे।
- शैक्षिक परिस्थितियों में संप्रत्यय निर्माण के महत्व को जान सकेंगे।

10.3 संप्रत्यात्मक विकास

सभी प्रकार के सीखने का आधार प्रत्यय है। शैशवावस्था से वृद्धावस्था तक मनुष्य अनेक नए प्रत्ययों का निर्माण करता है तथा प्रतिदिन के जीवन में पुराने निर्मित प्रत्ययों का प्रयोग करता है। व्यक्ति स्वयं आयु, अनुभव व बुद्धि के आधार पर प्रत्यय निर्माण के अलग–अलग स्तर पर होते है। उदाहरणार्थ – एक चार साल के बच्चे का पौधे का प्रत्यय जीवविज्ञान के शिक्षक के पौधे के प्रत्यय से भिन्न होगा।

प्रत्यय चिन्तन प्रक्रिया में सहायक होते है। यह चिन्तन शक्ति बच्चे में अचानक उत्पन्न नही होती है, इसका विकास क्रमिक व नियमित होता है। जन्म के समय बच्चे को अपने वातावरण का ज्ञान नही होता है। धीरे–धीरे परिपक्वता व सीखने के परिणामस्वरूप बच्चा जो देखता है उसे समझना आरम्भ करता है। इस प्रकार उसका वातावरण उसके लिए अर्थपूर्ण हो जाता है। अलग–अलग ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त अनुभव को एक में बाधने से प्रत्यय बनते है।

डी सीको के अनुसार – उत्तेजनाओं का वर्ग जिसमें समान विशेषताएँ हो प्रत्यय कहलाते है।

उदाहरणार्थ– वर्गएक विशेष वस्तु को बताता है जो घेरा तथा त्रिभुज से भिन्न है।

10.4 प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया

बच्चे का ज्ञान ऐन्द्रिय ज्ञान से आरम्भ होता है अर्थात वह वातारवरण का अनुभव इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करता है। इसी को संवेदना कहते है। संवेदना व्यक्ति के दिमाग की चेतन प्रतिक्रिया है। प्रत्ययों का निर्माण संवेदना से प्रारम्भ होता है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है उसका ऐन्द्रिय ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान में परिवर्तित हो जाता है। बच्चा जो कछ देखता, सुनता व चखता है उसका अर्थ समझने लगता है। इसी को प्रत्यक्षीकरण कहते है। प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया द्वारा विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं को अर्थ मिलता है। संवेदना व प्रत्यक्षीकरण दोनो एक साथ घटित होते है। संवेदना व प्रत्यक्षीकरण के पश्चात प्रत्यय निर्माण होता है।

सामान्य प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया के पॉच चरण होते है–

1. **निरीक्षण** – एक जाति के सभी पदार्थो का भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में निरीक्षण किया जाता है। उदाहरणार्थ– बच्चा एक विशिष्ट परिस्थिति में विशेष कार को देखता है और उसका चित्र उसके मस्तिष्क में अंकित हो जाता है। भविष्य में 'कार' शब्द सुनकर उसके मस्तिष्क में वही कार की प्रतिमा आ जाती है। यही से प्रत्यय निर्माण का आरम्भ होता है।

2. **तुलना**– उस पदार्थ के विभिन्न गुणों का विश्लेषण करता है तथा विभिन्न पदार्थो से उसकी तुलना समानता व असमानता के आधार पर करता है। जैसे–बच्चा विभिन्न कारों को आपस में तुलना करता है।

3. **प्रत्याहार**– समान गुणों को प्रथक कर लेता है। अर्थात बच्चा सभी प्रकार की कारों में समान गुणों का विश्लेषण व संश्लेषण करके उसमें एकरूपता का ज्ञान प्राप्त करता हैं।

4. **सामान्यीकरण**– समान गुणों का संयोजन कर लिया जाता है।

5. **नामकरण** – उस पदार्थ को एक विशेष नाम से पुकारा जाता है। नामकरण ऐसे शब्दों द्वारा किया जाता है जो उसके नाम का बोध कराते है।

प्रत्यय के विकास के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के अलग–अलग मत है। कुछ के अनुसार प्रत्यय का विकास भाषा विकास से पहले ही हो जाता है। कुछ

अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार भाषा एवं प्रत्यय का विकास साथ–साथ होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की मिलान कीजिए।

1) संप्रत्यय विकास किसे कहते हैं ?

....

....

2) एक बच्चे में प्रत्ययों का निर्माण कैसे होता है?

....

....

....

10.5 बच्चों के प्रत्ययों की विशेषताएँ

बड़ो के प्रत्ययों से बच्चों के प्रत्ययों में अन्तर प्रकार का नही, वरन मात्रा का होता है। क्योकि बच्चों को कम अनुभव व ज्ञान होता है। जैसे–जैसे बच्चे की अवस्था बढ़ती है बच्चों के प्रत्ययों में धीरे–धीरे परिवर्तन आता है। ये परिवर्तन इस प्रकार होता है–

1. **प्रत्यय सरल से जटिल की ओर विकसित होते है।** प्रारम्भ में बच्चे सामान्य प्रत्यय रखते है जैसे पहले वे प्रत्येक खाने की चीज को एक समान समझते है बाद में रोटी, दाल, चावल आदि को अलग–अलग समझते है।

2. **प्रत्यय सामान्य से विशिष्ट की ओर विकसित होते है।** सर्वप्रथम बच्चा सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करता है उसके अलग–अलग भागों को नही। जब बच्चा वस्तु को सम्पूर्ण रूप में देखता है तो उसके बारीकियों को इतनी जल्दी नही देख पाता है। Binet ने शब्दों के अर्थ परीक्षण के आधार पर बताया कि बच्चों बडो की प्रतिक्रिया में अन्तर था जैसे– गाउन का अर्थ बच्चों ने बताया "यह एक पोशाक है" जब कि बड़े बच्चों ने कहा "यह एक रात में पहनने वाली पोशाक है"।

3. प्रत्यय संचयी होते है–कभी–कभी एक प्रत्यय को समझने के लिए दूसरे प्रत्यय का ज्ञान आवश्यक होता है जैसे– रेखागणित में त्रिभुज का ज्ञान होने से पहले भुजा एवं कोण का प्रत्यय स्पष्ट होना चाहिए।

10.6 बाल्यावस्था के कुछ सामान्य प्रत्यय

10.6.1 जीवन का प्रत्यय –

छोटे बच्चों के अनुभव व ज्ञान सीमित होते है। वे सजीव व निर्जीव वस्तुओं में भेद नही समझते है परिणामस्वरूप उनके प्रत्यय दोषपूर्ण होते है। प्याजे ने वस्तुओं में चेतना समझने की प्रवृति के लिए चार अवस्थाएँ बतायी है–

अ) इस स्तर पर बच्चा सोचता है कि जो चीजे क्रियाशील होती है वह सजीव होती है जैस चावी से चलने वाले खिलौने।

ब) जो चीजे हिल सकती है वो जीवित होती है जैसे सूर्य चन्द्रमा आदि।

स) बच्चे यह समझने लगते है कि गति वस्तु में स्वयं में है या बाहर से की जा रही है। जिनमें गति स्वयं में है वे चीजे सजीव है।

द) बच्चे वास्तव में जीवित लोगो को ही जीवित समझते है जैसे जानवर, मनुष्य आदि।

जीवन के प्रत्यय से सम्बन्धित मृत्यु का प्रत्यय भी होता है। तीन से पाँच वर्ष के बच्चे मुत्यु का अर्थ केवल अलग होना समझते है और यह नही समझते कि वह हमेशा के लिए चला गया है। नौ वर्ष का बच्चा मृत्यु को एक प्रक्रिया के रूप में समझने लगता है जो असम्भावी है।

10.6.2 जगह का प्रत्यय–

इसके अन्तर्गत दिशा, दूरी तथा त्रिविमीय आदि के प्रत्यय आते है। दिशा व दूरी के बारे में बच्चा अनुभव से सीखता है। बहुत छोटा बच्चा 20 इंच की दूरी पर रखी चीज को पकड़ने के लिए आगे नही बढ़ता है। इससे स्पष्ट होता है कि उसे दूरी का ज्ञान है। जैसे ही बच्चा चलना व दौड़ना आरम्भ करता है तो उसे दूरी का मुल्यांकन करने के अवसर ज्यादा मिलते है। दिशा एवं दूरी का प्रत्यय अर्जित करने में प्रशिक्षण की अहमभूमिका होती है। विद्यालय मे दिए गए कार्य को करते समय जगह व चीजों को नापने में बच्चा सेंटीमीटर का प्रयोग करता है जब कि दैनिक जीवन में इसका उपयोग करने पर बच्चे को कठिनाई होती है। पाँच

से सात वर्ष की अवस्था में बच्चे दाएँ तथा बाएँ में अन्तर कर पाते है। नौ–दस वर्ष के बच्चे दिशाओं को अलग–अलग समझ सकते है जैसे उत्तर दिशा, दक्षिण दिशा आदि।

10.6.3 सम्बन्धित आकार का प्रत्यय–

बच्चा सर्वप्रथम सबसे छोटे आकार व सबसे बड़े आकार वाली चीज को पहचान लेता है। ऐसा तीन–चार वर्ष की आयु पर बच्चा कर सकता है। पॉच वर्ष की आयु पर बच्चा बीच के आकार वाली चीजो को चुन सकता है।

10.6.4 भार का प्रत्यय–

बच्चों को अनुभव से ज्ञात होता है कि भिन्न–भिन्न वस्तुओं का भार अलग–अलग होता है। प्रारम्भ में बच्चों का भार का प्रत्यय वस्तुओं के आकार से प्रभावित होता है। बाद में आकार व भार में अन्तर करना सीखता है।

10.6.5 संख्या का प्रत्यय–

बच्चा जैसे ही बोलना शुरू करता है संख्या बताने वाले शब्दों का प्रयोग करने लगता है। ऐसा बच्चा सिर्फ अनुकरण से करता है। वह वास्तव में शब्दों का अर्थ नही समझ पाता है। संख्या के प्रत्यय का विकास आयु बढ़ने व प्रशिक्षण से विकसित होता है। Ternan तथा Merill ने पाया कि चार वर्ष का सामान्य बच्चा 2 वस्तुओं को गिन सकता है, पॉच वर्ष का बच्चा 4 वस्तुओं को तथा 6 वर्ष का बच्चा 12 वस्तुओं को गिन सकता है।

10.6.6 धन का प्रत्यय–

विद्यालय जाने से पहले बहुत कम बच्चों को सिक्कों तथा रुपयों का प्रयोग करने का अवसर मिलता है इसलिए पूर्व विद्यालय अवस्था में धन के प्रत्यय का विकास बहुत धीमा होता है। चार वर्ष में बच्चा समझता है कि धन का सम्बन्ध खरीदने से है लेकिन वे नही समझ पाते कि अलग–अलग सिक्कों का क्या मूल्य है।

10.6.7 समय का प्रत्यय–

समय का प्रत्यय सूक्ष्म होता है अतः इसके लिए स्थूल से स्थितियों को सम्बन्धित करने की आवश्यकता होती है। बच्चा धड़ी में लिखें संख्याओं को समझता है। बच्चे को ऐतिहासिक समय को समझना कठिन होता है उदाहरणार्थ

उसे बताया जाए कि यह घटना 100 साल पहले हुयी थी तो वह सौ साल नही समझ सकेगा समय के प्रत्यय का विकास संख्या के प्रत्यय के विकास पर निर्भर करता है जैसे एक महीना 30 दिन। समय का प्रत्यय समझने के लिए चिन्हो व प्रतीकों का प्रयोग आवश्यक है। महीने के प्रत्यय की तुलना में दिन, रात, हफ्ते व ऋतुओं का प्रत्यय अधिक सही होता है। Ames ने अध्ययनों में पाया कि वर्तमान को सूचित करने वाले शब्द पहले सीखे जाते है। उसके बाद भविष्य तथा भूत को सूचित करने वाले शब्द सीखे जाते है।

10.6.8 आत्म का प्रत्यय–

बच्चा शीशे में स्वयं को देखकर और अपने शरीर के विभिन्न भागो को छू कर अपने शरीर से परिचित होता है। छः सात महीने का बच्चा अपनी गतिविधियों को शीशे में देखता है। चौदह महीने का बच्चा शरीर के विभिन्न भागों की ओर इशारा करके बताते है। जब बच्चा स्वयं को दूसरों से अलग समझता है तब उसके आत्म का प्रत्यय बनता है। आत्म चेतना (Self consciousness) के कारण बच्चा दूसरों से शर्माता है। जब बच्चा विद्यालय जाने लगता है तो वह प्रतियोगिता (Competition) का अर्थ समझने लगता है। बच्चे मजाक उड़ाने, असफलता व मानहानि के प्रति संवेदनशील होते है और ये चीजे उसके आत्म प्रत्यय के समुचित विकास में बाधक होती है।

10.7 प्रत्यय निर्माण में शिक्षक की भूमिका

प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती है। बच्चे के मस्तिष्क में वातारण की साधारण वस्तुओं जैसे दूध पीने की शीशी, मेज, ऑख, नाक आदि प्रत्यय बनने शुरू होते है। इस स्तर पर बच्चा इन शब्दों को स्वयं बोल नही पाता है लेकिन दूसरों के निर्देश पर कार्य करता है जैसे दूध की बोतल ले आओ। तुम्हारी ऑख कहाँ है? इत्यादि। प्रत्यय निर्माण की मात्रा व गुणवत्ता बच्चे को मिलने वाले वातावरण व अनुभवों पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए– गन्दी बस्ती में पलने वाले बच्चे के लिए 'घर' तथा उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर के बच्चे के 'घर' के प्रत्यय में अन्तर होगा। प्रत्ययों का निर्माण एक संचयी प्रक्रिया है। बाद के वर्षो में प्रत्ययों का निर्माण व्यक्ति के जीवन के प्रारम्भिक वर्षो के अनुभवों पर निर्भर करता है।

सामान्यतः चार वर्ष की आयु के बाद बच्चे का विद्यालय में प्रवेश होता है। विद्यालय में प्रवेश लेने से पहले बच्चा अपने वातावरण की बहुत सी वस्तुओं के बारे में प्रत्यय रखता है। यद्यपि यह प्रत्यय स्पष्ट नही होते है। इस समय प्रत्यय निर्माण में शिक्षक की अहम भूमिका होती है–

1. बच्चे में पहले से निर्मित प्रत्ययों को ठीक व स्पष्ट करना।
2. बच्चें को नए प्रत्ययों के निर्माण में सहायता प्रदान करना।
3. प्रत्ययों का उचित व सही निर्माण हो सके इस हेतु शिक्षक को प्रत्यक्ष अनुभव प्रदान करने चाहिए। उदाहरणार्थ– बच्चे को 'हाथी' का प्रत्यय देना है तो हाथी दिखाना चाहिए। कक्षा में हाथी नही बुलाया जा सकता अतः बच्चों को चिड़ियाघर ले जाना चाहिए।
4. बहुत सी वस्तुओं का प्रत्यय ज्ञान देना संभव नही होता है। ऐसी वस्तुओं के बारे में ज्ञान दृश्य–श्रव्य साधन का प्रयोग करके दिया जा सकता है।
5. बच्चों के प्रत्यय स्पष्ट हो इस हेतु एक ही वस्तु को विभिन्न परिस्थितियों में दिखाना चाहिए। जैसे–'गाय' का प्रत्यय देना है तो काली व भूरी व सफेद गाय दिखाना चाहिए। इसके अतिरिक्त मोटी, बड़ी व छोटी, पतली गाय भी भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में दिखाना चाहिए।
6. छात्रों को नवीन ज्ञान को आत्मसात करने में कठिनाई होती है। अतः शिक्षक को नवीन ज्ञान को छात्रों के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित करना चाहिए। अर्थात् ज्ञात से अज्ञात के सिद्धान्त को अपनाना चाहिए। उदाहरण के लिए– त्रिभुज का ज्ञान देना है तो छात्रों को भुजा व कोण का ज्ञान होगा। भुजा व कोण के बारे में छात्रों से प्रश्न पूछते हुए त्रिभुज का ज्ञान देना चाहिए।
7. शिक्षक को पढ़ाते समय विभिन्न वस्तुओं एंवं घटनाओं के मुख्य गुणों की तरफ छात्रों का ध्यान आकर्षित करना चाहिए जिससे छात्रों को प्रत्यय निर्माण में सुविधा हो सके तथा वे स्वयं से वस्तुओं व घटनाओं को परिभाषित कर सकें।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की मिलान कीजिए।

3) बच्चों व बड़ों में बनने वाले प्रत्ययों में अन्तर लिखिए

....

....

....

4) बाल्यावस्था में बनने वाले प्रत्ययों को लिखिए।

....

....

....

10.8 सारांश

जब अनेक वस्तुओं को सामान्य नियम के आधार पर एक साथ जोड़ दिया जाता है। और इससे बनने वाले मानसिक प्रारूप को संप्रत्यय की संज्ञा दी जाती है। बच्चों में जो संप्रत्यय बनते है उनकी अपनी कुछ विशेषतायें होती है। इन विशेषताओं में प्रमुख है– प्रत्यय सरल से जटिल होते है, प्रत्यय सामान्य से विशिष्ट की ओर विकसित होते है, प्रत्यय में संचयी होने का गुण होता है व एक क्रम में होते है।

बालकों में कई तरह के संप्रत्ययों का विकास होता है। जिनमें जीवन का प्रत्यय, जगह का प्रत्यय, सम्बंधित आकार का प्रत्यय, भार का प्रत्यय, संख्या का प्रत्यय , धन प्रत्यय तथा समय का प्रत्यय प्रमुख है। शिक्षा के लिये बालकों का संप्रत्यय विकास एक महत्वपूर्ण आधार का काम करता है। शिक्षक के लिये संप्रत्यय विकास का ज्ञान रखना अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है।

10.9 अभ्यास कार्य

1. प्रत्यय निर्माण में भाषा की भूमिका की विवेचना कीजिए।

2. बाल्यावस्था में बनने वाले प्रत्ययों की विशेषताएँ लिखिए।

3. एक शिक्षक के लिये प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया का ज्ञान शैक्षिक प्रक्रिया को किस प्रकार से प्रभावित करता है ?

10.10 बोध प्रश्नो के उत्तर

1) बालकों में उम्र बीतने के साथ–साथ जैसे–जैसे परिपक्वता व नई अनुभूति बढ़ती जाती है तो नये–नये सम्प्रययों का निर्माण होता है उसे संप्रत्यय विकास की संज्ञा दी जाती है।

2) प्रत्यय निर्माण की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का अध्ययन करें व उन्हें क्रमबद्ध करके लिखें।

3) बच्चों व बड़ो के प्रत्ययों में मात्रा का अन्तर।

परिपक्वता व अनुभवों में अन्तर।

4) जीवन का प्रत्यय, जगह का प्रत्यय, आकार प्रत्यय भार प्रत्यय, संख्या का प्रत्यय समर्थ प्रत्यय धन प्रत्यय।

10.11 कुछ उपयोगी पुस्तके

सिंह, ए0के0 (1994) : शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पटना।

Chauhan, S.S. (1996) Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House, New Delhi.

इकाई 11 बुद्धि, अभिक्षमता एवं सृजनात्मकता

संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 बुद्धि

11.3.1 बुद्धि की संकल्पना. एवं अर्थ

11.3.2 बुद्धि के प्रकार

11.3.3 बुद्धि लब्धि

11.3.4 बुद्धि के निर्धारक तत्व

11.3.5 बुद्धि के सिद्धान्त

11.3.6 बुद्धि का मापन

11.3.7 शिक्षा मे बुद्धि परीक्षणो की उपयोगिता

11.4 अभिक्षमता

11.4.1 अभिक्षमताः संकल्पना एवं अर्थ

11.4.2 अभिक्षमता का मापन

11.4.2.1 बहु अभिक्षमता परीक्षण

11.4.2.2 विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण

11.5 सृजनात्मकता

11.5.1 सृजनात्मकताः अर्थ एवं परिभाषा

11.5.2 अवस्थाए

11.5.3 सृजनशील व्यक्तियों की विशेषताएं

11.5.4 सृजनात्मकता को बढ़ाने के उपाय

11.5.5 सृजनात्मकता का मापन

11.6 सारांश

11.7 अभ्यास कार्य

11.8 बोध प्रश्नो के उत्तर

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तके

11.1 प्रस्तावना

मानव में अभूतपूर्व क्षमताए होती है तथा उन क्षमताओं को पहचानने की शक्ति भी होती है। उसकी चिन्तन शक्ति, अद्‌भुत कल्पना शक्ति, संवेगो एवं इन्द्रियो पर नियन्त्रण, बुद्धि, विभेदन करने की क्षमता, निर्माण तथा तर्क करने की योग्यता, यह सभी विशेष उपहार उसे प्रकृति के द्वारा दिये गए है। मनुष्य दूसरे सभी जीवो से अलग होता है क्योकि उसके पास सृजनात्मक शक्ति है। यह उसके लिए वरदान है जो कि उसके भविष्य को आकार देती है। अतः व्यक्ति की इन्ही क्षमताओ के बारे मे पता लगाकर उन्हे शैक्षिक, व्यवसायिक तथा मनोवैज्ञानिक परामर्श एवं निर्देशन दिया जा सकता है जिससे वह अपने आने वाले जीवन में पूर्ण रूप से सफल हो सके। इस ईकाई मे व्यक्ति के मानसिक गुणो जैसे बुद्धि, अभिक्षमता तथा सृजनात्मकता के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन के पश्चात, आप :

- बुद्धि को परिभाषित कर सकेंगे।
- बुद्धि के विभिन्न सिद्धान्तो का वर्णन कर सकेंगे।
- अभिक्षमता का अर्थ समझ सकेगे।
- अभिक्षमता के विभिन्न परीक्षणो का उचित प्रयोग कर कर सकेंगे।
- एक शिक्षक के रूप मे सृजनशीलता को बढ़ाने वाले उपायों का कक्षा मे प्रयोग कर सकेगे।

11.3 बुद्धि

बुद्धि का प्रयोग दिन प्रतिदिन की भाषा में किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में छात्रो की मानसिक योग्यताओं मे अन्तर का विशेष महत्व होता है। इस मानसिक क्षमता मे प्रमुख अन्तर बुद्धि अन्तर के कारण होता है। इस उपईकाई में आप बुद्धि के स्परूप, सिद्धान्त, मापन तथा कारको का अध्ययन करेंगे।

11.3.1 बुद्धिः सकंल्पना तथा अर्थ

सामान्य अर्थ मे तेजी से सीखने और समझने, स्मरण और तार्किक चिन्तन आदि गुणो को बुद्धि के रूप मे प्रयोग मे लाते है। मनोवैज्ञानिको द्वारा दी गयी बुद्धि क्री परिभाषाएँ सामान्य अर्थ से अलग है। मनोवैज्ञानिको द्वारा दी गयी परिभाषाओ

को तीन भागो मे बांटा जा सकता है।

1. बुद्धि को वातावरण के साथ समायोजन करने की क्षमता के आधार पर परिभाषित किया गया है।
2. जिस व्यक्ति मे सीखने की क्षमता जितनी अधिक होती है उस व्यक्ति मे बुद्धि उतनी ही अधिक होगी।
3. जिस व्यक्ति मे अमूर्त चिन्तन की योग्यता जितनी अधिक होगी वह व्यक्ति उतना ही अधिक बुद्धिमान होगा।

इन सभी परिभाषाओं मे बुद्धि के एक पक्ष को ध्यान मे रखकर ही परिभाषित किया गया है। बुद्धि केवल एक योग्यता ही नही है परन्तु इसमें अनेक तरह की योग्यताएँ सम्मलित होती है। इस उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुये मनोवैज्ञानिक वेश्लर ने बुद्धि को परिभाषित किया है "बुद्धि एक समुच्चय या सार्वजनिक क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उददेश्पूर्ण क्रिया करता है, विवेक पूर्ण चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढ़ग से समायोजन करता है।"

11.3.2 बुद्धि के प्रकार

ई० एल० थार्नडाइक ने बुद्धि के तीन प्रकार बतलाये है।

- सामाजिक बुद्धि
- अमूर्त बुद्धि
- मूर्त बुद्धि

सामाजिक बुद्धि वह सामान्य मानसिक क्षमता है जिसके आधार पर व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को समझता है तथा व्यवहार कुशलता के साथ–साथ सामाजिक सम्बन्धो को भी अच्छा बनाता है।

अमूर्त चिन्तन का तात्पर्य ऐसी मानसिक क्षमता से है जिसमे व्यक्ति शाब्दिक तथा गणितीय संकेतों एवं चिन्हों को आसानी से समझ जाता है तथा उसकी व्याख्या कर लेता है।

मूर्त बुद्धि वह मानसिक क्षमता है जिसके आधार पर व्यक्ति ठोस वस्तुओ के महत्व को समझता है तथा उसका ठीक ढ़ग से भिन्न–भिन्न परिस्थितियों मे परिचालन करना सीखता है।

11.3.3 बुद्धि लब्धि

1912 मे सबसे पहले स्टर्न ने बुद्धि को मापने के लिए बुद्धि लब्धि का प्रयोग किया। इससे पूर्व 1905 मे बिने तथा साईमन ने बुद्धि को मानसिक आयु

के रूप मे मापकर अभिव्यक्त किया। बुद्धि लब्धि मानसिक आयु तथा तैथिक आयु का ऐसा अनुपात है जिसे 100 से गुणा करके प्राप्त किया जाता है।

मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि लब्धि के मान को स्पष्ट करने के लिए वस्तुनिष्ठ तालिका बनायी है।

बुद्धिलब्धि का मान और उसका अर्थ

बुद्धि लब्धि का मान	अर्थ
140 या उससे उपर	प्रतिभाशाली
120 से 139	अतिश्रेष्ठ
110 से 119	श्रेष्ठ
90 से 109	सामान्य
80 से 89	मन्द
70 से 79	सीमान्त मंद बुद्धि
60 से 69	मंद बुद्धि
20 से 59	हीन बुद्धि
20 से कम	जड़ बुद्धि

11.3.4 बुद्धि के निर्धारण तत्व

एक व्यक्ति की बुद्धि दूसरे व्यक्ति से भिन्न होती है। इस भिन्नता का प्रमुख कारण वंशानुक्रम तथा वातावरण है। वंशानुक्रम के महत्व को दिखाने के लिए मनोवैज्ञानिको ने अलग–अलग तथ्य एकत्र कर यह बताया है कि बुद्धि जीन्स द्वारा प्रभावित होती है।

- भिन्न भिन्न परिवारो के बच्चे को जन्म के तुरन्त बाद एक ही वातारण मे रखकर यह पाया गया कि ऐसे बच्चे की बुद्धि एक दूसरे से भिन्न थी।
- एकाड़ी जुड़वा बच्चो की बुद्धि मे भात्रीय जुड़वा बच्चों की अपेक्षा अधिक समानता होती है। इस सहसम्बन्ध गुणांक 90 पाया गया।
- बोचार्ड तथा मैन्यू (1981) तथा एर्ह्लेमेयर, किमरलिंग तथा जाईविस ने अपने अध्ययनो मे यह बताया है कि जिन व्यक्तियों मे रिश्तेदारी होती है उनकी बुद्धिलब्धि मे सहसम्बन्ध पाया जाता है।

वातावरण भी व्यक्ति की बुद्धि लब्धि को प्रभावित करता है। वातावरणीय कारको मे आहार, स्वास्थ, उत्तेजनाओ का स्तर, परिवार का संवेगात्मक वातावरण प्रमुख है।

- गरीब तथा अप्रेरणात्मक वातावरण मे पाले गए बच्चो की बुद्धि की तुलना उन बालको की बुद्धि से की गयी जो प्रेरणात्मक तथा धनी वातावरण मे पाले पोसे गये थे और यह पाया गया कि प्रेरणात्मक वातावरण मे बड़े होने वाले बच्चो की बुद्धि अधिक पायी गयी।
- विसमैन तथा साल ने अपने अध्ययनो के आधार पर यह बताया कि प्रतिकूल वातावरण का सबसे खराब प्रभाव औसत बुद्धि वाले बच्चो पर पड़ता है। यदि व्यक्ति की आरम्भिक जिन्दगी में कुछ महत्वपूर्ण पर्यावरणी उत्तेजना का अभाव रहता है तो उससे बुद्धि मे कमी आ जाती है।
- बैक्स ने पाया है कि जब परिवार मे शोरगुल एवं दुर्व्यवस्था का स्तर उँचा होता है तो बच्चो के बुद्धि स्तर मे कमी आ जाती है माता पिता द्वारा उचित ध्यान न देना तथा सफलता पर उचित पुरूस्कार न देना आदि कारणों से भी बुद्धिलब्धि मे कमी आ जाती है।
- लोगो का रहन सहन का स्तर तथा शैक्षिक अवसरो मे वृद्धि बुद्धि मे वृद्धि का कारण माना जाता है।

अतः व्यक्ति का बौद्धिक विकास हद तक उस बौद्धिक वातावरण पर निर्भर करता है जिसमे वह रहता है। उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले बच्चो की बुद्धि निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर में रहने वाले बच्चों से श्रेष्ठ होती है।

इन अध्ययनो से स्पष्ट होता है कि बुद्धि के निर्धारण मे आनुवांशिकता तथा पर्यावरणीय कारको की अन्तःक्रिया का प्रभाव पड़ता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की मिलान कीजिए।

1) बुद्धि की एक परिभाषा लिखिए।

....

....

....

2) थार्नडाइक द्वारा दिये गए बुद्धि के प्रकार लिखिए।

....

....

3) बुद्धि लब्धि के संप्रत्यय को बताए।

....

....

4) बुद्धि के निर्धारक तत्व के रूप में आनुवांशिकता के महत्व को बताए।

....

....

....

11.3.5 बुद्धि के सिद्धान्त

बुद्धि का अर्थ समझने के पश्चात् हम बुद्धि के सिद्धान्त को समझेगे। बुद्धि के सिद्धान्तो को प्रमुख दो श्रेणियो मे बांटा जा सकता है।

- कारकीय सिद्धान्त
- प्रक्रिया उन्मुखी सिद्धान्त

कारकीय सिद्धान्त को मानने वाले मनोवैज्ञानिको ने बुद्धि के संगठन की व्याख्या कुछ कारको के रूप मे की है –

स्पीयरमैन का द्विकारक सिद्धान्त का प्रतिपादन स्पीयरमैन ने 1904 मे किया। इन्होने कारक विश्लेषण करके बुद्धि के दो कारक बताये– सामान्य कारक □ तथा विशिष्ट कारक □ सामान्य कारक से तात्पर्य व्यक्ति मे मानसिक कार्य करने की सामान्य क्षमता है। जिस व्यक्ति मे 'g' कारक जितना अधिक होगा वह व्यक्ति उतना ही अधिक्र मानसिक कार्य करेगा। प्रत्येक मानसिक कार्य करने मे कुछ विशिषिट योग्यताओ की आवश्यकता होती है जिसे 's' कारक कहा जाता है। इसका स्वरूप परिवर्तन शील होता है। विभिन्न प्रकार के मानसिक क्रियाओ मे विभिन्न तरह के 's' कारको की आवश्यकता होती है।

थर्स्टन का समूह कारक सिद्धान्त– इसका प्रतिपादन थर्स्टन ने 1938 मे किया जिन्होने कारक विश्लेषण के आधार पर बुद्धि की व्याख्या कई कारको के आधार पर की। बुद्धि मे मानसिक क्षमताओं के कई समूह होते है जिनमे से प्रत्येक समूह का अपना अलग–अलग कारक होता है जो सभी मानसिक क्षमताओ को

एक सूत्र मे बांधे रखता है। मुख्य रूप से सात प्रधान क्षमताए होती है जिसके आधार पर थर्स्टन ने प्रधान मानसिक क्षमताओ का परीक्षण बनाया।

बहुकारक सिद्धान्त– इसका प्रतिपादन थार्नडाइक तथा गिलफोर्ड के द्वारा किया गया है। थार्नडाइक के अनुसार बुद्धि की रचना छोटे–छोटे कारको से मिलकर छुपी है। प्रत्येक कारक एक विशष्ट मानसिक क्षमता का प्रतिनिधित्व करता है तथा साथ ही साथ एक दूसरे से स्वतंत्र होता है। ये बहुत से कारक मिलकर बुद्धि की रचना करते है।

बहुकारक सिद्धान्त मे ही 1967 मे गिलफोर्ड ने त्रिविमीय सिद्धान्त या बुद्धि संरचना सिद्धान्त का प्रतिपादन यह किया। तीन विमाए – संक्रिया, विषयवस्तु तथा उत्पादन है। इन तीन विमाओ मे संक्रिया विमा के 6 कारक, विषय वस्तु विमा के 5 कारक तथा तथा उत्पादन विमा के 6 कारक है। अतः बुद्धि के कुल मिलाकर 6x5x6=180 कारक होते है।

पदानुक्रमिक सिद्धान्त – वर्नर ने बुंद्धि के भिन्न – भिन्न तत्वो या कारको को एक पदानुक्रम के रूप मे बताया है। यह पिरामिड निम्न माडल पर आधारित है।

कैटिल का सिद्धान्त– कैटिल ने बुद्धि के दो तत्व – तरल बुद्धि एवं ठोस बुद्धि बताये है तरल बुद्धि स्पीयरमैन के 'g' कारक के समान है इसका सम्बन्ध तर्कणा क्षमता से होता है। ठोस बुद्धि मे उन क्षमताओ को रखा जाता है जिसे व्यक्ति तरल बुद्धि का उपयोग करके उसे अर्जित किया जाता है।

गार्डनर का बहुबुद्धि सिद्धान्त – गार्डनर (1983) के अनुसार बुद्धि का स्वरूप बहुकारकीय है इसमे सात सात तरह की क्षमताए होती है ये सभी एक दूसरे से स्वतंत्र होती है ये सात क्षमताए भाषाई बुद्धि, तार्किक गणीतिय बुद्धि, स्थानिक बुद्धि, शारीरिक गामक बुद्धि, संगीतिक बुद्धि, व्यक्गित आत्मन बुद्धि, व्यक्तिगत अन्य बुद्धि है।

प्रक्रिया उन्मुखी -- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास के साथ ही बुद्धि के स्वरूप की व्याख्या बौद्धिक प्रक्रियाओ के रूप मे की गयी है। इस सिद्धान्त मे मुख्य रूप से पियाजे, स्टेनवर्ग, जुआन **पासकुएल** – लियोनी, जेन्सन तथा गोलमैन के सिद्धान्त प्रमुख है इन सभी सिद्धान्तो मे से केवल दो ही सिद्धान्तो का विस्तृत वर्णन किया जायेगा।

पियाजे का सिद्धान्त -- इस सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन अध्याय संज्ञानात्मक विकास के अन्तर्गत किया गया है।

स्टर्नवर्ग का त्रितन्त्र सिद्धान्त – किसी मानसिक कार्य को करने मे व्यक्ति जिस तरह से सूचनाओ को संसाधित करता है उसके आधार पर स्टर्नवर्ग ने तीन उपसिद्धान्त बताये है।

1. **संदर्भात्मक उपसिद्धान्त** – इसका सम्बन्ध व्यक्ति की उस क्षमता से होता है जिसके सहारे वह विशिष्ट परिस्थितियो मे समस्या समाधान के लिए तैयार होता है।

2. **अनुभव जन्य उपसिद्धान्त** – इसका संबध व्यक्ति तथा उसके बाह्य वातावरण से हाता है। इसमे बुद्धि मे बदलते पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने की क्षमता सम्मलित होती है। जिन व्यक्तियों मे इस तरह की बुद्धि अधिक होती है उसमे व्यवहारिक ज्ञान अधिक होता है।

3. **घटक उपसिद्धान्त** – इस तरह की बुद्धि मे अमूर्त चिन्तन करने की तथा सूचनाओ को संसाधित करने की क्षमता सम्मिलित है। जिन व्यक्तियों मे यह बुद्धि अधिक होती है वे विश्लेषणात्मक ढ़ग से तथा आलोचनात्मक ढ़ग से सोचने मे निपुण होते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की मिलान कीजिए।

5) बुद्धि के गिल्फोर्ड माडल पर संक्षिप्त नोट लिखे।

....

....

....

6) स्पीयर मैन के द्विकार सिद्धान्त लिखे।

....

....

....

7) स्टर्नवर्ग का त्रितन्त्र सिद्धान्त के तीन उपसिद्धान्तो के नाम लिखे।

....

....

....

11.3.6 बुद्धि का मापन

प्राचीन काल मे ज्ञान के आधार पर बुद्धि की परीक्षा की जाती थी। वर्तमान काल मे बुद्धि को एक स्वाभाविक तथा जन्मजात शक्ति मानकर उसकी परीक्षा की जाती थी। 1819 मे वुन्ट ने मनोविज्ञान की प्रथम प्रयोगशाला स्थापित की तभी से वैज्ञानिक आधार पर बुद्धि परीक्षणो का निर्माण किया गया।1905 मे एलफ्रेड बिने ने बुद्धि परीक्षणों के सम्बन्ध मे सबसे पहला तथा ठोस कदम उठाते हुये 'बिने साइमन मानदण्ड' बनाया। 1908 मे इसमे संशोधन किया तथा 1916 मे एल० एम० टरमैन ने स्टैनफोर्ड बिने साइमन बुद्धि परीक्षण बनाया। जिसमे बुद्धि लब्धि की अवधारणा रखी गयी। इसके बाद मे अनेक बुद्धि परीक्षणो का निर्माण हुआ।

बुद्धि परीक्षणो को मुख्य रूप से तीन भागो मे बाटा जा सकता है।

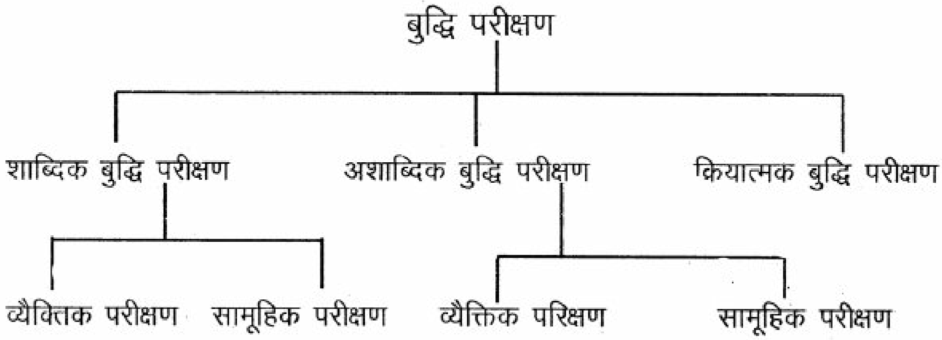

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये प्रश्नो के उत्तर दिजिए।

ख) इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

8) बुद्धि परीक्षणों को कितने प्रकारों में बॉट सकते हैं ?

....

....

9) प्रत्येक प्रकार के एक बुद्धि परीक्षण का नाम लिखिए ?

....

....

11.4 अभिक्षमता : संकल्पना एवं अर्थ

अभिक्षमता मानव क्षमता का एक प्रमुख अंग है। इसका तात्पर्य विभिन्न क्षेत्रो मे कौशल या ज्ञान प्राप्त करने की अर्जित तथा जन्मजात योग्यता से है। इसके आधार पर व्यक्तिगत विभिन्नताओ को बताया जा सकता है। फ्रीमैन के अनुसार अभिक्षता का तात्पर्य गुणो तथा विशेषताओ के एक ऐसे संयोग से होता है जिससे विशिष्ट ज्ञान तथा संगठित अनुक्रियाओ के कोशल जैसे किसी भाषा बोलने की क्षमता, यांत्रिक कार्य करने की क्षमता का पता लगाया जा सकता है।

11.4.2 अभिक्षमता का मापन

फ्रीमैन के अनुसार "अभिक्षमता परीक्षण वह है जिसकी रचना किसी विशेष प्रकार की तथा किसी सीमित क्षेत्र की क्रिया करने की बीजभूत योग्यता को मापने के लिए दी जाती है। अभिक्षमता परीक्षणो को उनकी प्रकृति के अनुसार प्रमुख रूप से दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है।

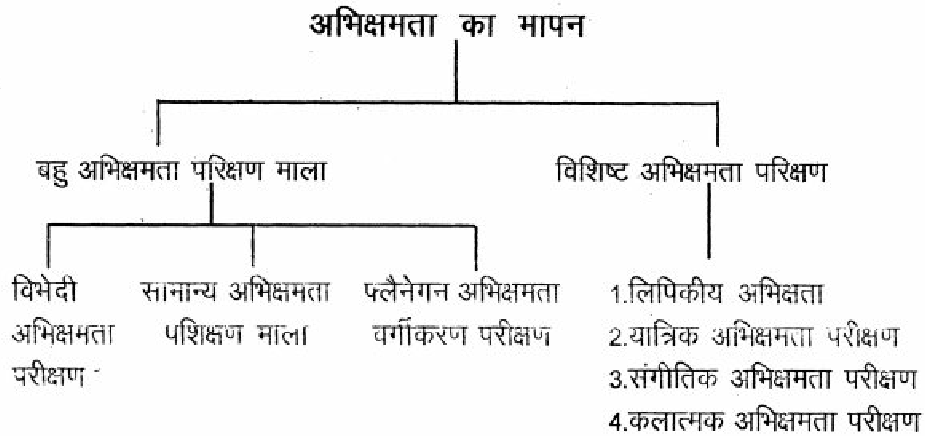

11.4.2.1 बहुअभिक्षमता परीक्षण माला – इस परीक्षण माला का तात्पर्य उन परीक्षण मालाओं से होता है जसके द्वारा एक साथ कई क्षेत्रों में अन्तर्निहित क्षमताओं का मापन होता है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से तीन परीक्षण आते हैं।

- **विभेदी अभिक्षमता परीक्षण**– इस परीक्षण का प्रयोग मुख्य रूप से नियोजन परीक्षण में किया जाता है। ये परीक्षण व्यक्ति की विभिन्न अभिक्षमताओं में विभेद को व्यक्त करनें के कारण भेदक अभिक्षमता परीक्षण कहलाते हैं। इनमें शाब्दिक बोध, आंकिक बोध, स्थानगत बोध, यांत्रिक बोध, लिपिकीय क्षमता, स्वभावगत झुकाव से सम्बन्धित उपपरीक्षण है।

- **सामान्य अभिक्षमता परीक्षण माला**– सर्वप्रथम 1962 में इसका प्रयोग सैन्य सेवाओं में किया गया। इसमें 12 उपपरीक्षण है जिससे 9 विभिन्न कारकों का

मापन होता है। सामान्य मानसिक क्षमता (G) संख्यात्मक अभिक्षमता (N) शाब्दिक अभिक्षमता (V), स्थानिक अभिक्षमता (S), आकार प्रत्यक्षण (P) लिपिकीय प्रत्यक्षण (Q), पेशी समन्वय (K), अंगुली दक्षता (F) तथा हस्तचालित दक्षता (M) है। इन सभी परीक्षणों पर आये प्राप्तांक का मानक प्राप्तांक ज्ञात करके सामान्य अभिक्षमता का पता लगाया जाता है।

- **फ्लैनेगन अभिक्षमता परीक्षण–** इस परीक्षण का प्रयोग व्यवसायिक परामर्श तथा कर्मचारी चयन में किया जाता है। इसका निर्माण फ्लैनेगन द्वारा 21 व्यवसायिक अभिक्षमताओं का मापन करने के लिए बनाया गया था। इनमें से 19 व्यवसायिक अभिक्षमता मापने के लिए शाब्दिक परीक्षण तथा 2 अभिक्षमता मापने के लिए क्रियात्मक परीक्षण विकसित किये गए है।

11.4.2.2 विशिष्ट अभि{ामता परीक्षण – ये परीक्षण किसी विशिष्ट अभिक्षमता का मापन करते है। विशिष्ट अभिक्षमता से तात्पर्य व्यक्ति में अन्तनिर्हित किसी विशेष तरह की अन्तशक्ति जैसे यांत्रिकी, संगीत, कला तथा लिपिकीय अभिक्षमता से है।

- **लिपकीय अभिक्षमता परीक्षण–** इसके द्वारा व्यक्ति की लिपकीय अभिक्षमता अर्थात किसी कार्य को तेजी से शुद्ध–शुद्ध करने की क्षमता का मापन से होता है। माइनेसोरा लिपिकीय परीक्षण में मुख्य रूप से दो भाग है – संख्या तुलना तथा नाम तुलना।

- **यात्रिक अभिक्षमता परीक्षण–** इस परीक्षण में यांत्रिक अभिक्षमता के प्रत्येक पहेलू को मापने के लिए अलग–अलग परीक्षण का निर्माण किया गया है।

  (i) यांत्रिक सज्जीकरण परीक्षण– इस परीक्षण द्वारा मशीन के विभिन्न पार्ट–पुर्जो को एकत्रित करके उसे ठीक ढंग से सजाने की क्षमता का मापन होता है। दिये गए समय में वह जितने पार्ट पुर्जो को सही ढंग से सजाता है उसके प्राप्तांक के आधार पर यांत्रिक अभिक्षमता की पता चलता है। माइनेसोटा सज्जीकरण परीक्षण प्रमुख है।

  (ii) सूचना परीक्षण– इसमें मशीन के संचालन के बारे में व्यक्ति के मन में संचित सामान्य सूचनाओं के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है। यह प्रशिक्षु यान्त्रिकों के चयन में अत्यन्त उपयोगी होता है। ओरोके यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षण प्रमुख परीक्षण है। जिसके दो भागः है – स्क्रूड्राइवर एवं बहु–विकल्प एकांश

(iii) **यांत्रिक तर्कणा परीक्षण–** इसमें यांत्रिक परिस्थितियों में चिन्तन करके किसी विशेष निष्कर्ष पर पहुंचने की क्षमता का मापन होता है। विनेट यांत्रिक बोध परीक्षण प्रमुख यांत्रिकी परीक्षण है।

(iv) **दक्षता परीक्षण–** इस परीक्षण में हाथ अंगूली आदि का प्रयोग करने की दक्षता का माप होता है। यांत्रिक पेशों में इसकी आवश्यकता होती है। इस परीक्षण का क्रियान्वयन वैयक्तिक रूप से किया जाता है। इसमें बिनेट हैण्डटूल दक्षता परीक्षण प्रमुख है।

(v) **स्थानिक सम्बन्ध परीक्षण–** इसमें वस्तुओं का सही स्थिति में होने के प्रत्यक्षण की क्षमता में इसकी जरूरत होती है। माइनेसोटा पेपर फार्म बोर्ड परीक्षण प्रमुख स्थानिक सम्बन्ध परीक्षण है।

६ **संगीतिक अभिक्षमता परीक्षण–** इसका प्रयोग व्यक्ति की संगीत अभिक्षमता के मापन के लिए किया जाता है। सीशोर संगीत प्रतिभा परीक्षण में श्रवण विभेदन के छह (6) पहेलुओं का ध्वनिलेख रिकार्ड व्यक्ति को सुनाया जाता है उसे विभेद कर सही बताना होता है यह छह पहलू – तारत्व, प्रबलता, समय, ध्वनिरूप, लय तथा ध्वनिक स्मृति है।

६ **कलात्मक अभिक्षमता परीक्षण** में कलात्मक अभिक्षमता के दो पहलुओं का मापन होता है – सौन्दर्य संवेदी निर्णय तथा सौंदर्य संवेदी उत्पादन। सौन्दर्य संवेदी निर्णय के लिए मायर आर्ट निर्णय परीक्षण का प्रयोग होता है। सौन्दर्य संवेदी उत्पादन में हार्न आर्ट अभिक्षमता आविष्कारिका का प्रयोग होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

10) रिक्त स्थान पर फ्रीमैन की अभिक्षमता की परिभाषा लिखिए।

....

....

....

11) अभिक्षमता परीक्षण के विभिन्न परीक्षणों को सूचीबद्ध कीजिए।

....

....

....

11.5 सृजनात्मकता

प्रत्येक व्यक्ति में किसी न किसी प्रकार की मानसिक योग्यता होती है। जिसके आधार पर वह लेखक, कलाकार वैज्ञानिक तथा संगीतज्ञ इत्यादि बनता है। मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति होती है। आज के जटिल समाज में वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों को पाने के लिए सृजनात्मक व्यक्तियों का होना राष्ट्र की प्रमुख आवश्यकता बन गयी है।

11.5.1 सृजनात्मक का अर्थ –

समाज, व्यक्ति व राष्ट्र के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होने के बावजूद, सृजनात्मकता की कोई एक सार्वभौमिक परिभाषा उपलब्ध नही है इसका कारण यह है कि अलग–अलग चिन्तक इसे अलग–अलग परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। सृजनात्मक का सबसे लोकप्रिय अर्थ गिलाफोर्ड में बताया गया है। इनक अनुसार चिन्तन दो तरह के होते हैं।

अभिसारी चिन्तन

अपसरण चिन्तन

अभिसारी चिन्तन में व्यक्ति रूढ़िवादी तरह से चलता हुआ सही निष्कर्ष पर पहुंचता है। ऐसे चिन्तन में समस्या का एक निश्चित उत्तर होता है। अपसरण चिन्तन में व्यक्ति भिन्न–भिन्न दशाओं में चिन्तन कर किसी भी समस्या के संभावित उत्तरों पर सोचता है और अपनी ओर से कुछ नयी चीजों को जोड़ने का प्रयास करता है। इसमें व्यवित किसी निश्चित उत्तर पर नही पहुंचता है। इस प्रकार का चिंतन अंशत तथा अरूढ़िवादी प्रकृति का होता है। मनोवैज्ञानिकों ने इसी अपसरण चिन्तन को सृजनात्मकता कहा है।

11.5.2 सृजनात्मक चिन्तन की अवस्थाएं –

कोई भी व्यक्ति किसी भी समस्या का समाधान कर रहा हो या सृजनात्मक चिन्तन कर रहा हो उसे मुख्य रूप से चार अवस्थाओं से गुजरना होता है।

1. **तैयारी**– इस अवस्था में व्यक्ति को समस्या के पक्ष व विपक्ष में आवश्यक तथ्य एकत्र करने होते है। जैसे एक चित्रकार को अपनी पेन्टिंग बनाने से पूर्व किसी प्राकृतिक स्थान पर बैठकर रंग, आकार, रोशनी आदि का ज्ञान प्राप्त करना होता है।

2. **उद्‌भवन** – यह चिन्तन की वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति की निष्क्रियता

बढ़ जाती है। यह निष्क्रिय अवस्था लम्बी तथा छोटी दोनो प्रकार की हो सकती हैं। इस अवस्था में व्यक्ति समस्या के समाधान के बारे में चिन्तन छोड़कर विश्राम करने लगता है।

3. **प्रबोधन** – इस अवस्था में अचानक व्यक्ति को समस्या का समाधान दिखायी देता है। उद्भवन की अवस्था में व्यक्ति अचेतन रूप से समस्या के भिन्न–भिन्न पहलुओं को पुनसंगठित करता है और उसे अचानक समस्या का समाधान नजर आ जाता है।

4. **प्रमाणीकरण** – सृजनात्मकता के लिए प्रेरणा अति आवश्यक होती है क्योंकि यह सामग्री की व्यवस्था करती है। कल्पना के द्वारा जो कार्य शुरू किया जाता है उसे बुद्धि एवं निर्णय के द्वारा पूर्ण किया जाता है। इस अवस्था में समस्या के समाधान की जांच होती है कि वह ठीक है अथवा नही।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

12) अपसरण चिन्तन की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए?

....

....

....

13) सृजनात्मक चिन्तन की अवस्थाओं को सूचीबद्ध कीजिए?

....

....

....

11.5.3 सृजनशील व्यक्ति की विशेषताएं –

मनोवैज्ञानिकों ने सृजनशील व्यक्ति की विशेषताओं को समझने के लिए अनेक अध्ययन किये जिसमें मुख्य रूप से व्यक्तित्व परीक्षणों तथा जीवन के अनुभवों का प्रयोग किया गया। मेकिनन तथा उनके सहयोगियों ने वैज्ञानिकों, आविष्कारकों तथा विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले लोगों का अध्ययन करके कुछ गुणों का निर्धारण किया। इनमें से कुछ निम्नलिखित है।

- कम बुद्धि वाले व्यक्तियों में सृजनात्मक चिन्तन नही के बराबर होता है।

- सृजनशील व्यक्तियों में अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा वातावरण के प्रति संवेदना अधिक पायी जाती है।
- सृजनशील व्यक्तियों के विचारों तथा क्रियाओं में स्वंत्रता देखी जाती है।
- ये व्यक्ति किसी भी घटना, चीज व वस्तु को गम्भीरता से नही होते है वरन् प्रत्येक कार्य को मनोविनोद से करते हैं।
- सृजनशील व्यक्ति किसी भी विषय पर अधिक विचार व्यक्त करते है।
- सृजनात्मक व्यक्तियों में अन्य व्यक्तियों ज्यादा लचीलापन पाया जाता है।
- सृजनात्मक विचारको में हमेशा एक नवीन जटिल समस्या का समाधान करते हैं। चिन्तन के आधार पर नयी चीज व घटना की खोज करते है।
- सृजनशील व्यक्ति अपनी इच्छाओं का कम से कम दमन करते हैं। ऐसे व्यक्ति इस बात की परवाह नही करते हैं कि दूसरे व्यक्ति क्या सोचेंगे तथा वे अपनी इच्छाओं तथा आवेगों का आदर करते है।
- सृजनशील व्यक्ति अपने विचारों को खुलकर अभिव्यक्त करते हैं तथा उन्हें तर्कपूर्ण तरह से प्रस्तुत करते हैं।
- सृजनशील व्यक्ति रूढ़िवादी विचारों को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं।
- सृजनात्मक व्यक्ति विभिन्न प्रकार की बाधाओं को दूर करते हुए धैर्यपूर्वक अपना कार्य करते हैं।
- सृजनात्मक व्यक्तियों में अपने कार्य के प्रति आत्मविश्वास पाया जाता है ऐसे व्यक्ति लक्ष्य के प्रति संवेदनशील होते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

14) सृजनात्मक विचारकों के किन्हीं छः गुणों को बताइये?

....

....

....

11.5.4 सृजनात्मकता को बढ़ाने के उपाय –

प्रत्येक व्यक्ति में सृजनशील होने के गुण होते हैं परन्तु अच्छा वातावरण न

मिल पाने के कारण इसका विकास नही हो पाता है।

सृजनात्मक को उन्नत बनाने के लिए आसवार्न ने विक्षिप्तकरण विधि को महत्वपूर्ण बताया है। इस विधि में व्यक्ति को अधिक से अधिक संख्या में नये–नये विचारों को देना होता है तथा अन्य लोगों के विचारों को भी संयोजित कर सकते हैं इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपने आप को तथा एक दूसरे को प्रोत्साहित करता है। अनुसंधानों से यह पता चलता है कि विक्षिप्तकरण से विचारों की गुणवत्ता तथा मात्रा दोनों में बढ़ोत्तरी होती है।

सृजनात्मकता को उन्नत बनाने के लिए गौर्डन द्वारा साइनेक्टिस विधि का प्रयोग किया गया है। इसमें सादृश्यता का प्रयोग किया गया है। मुख्य रूप से व्यक्तिगत सादृश्यता इस तरह की सादृश्यता में व्यक्ति को अपने आप को किसी परिस्थिति में रखने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। जैसे यदि आप यह चाहते हैं कि कोई खास मशीन ठीक ढंग से कार्य करे तो कल्पना करें कि खुदही वह मशीन है। प्रत्यक्ष सादृश्यता इसमें व्यक्ति को ऐसी चीजे पाने या खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जो समस्या के समाधान में सहायता करता है। सांकेतिक सादृश्यता में वस्तुनिष्ठ अव्यक्तिक का प्रयोग करके सर्जनात्मकता बढ़ाने का प्रयास किया जाता है। कल्पनाचित्र सादृश्यता में व्यक्ति किसी घटना या वस्तु पर सामान्य सीमाओं से स्वतंत्र होकर कल्पना करता है। इन विधियों के उपयोग द्वारा उद्योग, व्यवसाय तथा शिक्षा के क्षेत्र में लोगों की सृजनात्मकता को बढ़ाया जाता है।

11.5.5 सृजनात्मकता का मापन–

सृजनात्मकता व्यक्ति का घनात्मक गुण है अतः मनोवैज्ञानिकों ने इसकी माप के लिए विभिन्न परीक्षण बनाये हैं। परन्तु सबसे प्रचलित टारेंस का परीक्षण है।

सृजनात्मक को मापने के लिए टारेन्स ने 1966 में एक परीक्षण बनाया जो अत्यन्त लोकप्रिय साबित हुआ। इस परीक्षण के दो भाग है – शाब्दिक भाग तथा आकृतिक भाग। शाब्दिक भाग के सात उपभाग है। प्रत्येक उपभाग अपने में पूर्ण है तथा सर्जनात्मकता का मापन करने में सक्षम है।

1. **पूछना तथा अनुमान करना** – इस उपभाग में व्यक्ति को एक तस्वीर या आकृति दी जाती है तथा उससे यह अनुमान लगाने को कहा जाता है कि यह आकृति किस तरह से तथा किन कारकों से बनी है तथा तस्वीर में आगे क्या होने वाला है। इस उपभाग को पूर्ण करने की समय 5 मिनट है।

2. अनुमानित कारण– इस उपभाग की समय सीमा भी 5 मिनट है इसमें एक तस्वीर दी गयी है जिसे देखकर एक कहानी लिखनी होती है।

3. उत्पादन उन्नति – इस उपभाग में 6 मिनट में व्यक्ति को दिये गये खिलौने से कुछ ऐसा करने का सुझाव देने को कहा जाता है जिससे वह कुछ अजूबा दिखायी दे।

444. अनुमानित परिणाम– इस उपभाग की समय सीमा 5 मिनट है।

5. असाधारण उपयोग– इसमें व्यक्ति से साधारण वस्तु जैसे टीन आदि के असाधारण उपयोग जो उसके मन में आ सकते हैं लिखने को कहा जाता है। इस उपभाग की समय सीमा 10 मिनट है।

6. असाधारण प्रश्न– इस उपभाग की समयसीमा 5 मिनट है। इसमें व्यक्ति को टीन के बक्से को देखकर जितने प्रश्न आते है उन्हें लिखना है।

7. मान लीजिए– इसमें व्यक्ति के सामने एक असम्भव स्थिति दी जाती है तथा यह पूछा जाता कि इस असम्भव स्थिति के उत्पन्न हो जाने पर क्या होगा।

आकृति भाग में व्यक्ति की सृजनात्मकता के मापन के लिए तीन उपपरीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।

1. आकृति बनाना– इसमें व्यक्ति को एक आकृति को बनाना है तथा उसका शीर्षक भी लिखना है।

2. आकृति पूर्ण करना– इसमें 10 मिनट में दस अपूर्ण चित्रों को पूर्ण करना है साथ ही उसका शीर्षक भी लिखना है।

3. सामान्तर रेखा– इसमें दस सामान्य रेखाओं के युग्म दिये जाते हैं जिसे आधार मानकर उसे पूर्ण करना है अथवा आकृति बनानी है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

15) साइनेक्टिस विधि में प्रयोग की जाने वाली चारो सादृश्यता को सूचीबद्ध कीजिए?

....

....

....

16) टारेन्स द्वारा बनाये गये सृजनात्मक परीक्षण के शाब्दिक एवं आकृतिक उपभागों को लिखिए?

....

....

....

11.6 सारांश

प्रत्येक मनुष्य में कुछ मानसिक क्षमताएं होती है जिसमें बुद्धि, अभिक्षमता तथा सृजनात्मकता प्रमुख हैं। बुद्धि कई तरह की क्षमताओं का योग है जिसके द्वारा व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रियाएं करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ समायोजन करता है। बुद्धि मुख्य रूप से सामाजिक अमूर्त एवं मूर्त होती है। बुद्धि की अभिव्यक्ति बुद्धिलब्धि के रूप में होती है। बुद्धि मापन के लिए विभिन्न परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है जिसमें बिने साइमन परीक्षण, वेसलर बुद्धिपरीक्षण, रैवेन प्रोगोसिव परीक्षण, कैटेल संस्कृति मुक्त परीक्षण प्रमुख है। बुद्धि की व्याख्या कारक सिद्धान्त तथा प्रक्रिया उन्मुखी के रूप में की जाती है। वंशानुक्रम एवं वातावरण व्यक्ति को मुख्य रूप से बुद्धि के निर्धारण में सहायक होते है।

अभिक्षमता का तात्पर्य व्यक्ति की उस आन्तरिक क्षमता से होता है जो यह बताता है कि व्यक्ति किसी विशेष क्षेत्र में कितना सफल होगा। इसके लिए सामान्य अभिक्षमता परीक्षण तथा विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। अलग–अलग क्षेत्रों के लिए अलग–अलग प्रकार के अभिक्षमता परीक्षण बनाये गए है।

सृजनात्मकता का तात्पर्य है हटकर सोचना या करना। सृजनात्मकता के कई पहलू होते है जैसे धारा प्रवाहिता, लचीलापन, मौलिकता तथा विस्तारण। सृजनात्मकता को मापने के लिए मुख्य रूप से गिलफोर्ड प्रविधि तथा टारेन्स विधि ा का प्रयोग होता है।

वर्तमान समय में इन मानसिक योग्यताओं का पता लगाकर व्यक्ति को उचित परामर्श के द्वारा सफल बनाया जा सकता है। सृजनात्मकता को कई कारक प्रभावित करते है। शिक्षक उचित विधियों का प्रयोग कर छात्रों में सृजनशक्ति को विकसित कर सकता है।

11.7 अभ्यास कार्य

अपने विद्यालय में आप किसी कक्षा का चयन कीजिए, उसमे किसी एक बुद्धि परीक्षण का उपयोग कर छात्रों को बुद्धिलब्धि के आधार पर तीन वर्गो में बाँटिये– सामान्य बुद्धि, सामान्य से कम तथा सामान्य से अधिक। इन तीन वर्गो के छात्रों की सृजनात्मकता का पता लगाइये तथा इस निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास कीजिए कि बुि तथा सृजनात्मकता में सम्बन्ध होता है अथवा नही। उन सभी क्रियाओं की सूची बनाइये जो सृजनात्मकता को विकसित करने में सहायक होती है।

कक्षा 12 के छात्रों पर अभिक्षमता परीक्षण का प्रयोग कर छात्रों को उचित परामर्श एवं निर्देशन दे।

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. बुद्धि एक समुच्चय या सार्वजनिक क्षमता है जिसके सहारे व्यक्ति उद्देश्यपूर्ण क्रिया करता है, विवेकशील चिन्तन करता है तथा वातावरण के साथ प्रभावकारी ढंग से समायोजन करता है।

2. थार्नडाइक द्वारा बुद्धि के तीन प्रकार बताये गये है

   1) सामाजिक बुद्धि

   2) अमूर्त बुद्धि

   3) मूर्त बुद्धि

3. बुद्धि लब्धि = मानसिक आयु / शारीरिक आयु × 100

4. बुद्धि के निर्धारक तत्व को पढ़कर विभिन्न प्रकार के दिए गए अध्ययनों के आधार पर उत्तर लिखे।

5. गिलफोर्ड ने बुद्धि के सभी तत्वों को तीन विमाओं पर आधारित माना।

   1) सक्रिया

   2) विषय वस्तु

   3) उत्पादन

6. 1904 में स्पीयर मैन ने बुद्धि के दो कारक– सामान्य कारक तथा विशिष्ट कारक बताये है।

7. स्टर्नवर्ग ने तीन उपसिद्धान्तों के आधार पर बुद्धि के त्रितन्त्र सिद्धान्त बताया। यह तीन उपसिद्धान्त निम्नलिखित है।

1) सदर्भात्मक उपसिद्धान्त

2) अनुभवजन्य उपसिद्धान्त

3) घटक उपसिद्धान्त

8. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण

9. शाब्दिक बुद्धि परीक्षण – बिने साइमन बुद्धि परीक्षण

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण – रेमेन्स प्रोगेसिव परीक्षण

क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण – एलेक्जेण्डर पास अलॉग परीक्षण

10. अभिक्षमता का तात्पर्य गुणों तथा विशेषताओं के ऐसे संयोग से होता है जिससे विशिष्ट ज्ञान तथा संगठित अनुक्रियाओं के कौशल जैसे किसी भाषा को बोलने की क्षमता, यान्त्रिक कार्य करने की क्षमता का पता लगाया जाता है।

11. 1. बहुअभिक्षमता परीक्षण माला

क) विभेदी अभिक्षमता परीक्षण

ख) सामान्य अभिक्षमता परीक्षण

ग) फ्लैनेगन अभिक्षमता वर्गीकरण परीक्षण

2. विशिष्ट अभिक्षमता परीक्षण

क) लिपकीय अभिक्षमता परीक्षण

ख) यान्त्रिकी अभिक्षमता परीक्षण

ग) संगीतिय अभिक्षमता परीक्षण

घ) कलात्मक अभिक्षमता परीक्षण

12. अपसरण चिन्तन में व्यक्ति भिन्न–भिन्न दशाओं में चिन्तन कर किसी भी समस्या के संभावित उत्तरों को सोचता है तथा अपनी ओर से कुछ नयी चीजों को जोड़ने का प्रयास करता है। इसमें व्यक्ति किसी निश्चित उत्तर पर नही पहुंचता है। इस प्रकार के चिन्तन को सृजनत्मक चिन्तन कहा जाता है।

13. आयोजन

उदभवन

प्रबोधन

प्रमाणीकरण

14. जागरूकता, स्वतंत्रता, स्वग्रही, मौलिकता, धैर्य तथा आत्मविश्वास

15. व्यक्तिगत सादृश्यता, प्रत्यक्ष सादृश्यता, सांकेतिक सादृश्यता, कल्पनाचित्र सादृश्यता

16. शाब्दिक परीक्षण के सात उपभाग है तथा आकृति परीक्षण के तीन उपभाग हैं।

शाब्दिक परीक्षण	आकृतिक परीक्षण
1. पूछना तथा अनुमान करना	आकृति बनाना
2. कारण का आंकलन करना	आकृति पूर्ण करना
3. उत्पादन उन्नति	समानान्तर रेखाएं
4. असाधारण उपयोग	
5. असाधारण प्रश्न	
6. अनुमानित परिणाम	
7. मान लीजिए	

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Skinner, C.E. (1951) Educational Psychology, Prentice Hall, New Delhi.

सिंह, अरूण कुमार, (2007) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।

Freeman, F.S. (1965) Theory and Practice of Psychological Testing, Third edition, Oxford & IBH Publishing Co., New Delhi.

इकाई 12 व्यक्तित्व

संरचना

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 व्यक्तित्व का अर्थ

12.3 व्यक्तित्व के उपागम

12.4.1 प्रकार उपागम

12.4.1.1 शारीरिक गुणों के आधार

12.4.1.2 मनोवेश्लेषिक सिद्धान्त के आधार

12.4.2 शीलगुण उपागम

12.4.3 मनोवेश्लेषिक सिद्धान्त

12.4.4 कार्ल रोजर्स – व्यक्तित्व का सांवृत्तिक सिद्धांत

12.4.5 एब्राह्म मैसलो – व्यक्तित्व का सांवृत्तिक सिद्धांत

12.5 व्यक्तिव आंलन

12.5.1 व्यक्तिगत प्रविधि

12.5.2 वस्तुनिष्ठ प्रविधि

12.5.3 प्रक्षेपण प्रविधि

12.6 सारांश

12.7 अभ्यास कार्य

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

व्यक्तित्व जटिल होता है और प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व दूसरे व्यक्तित्व से भिन्न होता है। व्यक्तित्व की जटिलता व भिन्नता ही इसके अध्ययन को प्रेरित करती है। हर प्राणी दूसरे से भिन्न होता है। यह भिन्नता मात्र शारीरिक गुणों या बाह्य0 आधार पर ही प्रकट नही होती है। इसीलिए कोई भी दो व्यक्तित्व समान नहीं होते है।

इस इकाई में इसी बात को ध्यान में रखकर व्यक्तित्व की विशद विवेचना की गयी है। इस इकाई का अध्ययन करके व्यक्तित्व के बहुआयामीय पक्षों को आप जान सकेंगे।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप इस योग्य हो जायेंगे कि

1. व्यक्तित्व की संकल्पना समझ कर विवेचित कर सकेंगे।
2. व्यक्तित्व की पुरानी व नवीन संकल्पना जान सकेंगे।
3. व्यक्तित्व की व्याख्या करने वाले विभिन्न सिद्धान्तो का अध्ययन कर सकेंगे।
4. व्यक्तित्व के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलनात्मक विवेचना कर सकेगे।
5. व्यक्तित्व अध्ययन करने वाली विभिन्न विधियों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
6. व्यक्तित्व मूल्यांकन विधियों की सापेक्षिक महत्ता समझ कसेंगे।

12.3 व्यक्तित्व का अर्थ –

मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व की विभिन्न परिभाषाएं दी गई है।

परिभाषाओं के क्रम में सबसे पुरानी परिभाषा व्यक्तित्व शब्द की उत्पत्ति से सम्बन्धित संप्रत्यय पर आधारित है। व्यक्तित्व का अंग्रजी अनुवाद 'Personality' है जो लैटिन शब्द Persona से बना है तथा जिसका अर्थ मुखौटा होता है, जिसे नाटक करते समय कलाकारों द्वारा पहना जाता था। इस शाब्दिक अर्थ को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व को बारही वेशभूषा और और दिखावे के आधार पर परिभाषित किया गया है। इसे मनोवैज्ञानिकों द्वारा अवैज्ञानिक घोषित किया गया और तदन्तर अनेक परिभाषाएँ दी गई है। परन्तु ऑलपोर्ट द्वारा दी गई परिभाषा को सर्वाधिक मान्यता प्रात्त है।

ऑलपोर्ट (1937) के अनुसार, "व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तन्त्रो का गतिशील या गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते है।'

ऑलपोर्ट की इस परिभाषा मे व्यक्तित्व के भीतरी गुणों तथा बाहरी गुणो को यानी व्यवहार को सम्मिलित किया गया है। परन्तु ऑलपोर्ट ने भीतरी गुणों पर अधिक बल दिया है।

व्यक्तित्व को निम्नलिखित रूप में विश्लेषित किया जा सकता है –

(क) मनोशारीरिक तन्त्र – व्यक्तित्व एक ऐसा तन्त्र है जिसके मानसिक तथा शारीरिक दोनो ही पक्ष होते है। यह तन्त्र ऐसे तत्वो का एक गठन होता है जो आपस में अन्तः क्रिया करते है। इस तन्त्र के मुख्य तत्व शीलगुण, संवेग, आदत, ज्ञानशक्ति, चित्तप्रकृति, चरित्र, अभिप्रेरक आदि हैं जो सभी मानसिक गुण हैं परन्तु इन सब का आधार शारीरिक अर्थात व्यक्ति के ग्रन्थीय प्रक्रियाएँ एवं तंत्रिकीय प्रक्रियाएँ है।

(ख) गत्यात्मक संगठन– गत्यात्मक संगठन से तात्पर्य यह होता है कि मनोशारीरिक तन्त्र के भिन्न–भिन्न तत्व जैसे शीलगुण, आदत आदि एक–दूसरे से इस तरह संबंधित होकर संगठित है कि उन्हें एक–दूसरे से पूर्णतः अलग नहीं किया जा सकता है। इस संगठन में परिवर्तन सम्भव है।

(ग) संगतता– व्यक्तित्व में व्यक्ति का व्यवहार एक समय से दूसरे समय में संगत होता है। संगतता का तात्पर्य यह है कि व्यक्ति का व्यवहार दो भिन्न अवसरों पर भी लगभग एक समान होता है। व्यक्ति के व्यवहार में इसी संगतता के आधार पर उसमें अमुक शीलगुण होने का अनुमान लगाया जाता है।

(घ) वातावरण में अपूर्व समायोजन का निर्धारण– प्रत्येक व्यक्ति में मनोशारीरिक गुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन पाया जाता है कि उसका व्यवहार वातावरण में अपने–अपने ढंग का अपूर्व होता है। वातावरण समान होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार, विचार, होने वाला संवेग आदि अपूर्व होता है। जिसके कारण उस वातावरण के साथ समायोजन करने का ढंग भी प्रत्येक व्यक्ति में अलग–अलग होता है।

अर्थात् यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व में भिन्न–भिन्न शीलगुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का अर्थात् अपूर्व होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

(ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

1. प्राचीन समय में व्यक्तित्व को किस रूप में बताया गया था ?

....

....

....

2. व्यक्तित्व की उपयुक्त परिभाषा कौन सी है और क्यों ?

....

....

....

12.4 व्यक्तित्व के उपागम

व्यक्तित्व के स्वरूप की व्याख्या करने के लिए विभिन्न तरह के उपागमों के अन्तर्गत विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है, जिनमें प्रमुख निम्नवत् है –

व्यक्तित्व उपागम

- प्रकार सिद्धान्त
- शीलगुण सिद्धान्त
- मनोवैश्लेषिक सिद्धान्त
- मानवतावादी / संवृत्तिशास्त्र सिद्धान्त

12.4.1 प्रकार उपागम –

प्रकार सिद्धान्त व्यक्तित्व का सबसे पुराना सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति को विभिन्न प्रकारों में बांटा जाता है और उसके आधार पर उसके शीलगुणों का वर्णन किया जाता है।

मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कोपलर के अनुसार व्यक्तित्व के प्रकार से तात्पर्य, "व्यक्तियों के एक ऐसे वर्ग से होता है जिनके गुण एक–दूसरे से मिलते जुलते है। जैसे–अन्तर्मुखी एक प्रकार है और जिन व्यक्तियों को इसमें रखा जाता है उनमें कुछ सामान्य गुण जैसे–संकोचशीलता, सामाजिक कार्यो में अरूचि, लोगो से कम मिलना–जुलना पाया जाता है।"

शारीरिक गुणों के आधार पर –

(I) हिप्पोक्रेटस ने शरीर द्रवों के आधार पर – व्यक्तित्व के चार प्रकार बताएं है। इनके अनुसार शरीर में चार मुख्य द्रव पाये जाते है – पीला पित्त, काला पित्त, रक्त तथा कफ या श्लेष्मा। प्रत्येक व्यक्ति मे इन चारों द्रवो में से

कोई एक द्रव अधिक प्रधान होता है और व्यक्ति का स्वभाव या चिन्तप्रकृति इसी की प्रधानता से निर्धारित होता है।

(II) क्रेश्मर का वर्गीकरण – क्रेश्मर एक मनोवैज्ञानिक थे, जिन्होंने व्यक्तित्व के चार प्रकार बताए जोकि निम्नवत् है –

(1) स्थूल काय प्रकार – ऐसे व्यक्ति का कद छोटा होता है तथा शरीर भारी एवं गोलाकार होता है, गर्दन छोटी और मोटी होती है। इनका स्वभाव सामाजिक और खुशमिजाज होता है।

(2) कृशकाय प्रकार – इस तरह के व्यक्ति का कद लम्बा होता है परन्तु वे दुबले पतले शरीर के होते है। ऐसे व्यक्तियों के शरीर की माँसपेशियाँ विकसित नही होती है। स्वभाव चिड़चिड़ा होता है तथा सामाजिक उत्तरदायित्व से दूर रहने की प्रवृति अधिक होती है।

(3) पुष्टकाय प्रकार – ऐसे व्यक्ति की माँसपेशियाँ काफी विकसित एवं गठी होती है। शारीरिक कद न तो अधिक लम्बा होता है न अधिक मोटा। शरीर सुडौल और सन्तुलित होता है। इनके स्वभाव में न अधिक चंचलता होती है और न अधिक मन्दन इन्हें काफी सामाजिक प्रतिष्ठा मिलती है।

(4) विशालकाय प्रकार – इसमें उपरोक्त तीनों प्रकार के गुण मिले – जुले रूप में पाये जाते है।

(III) शेल्डन का वर्गीकरण – शेल्डन ने 1990 में शारीरिक गठन के आधार पर सिद्धान्त दिया, जिसे सोमेटोटाइप सिद्धान्त कहा गया। शेल्डन ने व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये है–

i) **एण्डोमार्फी** – इस प्रकार के व्यक्ति मोटे एवं नाटे दिखता है। इस तहर के शारीरिक गठन वाले व्यक्ति आरामपसंद, खुशमिजाज, सामाजिक तथा खाने – पीने की चीजों में अधिक अभिरूचि दिखाने वोले होते है।

ii) **मेसोमार्फी** – ऐसे लोगों की हड्डियाँ व माँसपेशियाँ काफी विकसित होती है। तथा शारीरिक गठन काफी सुडौल होता है।

iii) **एक्टोमार्फी** – ऐसे व्यक्तियों का कद लम्बा तथा दुबले पतले होते हैं। माँसपेशियाँ अविकसित तथा शारीरिक गठन इकहरा होता है। इन्हें अकेले रहना और लोगों से कम मिलना जुलना पसन्द है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

(ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

3. व्यक्तित्व का प्रकार सिद्धान्त क्या है ?

....

....

....

4. क्रेश्मर ने प्रकार के आधार पर व्यक्तित्व को कितने भागों में बाँटा है ?

....

....

....

5. शेल्डन द्वारा व्यक्तित्व को कितने प्रकार में बाँटा गया है ?

....

....

....

मनोवैज्ञानिक गुणों के आधार पर

IV) युंग (1923) ने व्यक्तित्व के दो प्रकार बताये–

i) बर्हिमुखी – इस तरह के व्यक्ति की अभिरूचि विशेषकर समाज के कार्यो की ओर होती है। वह अन्य लोगों से मिलना जुलना पसन्द करता है तथा प्रायः खुशमिजाज होता है।

ii) अन्तर्मुखी – ऐसे व्यक्ति में बहिर्मुखी के विपरीत गुण पाये जाते है। इस तरह के व्यक्ति बहुत लोगों से मिलना जुलना पसंद नही करते है और उनकी दोस्ती कुछ ही लोगों तक सीमित होती है। इसमें आत्मकेन्द्रिता का गुण अधिक पाया जाता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार अधिकतर मनुष्यों मे दोनों श्रेणियों के गुण पाये जाते हैं अर्थात एक परिस्थिति में वे बहिर्मुखी व्यवहार करते है और अन्य में अन्तर्मुखी। ऐसे व्यक्तियों को उभयमुखी कहा जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

(ख) उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

6. अन्तर्मखी व बर्हिमुखी व्यक्तित्व में क्या अन्तर होता है ?

....

....

....

12.4.2 शीलगुण उपागम –

शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति की संरचना भिन्न – भिन्न प्रकार के शीलगुण से ठीक वैसी बनी होती है जैसे एक मकान की संरचना छोटी – छोटी ईट से बनी होती है। शीलगुण का समान्य अर्थ होता है व्यक्ति के व्यवहारों का वर्णन। जैसे– सतर्क, सक्रिय और मंदित आदि।

शीलगुण सिद्धान्त के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार भिन्न–भिन्न शीलगुणों द्वारा नियन्त्रित होता है जो प्रत्येक व्यक्ति में मौजूद रहते है। शीलगुण सिद्धान्त में निम्नलिखित मनोवैज्ञानिकों का महत्वपूर्ण योगदान है–

1) आलपोर्ट का योगदान – ऑलपोर्ट का नाम शीलगुण सिद्धान्त के साथ मुख्य रूप से जुड़ा है। यही कारण है कि ऑलपोर्ट द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्त को 'ऑलपोर्ट का शीलगुण सिद्धान्त' कहा जाता है। इन्होने शीलगुणों को दो भागो में बाँटा है –

i) सामान्य शीलगुण – सामान्य शीलगुण से तात्पर्य वैसे शीलगुणों से होता है जो किसी समाज संस्कृति के अधिकतर लोगों में पाया जाता है।

ii) व्यक्तिगत शीलगुण – यह अधिक विवरणात्मक होता है तथा इससे संभ्रान्ति भी कम होता है। ऑलपोर्ट के अनुसार व्यक्तिगत प्रवृत्ति तीन प्रकार की होती है–

(क) कार्डिनल प्रवृत्ति – इस तरह की व्यक्तिगत प्रवृत्ति व्यक्तित्व का इतना प्रमुख एवं प्रबल गुण होता है कि उसे छिपाया नहीं जा सकता है और व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या इस तरह से कार्डिनल प्रवृत्ति के रूप में आसानी से की जा सकती है।

(ख) केन्द्रीय प्रवृत्ति-- यह सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में 5 से 10 ऐसी प्रवृत्तियां होती हैं जिसके भीतर उसका व्यक्तित्व अधिक सक्रिय रहता है। इन गुणों को केन्द्रीय प्रवृत्ति कहते हैं जैसे सामाजिकता, आत्मविश्वास आदि।

(ग) गौण प्रवृत्ति– गौण प्रवृति वैसे गुणों को कहते हैं जो व्यक्तित्व के लिए कम महत्वपूर्ण, कम संगत, कम अर्थपूर्ण तथा कम स्पष्ट होते है। जैसे -- खाने की आदत, केश शैली आदि।

एक व्यक्ति के लिए कोई प्रवृत्ति केन्द्रीय प्रवृत्ति हो सकती है वहीं दूसरे के लिए गौण प्रवृत्ति हो सकती है।

(2) कैटल का योगदान – शीलगुण सिद्धान्त में ऑलपोर्ट के बाद कैटल का नाम महत्वपूर्ण माना गया है। कैटल ने प्रमुख शीलगुणों की शुरूआत ऑलपोर्ट द्वारा बतलाये गए 18,000 शीलगुणों में से 4,500 शीलगुणों को चुनकार किया। बाद में, इनमें से समानार्थ शब्दों को एक साथ मिलाकर इसकी संख्या उन्होने 200 कर दी और फिर बाद में विशेष सांख्यिकीय विधि यानी कारक विश्लेषण के सहारे अन्तर सहसंबंध द्वारा उसकी संख्या 35 कर दी कैटल ने शीलगुणो को दो भागों में विभाजित किया है।

i) **सतही शीलगुण** – इस तरह का शीलगुण व्यक्तित्व के ऊपरी सतह या परिधि पर होता है यानी इस तरह के शीलगुण ऐसे होते है जो व्यक्ति के दिन -- प्रतिदिन की अन्तः क्रिया में आसानी से अभिव्यक्त हो जाते है।

ii) **स्रोत या मूल शीलगुण** – कैटेल के अनुसार मूल शीलगुण व्यक्तित्व की अधिक महत्पूर्ण संरचना है तथा इसकी संख्या सतहा शीलगुण की अपेक्षा कम होती है। मूल शीलगुण सतही शीलगुण के समान, व्यक्ति के दिन प्रतिदिन की अन्तः क्रिया में स्पष्ट रूप से व्यक्त नही हो पाते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

(ख) उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

7. सामान्य शीलगुण व व्यक्तिगत शीलगुणों में क्या अन्तर होता है ?

....

....

....

8. कैटल ने शीलगुणों को प्रमुख रूप से कितने भागों में बाँटा है ?

....

....

....

12.4.3 मनोवैश्लेषिक सिद्धान्त –

सिगमण्ड फ्रायड (1856 – 1939) ने करीब – करीब 40 साल के अपने नैदानिक अनुभवों के बाद व्यक्तित्व के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, उसे व्यक्तित्व का मनोवैश्लेषिक सिद्धान्त कहा जाता है।

मनोवैश्लेषिक सिद्धान्त मानव प्रकृति या स्वभाव के बारे में कुछ मूल पूर्वकल्पनाओं पर आधारित है। इनमे से निम्नांकित प्रमुख है–

(क) मानव व्यवहार वाह्यय कारकों द्वारा निर्धारित होता है तथा ऐसे व्यवहार अविवेकपूर्ण, अपरिवर्तनशील, समस्थितिक है।

(ख) मानव प्रकृति पूर्णता, शरीरगठनी तथा अप्रलक्षता जैसी पूर्व कल्पनाओं से हल्के – फुल्के ढंग से प्रभावित होती है।

(ग) मानव प्रकृति आत्मनिष्ठ की पूर्वकल्पना से बहुत कम प्रभावित होती है।

इन पूर्व कल्पनाओं पर आधारित मनोवैश्लेषिक सिद्धान्त की व्याख्या निम्नलिखित तीन मुख्य भागों मे बॉट कर की जाती है–

(क) व्यक्तित्व की संरचना

(ख) व्यक्तित्व की गतिकी

(क) व्यक्तित्व की विकास

(क) व्यक्तित्व की संरचना – फ्रायड ने व्यक्तित्व की संरचना का वर्णन करने के लिए निम्नलिखित दो मॉडल का निर्माण किया है –

आकारात्मक मॉडल

गत्यात्यक मॉडल या संरचनात्मक मॉडल

आकारत्मक मॉडल– मन का आकारात्मक मॉडल से तात्पर्य वैसे पहलू से होता है जहाँ संघर्षमय परिस्थिति की गत्यात्मकता उत्पन्न होती है। मन का यह पहलू सचमुच में व्यक्तित्व के गत्यात्मक शक्तियों के बीच होने वाले संघर्षो का एक कार्यस्थल होता है। फ्रायड ने इसे तीन स्तरों में बॉटा है– चेतन, अर्द्धचेतन तथा

अचेतन।

i) **चेतन** – चेतन से तात्पर्य मन के वैसे भाग से होता है जिसमे वे सभी अनूभूतियाँ एवं सेवेदनाएँ होती है जिनका संबंध वर्तमान से होता है।

ii) **अर्द्धचेतन** – इसमें वैसी इच्छाएँ, विचार, भाव आदि होते है जो हमारे वर्तमान चेतन या अनुभव में नही होते है परन्तु प्रयास करने पर वे हमारे चेतन मन में आ जाते है।

iii) **अचेतन** – हमारे कुछ अनुभव इस प्रकार के होते है जो न तो हमारी चेतन मे होते हैं और न ही अर्द्धचेतन में । ऐसे अनुभव अचेतन में होते है।

फ्रायड के अनुसार पर अचेतन अनुभूतियों एवं विचारों का प्रभाव हमारे व्यवहार पर चेतन एवं अर्द्धचेतन की अनुभूतियों एवं विचारों से अधिक होता है।

गत्यात्मक या संरचनात्म क मॉडल– फ्राय৬ के अनुसार मन के गत्यात्मक मॉडल से तात्पर्य उन साधनों से होता है जिनके द्वारा मूल प्रवृत्तियों से उत्पन्न मानसिक संघर्षो का समाधान होता है। ऐसे साधन या प्रतिनिधि तीन है –

उपाहं (id), अहं (ego), तथा पराहं (Super ego),

i) **उपाहं (id)** – यह व्यक्तित्व का जैविक तत्व है जिनमें उन प्रवृत्तियों की भमार होती है जो जन्मजात होती है तथा जो असंगठित, कामुक, आक्रमकतापूर्ण तथा नियम आदि को मानने वाली नही होती है। उपाहं की प्रवृत्तियाँ "आनन्द सिद्धान्त" द्वारा निर्धारित होती है।

ii) **अहं** – मन के गत्यात्मक पहलू का दूसरा प्रमुख भाग अहं है। अहं मन का वह हिस्सा है जिसका संबंध वास्तविकता से होता है।

iii) **पराहं** – पराहं को अहं से ऊँचा भी कहा गया है। जैसे –जैसे बच्चा बड़ा होते जाता है वह अपना तादात्म्य माता – पिता के साथ स्थापित करते जाता है। जिसके परिणामस्वारूप वह यह सीख लेता है कि क्या अनुचित है तथा क्या उचित है। इस तरह के सीखने से पराहं के विकास की शुरूआत होती है।

(ख) व्यक्तित्व की गतिकी –

फ्रायड के अनुसार मानव जीव एक जटिल तन्त्र है जिसमें शारीरिक ऊर्जा तथा मानसिक उर्जा दोनों ही होते है। फ्रायड के अनुसार इन दोनों तरह की ऊर्जाओं का स्पर्श बिन्दु उपाहं होता है। फ्रायड व्यक्तित्व की गत्यात्मक पहलुओं

जैसे – मूलप्रवृत्तियों, चिन्ता तथा मनोरचनाओं का वर्णन होता है।

i) **मूल प्रवृत्ति** – मूल प्रवृत्ति का तात्पर्य वैसे शारीरिक उत्तेजनाओं से होता है, जिसके द्वारा व्यक्ति के सभी तरह के व्यवहार निर्धारित किये जाते है। फ्रायड ने मूल प्रवृत्तियों को मूल्तः दो भागो में बाँटा –

– जीवन मूल प्रवृत्ति

– मृत्यू मूल प्रवृत्ति

अपने विशेष अहमियत के कारण फ्रायड ने जीवन मूल प्रवृत्ति से मौन मूलप्रवृत्ति को अलग करके वर्णन किया है। मौन मूल प्रवृत्ति के ऊर्जा बल को लिबिडो कहा गया है जिसकी अभिव्यक्ति सिर्फ लैगिक क्रियाओं के रूप में होती है।

2) चिन्ता – चिन्ता एक ऐसी भावात्मक एवं दुःखद अवस्था होती है जो अहं को आलम्बित खतरे से सतर्क करता है ताकि व्यक्ति वातावरण के साथ अनुकूली ढंग से व्यवहार कर सके। फ्रायड ने चिन्ता के तीन प्रकार बतलायें है।

3) अहं रक्षात्मक प्रक्रम – अहं रक्षात्मक प्रक्रम के विचार का प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड ने किया परन्तु इसकी सूची उनकी पुत्री अन्ना फ्रायड तथा अन्य नव फ्रायडियन मनोवैज्ञानिकों ने तैयार की यह प्रक्रम अहं को चिन्ताओं से बचा पाता है। रक्षात्मक प्रक्रमों का प्रयोग सभी व्यक्ति करते है परन्तु इसका प्रयोग अधिक करने पर व्यक्ति के व्यवहार में बाहयता एवं स्नायुविकृति का गुण विकसित होता है।

(ग) **व्यक्तित्व का विकास** – फ्रायड ने व्यक्तित्व विकास की व्याख्या दो दृष्टिकोण से किया है। पहला दृष्टिकोण इस बात पर बल डालता है कि वयस्क व्यक्तित्व बाल्यवस्था के भिन्न–भिन्न तरह की अनुभूतियों द्वारा नियंत्रित होती है तथा दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार जन्म के समय लैंगिग ऊर्जा बच्चों में मौजूद होती है जो विभिन्न मनोलैगिंग अवस्थाओं से होकर विकसित होती है। फ्रायड के इस दूसरे दृष्टिकोण को मनोलैंगिक विकास का सिद्धान्त कहा जाता है।

फ्रायड द्वारा प्रतिपादित मनोलैंगिक विकास के सिद्धान्त की पाँच अवस्थाएँ क्रम में निम्नांकित है –

1) मुखावस्था

2) गुदावस्था

3) लिंग प्रधानावस्था

4) अव्यक्तावस्था

5) जननेन्द्रियावस्था

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

9) फ्रायड ने अचेतन अनुभूतियों को क्यों महत्वपूर्ण माना है?

....

....

....

10) फ्रायड ने व्यक्तित्व के गत्यात्मक माडल को किस रूप में बताया?

....

....

....

12.4.4 कार्ल रोजर्स– व्यक्तित्व का सांवृत्तिक सिद्धान्त

कार्ल रोजर्स का सिद्धान्त घटना विज्ञान या संवृत्तिशास्त्र के नियमों पर आधारित है। संवृत्तिशास्त्र वह शास्त्र होता है जिसमें व्यक्ति की अनुभूतियों, भावों एवं मनोवृत्तियों तथा उनके अपने बारे में या आत्मन् के बारे में तथा दूसरों के बारे में व्यक्तिगत विचारों का अध्ययन विशेष रूप से किया जाता है। रोजर्स के सिद्धान्त को मानवतावादी आन्दोलन के अन्तर्गत एक पूर्णतः सांवृत्तिक सिद्धान्त माना गया है। रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त को आत्म सिद्धान्त या व्यक्ति केन्द्रित सिद्धान्त भी कहलाता है।

रोजर्स के व्यक्तित्व सिद्धान्त को निम्नांकित भागों में बांटा जा सकता है–

क) व्यक्तित्व के स्थायी पहलू

ख) व्यक्तित्व की गतिकी

ग) व्यक्तित्व का विकास

(क) **व्यक्तित्व के स्थायी पहलू–** रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त उनके द्वारा प्रतिपादित क्लायंट केन्द्रित मनोचिकित्सा से प्राप्त अनुभूतियों पर आधारित है। उनके सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति में होने वाले परिवर्तनों एवं वर्धनों का अध्ययन करना है। इन्होंने व्यक्तित्व के दो महत्वपूर्ण पहलुओं पर बल डाला है–

1) **प्राणी** – रोजर्स के अनुसार प्राणी एक ऐसा दैहिक जीव है जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही तरह से कार्य करता है। प्राणी सभी तरह की अनुभूतियों का केन्द्र होता है। इन अनुभूतियों में अपने दैहिक गतिविधियों से संबंधित अनुभूतियां तथा साथ ही साथ बाह्य वातावरण की घटनाओं के प्रत्यक्षण की अनुभूतियां दोनों ही सम्मिलित होती है। सभी तरह की चेतन और अचेतन अनुभूतियों के योग से जिस क्षेत्र का निर्माण होता है, उसे प्रासंगिक क्षेत्र कहते हैं।

2) **आत्मन** – रोजर्स का व्यक्तित्व सिद्धान्त का यह सबसे महत्वपूर्ण संप्रत्यय है। धीरे–धीरे अनुभव के आधार पर प्रासंगिक क्षेत्र का एक भाग अधिक विशिष्ट हो जाता है और इसे ही रोजर्स ने आत्मन कहा है। आत्मन व्यक्तित्व की अलग विमा नही होता है बल्कि आत्मन का अर्थ ही सम्पूर्ण प्राणी से होता है।

(ख) व्यक्तित्व की गतिकी– रोजर्स ने अपने व्यक्तित्व गतिकी की व्याख्या करने के लिए एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरक का वर्णन किया है जिसे उन्होंने वस्तुवादी प्रवृत्ति (actualizing tendency) कहा है। रोजर्स के अनुसार वस्तुवादी प्रवृत्ति से तात्पर्य प्राणी में सभी तरह की क्षमताओं को विकसित करने की जन्मजात प्रवृत्ति से होता है जो व्यक्ति को अपने आत्मन को उन्नत बनाने तथा प्रोत्साहन देने का काम करता है।

(ग) व्यक्तित्व का विकास– रोजर्स ने फ्रायड एवं एरिक्सन की भाँति व्यक्तित्व का कोई अवस्था सिद्धान्त प्रतिपादित नही किया है। उन्होंने व्यक्तित्व के विकास में आत्मन तथा व्यक्तित्व की अनुभूतियों में संगतता को महत्वपूर्ण बताया है। जब इन दोनों में अर्थात व्यक्ति की अनुभूतियों तथा उनके आत्म संप्रव्यय के बीच अन्तर हो जाता है तो इससे व्यक्ति में चिन्ता उत्पन्न होती है। असंगता के अन्तर से उत्पन्न इस चिन्ता की रोकथाम के लिए व्यक्ति कुछ बचाव प्रक्रियाएं प्रारम्भ कर देता है। इसे प्रतिरक्षा की संज्ञा दी गयी है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

11) रोजर्स के सिद्धान्त को व्यक्तिक केन्द्रित सिद्धान्त क्यों कहा जाता है?

....

....

....

12) व्यक्तित्व गतिकी में वस्तुवादी प्रवृति को अभिप्रेरक क्यों माना है?

....

....

....

12.4.5 एब्राहम मैसलो: व्यक्तित्व का मानवतावादी सिद्धान्त –

एब्राहम मैसलो मानवतावादी मनोविज्ञान के आध्यात्मिक जनक माने गए है। मैसलो ने अपने व्यक्तित्व सिद्धान्त में प्राणी के अनूठापन का उसके मूल्यों के महत्व पर तथा व्यक्तिगत वर्धन तथा आत्म निर्देश की क्षमता पर सर्वाधिक बल डाला है। इस बल के कारण ही उनका मानना है कि सम्पूर्ण प्राणी का विकास उसके भीतर से संगठित ढंग से होता है। इन आन्तरिक कारकों की तुलना में बाह्य कारकों जैसे गत अनुभूतियों का महत्व नगण्य होता है।

व्यक्तित्व एवं अभिप्रेरण का पदानुक्रमिक मॉडल– मैसलो के व्यक्तित्व सिद्धान्त का सबसे महत्वपूर्ण पहलू उसका अभिप्रेरण सिद्धान्त है। इनका विश्वास था कि अधिकांश मानव व्यवहार की व्याख्या कोई न कोई व्यक्तिगत लक्ष्म पर पहुंचने की प्रवृत्ति से निर्देशित होता है। मैसलों का मत था कि मानव अभिप्रेरक जन्मजात होते है और उन्हें प्राथमिकता या शक्ति के आरोही पदानुक्रम में सुव्यवस्थित किया जा सकता है। ऐसे अभिप्रेरकों को प्राथमिकता या शक्ति के आरोही क्रम में इस प्रकार बतलाया गया है–

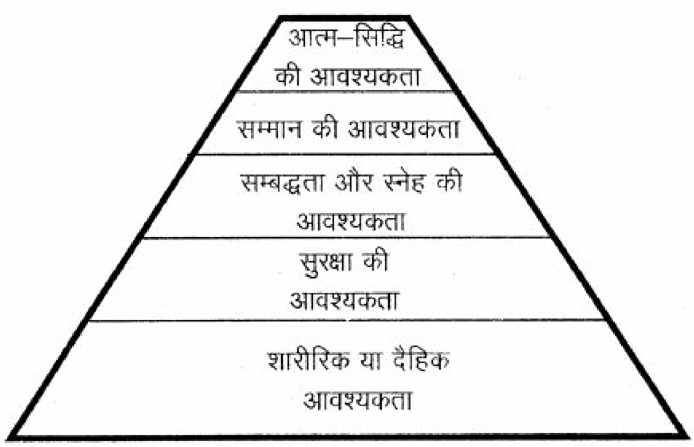

इनमें से प्रथम दो आवश्यकताओं अर्थात शारीरिक या दैहिक आवश्यकता तथा सुरक्षा की आवश्यकता को निचले स्तर की आवश्यकता तथा अन्तिम तीन

आवश्यकताओं अर्थात संबंद्धता एवं स्नेह की आवश्यकता, सम्मान की आवश्यकता तथा आत्म सिद्धि की आवश्यकता को उच्च स्तरीय आवश्यकता कहा है। इस पदानुक्रम मॉडल में जो आवश्यकता जितनी ही नीचे है, उसकी प्राथमिकता या शक्ति उतनी ही अधिक मानी गयी है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

13) मानवतावादी विचारधारा मनोविश्लेषणवादी विचारधारा से क्यों भिन्न है?

....

....

....

14) अब्राहम मैसलों द्वारा बताये गये आवश्यकता पदानुक्रम मॉडल को लिखे।

....

....

....

12.5 व्यक्तित्व आंकलन

व्यक्तित्व आंकलन की प्रमुख तीन प्रविधियां होती है--

व्यक्तित्व आंकलन की प्रविधियाँ

व्यक्तिगत प्रविधि	वस्तुनिष्ठ प्रविधि	प्रक्षेपण प्रविधि
1. प्रश्नावली	1. निरीक्षण विधि	1. थीमेटिक अपरशेपसन परीक्षण
2. साक्षात्कार	2. समाजमिति	2. रोर्शाक इंक ब्लाट परीक्षण
3. आत्मकथा	3. व्यक्तित्व प्रश्नावली	3. वाक्य पूर्ति

11.5.1 व्यक्तिगत प्रविधि –

जब मूल्यांकनकर्ता की व्यक्तिगत विशेषताएं मूल्यांकन प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं तो वे व्यक्तिगत विधि कहलाती है। इसके अन्तर्गत प्रमुखतः साक्षात्कार विधि, जीवन इतिहास विधि आत्मकथा, व प्रश्नावली विधि आती है।

साक्षात्कार विधि– साक्षात्कार विधि की सहायता से शोधकर्ता प्रयोज्य के स्वयं के अनुभवों के बारे में अच्छी सूझ उत्पन्न कर सकता है और इस प्रकार व्यक्ति के उन सार्थक पक्षों के बारे में जान सकता है जिनके बारे में अन्य किसी संगठित व पूर्व निर्धारित परीक्षण द्वारा नही जाना जा सकता है।

जीवन इतिहास विधि– इस विधि में बालकों की समस्याओं का अध्ययन करने के लिये एक केश विवरण या इतिहास तैयार किया जाता है। बालक द्वारा पिछले कई वर्षो में की गयी अन्तः क्रियाओं का एक विशेष रिकार्ड तैयार किया जाता है। इन अन्तःक्रियाओं का विश्लेषण करके बालक के बारे में समस्त जानकारी प्राप्त की जाती है। इसमें बालक के बारे में समस्त सूचनायें संकलित की जाती है।

12.5.2 वस्तुनिष्ठ प्रविधि–

इसमें मूल्यांकनर्ता की व्यक्तिगत विशेषताएं मूल्यांकन की प्रक्रिया को प्रभावित नही करती है। इसके अन्तर्गत आने वाली प्रमुख विधियाँ– निरीक्षण विधि ा, समाजमिति, व्यक्तित्व प्रश्नावली मापनियाँ, कोटिक्रम मापनी, आदि आते हैं।

व्यक्तित्व प्रश्नावली – कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्तित्व को मापने हेतु प्रमापीकृत प्रश्नावलियों का निर्माण किया गया है जिनकी सहायता से लोगों के शीलगुणों के बारे में जाना जा सकता है। उदाहरार्थ– 16 व्यक्तित्व गुण (16 PF) – यह प्रमुख मनोवैज्ञानिक कैटल द्वारा निर्मित है। इसके माध्यम से किसी भी व्यक्ति के 16 शीलगुणों के बारे में बताया जा सकता है। इसका भारत में अनुकरण एस0डी0 श्रीवास्तव ने किया है जिसमें 187 कथन है। प्रत्येक कथन के समक्ष तीन विकल्प हमेशा, कभी–कभी व कभी नही है। इनमें से प्रत्येक कथन के लिए व्यक्ति को एक विकल्प चुनना होता है। इसके पश्चात स्टेन्सिल कुंजी की सहायता से व्यक्ति द्वारा चयनित उत्तरों को अंक प्रदान किए जाते हं। सभी प्रतिक्रियाओं के लिए दिए गये अंकों को जोड़कर प्राप्तांक निकाला जाता है और इस प्रप्तांक के आधार पर स्टेन स्कोर ज्ञात किया जाता है। इस स्टेन स्कोर के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

समाजमिति– इस विधि द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के आपसी स्वीकार व तिरस्कार की बारम्बारता द्वारा सामूहिक संरचना का अध्ययन किया जाता है। यह एक समूह के व्यक्तियों में आपसी सम्बन्धों का अध्ययन करती है। यह समूह में व्यक्ति की

स्थिति व उसके स्तर को बताती है। इसके माध्यम से एक बड़े समूह में व्याप्त छोटे–छोटे समूहों की भी जानकारी मिलती है। इसके माध्यम से निम्न बातों को जाना जा सकता है।

मुख्यतः लिखित बातों की जानकारी दो तरह से प्राप्त की जा सकती है–

- सोशियोंमीट्रिक मेट्रिशस
- सोशियोंग्राम

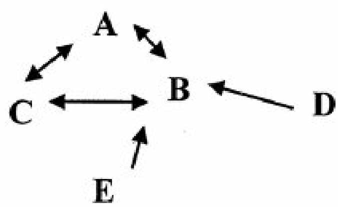

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

15) व्यक्तित्व मापन की प्रमुख प्रविधियों के नाम बताइए।

....

....

....

16) साक्षात्कार विधि की प्रमुख विशेषता बताइए।

....

....

....

17) अन्य व्यक्तित्व प्रश्नावली मापनी का नाम लिखिए।

....

....

....

18) व्यक्तित्व मापन की आत्मनिष्ठ व वस्तुनिष्ठ प्रविधियों में अन्तर बताइए।

....

....

....

12.5.3 प्रक्षेपण प्रविधि –

यह प्रक्षेपण के प्रत्यय पर आधारित है। फ्रायड के अनुसार प्रक्षेपण एक ऐसी अचेतन प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने अपूर्ण विचारों, मनोवृत्तियों, इच्छाओं, संवेगों तथा भावनाओं को दूसरे व्यक्तियों या वस्तुओं पर आरोपित करता है। इसके अन्तर्गत आने वाले प्रमुख परीक्षण इस प्रकार है–

1. रोर्शाक इंक ब्लाट परीक्षण
2. थीमेटिक अपरशैप्सन परीक्षण
3. वाक्यपूर्ति परीक्षण
4. रोजनबिग पिक्चर फ्रस्टेशन परीक्षण
5. ड्रा ए मैन परीक्षण

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिए गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) अपने उत्तरों का मिलान पीछे दिये गये उत्तरों से करें।

19) प्रक्षेपण के प्रत्यय को लिखिए।

....

....

20) प्रक्षेपण प्रविधि में आने वाले किसी एक परीक्षण का विवरण दीजिए।

....

....

....

12.6 सारांश

व्यक्तित्व मनोदैहिक गुणों का एक गत्यात्मक संगठन है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने वातावरण से समायोजन करता है। व्यक्तित्व की व्याख्या मनोवैज्ञानिकों द्वारा अलग–अलग की गयी है। व्यक्तित्व का सबसे पुराना सिद्धान्त प्रकार सिद्धान्त है। जिसमें व्यक्तियों को एक खास प्रकार में बांटकर बताया गया है। कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों जैसे युंग एवं आइजेनक ने व्यक्तित्व के प्रकार सिद्धान्त में कुछ मनोवैज्ञानिक गुणों को प्रधानता दी है। व्यक्तित्व का दूसरा सिद्धान्त

शीलगुण सिद्धान्त है। इसमें व्यक्तित्व की संरचना में शीलगुणों को प्रमुख आधार माना है। आलपोर्ट तथा कैटेल के शीलगुण सिद्धान्त में अपना बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। व्यक्तित्व की व्याख्या करने में सिगमण्ड फ्रायड का मनोवैश्लेषिक सिद्धान्त भी प्रमुख है। फ्रायड ने व्यक्तित्व की व्याख्या करने में अचेतन प्रेस्को पर विशेष बल डाला है।

व्यक्तित्व की व्याख्या मानवतावादी विचारधारा के समर्थक मैसलो व कार्ल रोजर्स द्वारा भी की गयी है। मैसलो का मानना था कि हर व्यक्ति में क्षमता होती है कि वह अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके। इसके लिए उन्होंने आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त दिया। इसी श्रंखला में संवृत्तिशास्त्र विचारधारा के समर्थक रोजर्स ने व्यक्तित्व का व्यक्ति केन्द्रित सिद्धान्त दिया। जिसमें व्यक्ति की अनुभूतियों भावों को प्रमुख माना है।

व्यक्तित्व को मापने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने अनेक प्रकार की प्रविधियों का वर्णन किया है। व्यक्तिगत प्रविधि के अन्तर्गत प्रश्नावली, साक्षात्कार, आत्मकथा प्रमुख है। वस्तुनिष्ठ प्रविधि में निरीक्षण, समाजमिति व व्यक्तित्व प्रश्नावली है। प्रक्षेपण विधि के रूप में रोरर्शा परीक्षण, थीमेटिक अपरशेपसन परीक्षण तथा वाक्यपूर्ति आदि प्रमुख है।

12.7 अभ्यास कार्य

1. आलपोर्ट द्वारा व्यक्तित्व की जो परिभाषा दी गयी है उसका विवेचना करें।
2. व्यक्तित्व के प्रकार व शीलगुण सिद्धान्त के बीच अन्तर स्पष्ट करें।
3. रक्षा युक्तियों से क्या तात्पर्य है?
4. व्यक्तित्व के मनोवैश्लेषिक सिद्धान्त की विवेचना करें।
5. मैसलो द्वारा प्रतिपादित मानवतावादी सिद्धान्त की विवेचना करते हुए लिखिए कि किस प्रकार इस सिद्धान्त ने प्राणी के अनूठेपन पर विशेष बल दिया।
6. व्यक्तित्व आंकलन से क्या समझते है? एक बालक जो कक्षा से प्रायः भाग जाता है उसके व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए कौन सी विधि उपयुक्त होगी?

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. व्यक्तित्व परसोना से बना है। जिसका तात्पर्य कलाकारों के द्वारा पहना जाने वाला मुखौटा था। व्यक्तित्व को पहले बाहरी वेशभूषा और दिखावे के रूप में प्रकट बाह्य भाग के रूप में बताया जाता था।

2. व्यक्तित्व की उपयुक्त परिभाषा आलपोर्ट की है इसमें व्यक्तित्व से सम्बन्धित समस्त पक्षों की सम्मिलित किया गया है।

3. प्रकार सिद्धान्त में व्यक्तित्व को कुछ खास श्रेणियों या प्रकार में बांटता है। इन विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व के लोगों में अलग–अलग विशेषतायें पायी जाती है।

4. स्थूलकाय प्रकार

   कृशकाय प्रकार

   पुष्टकाय प्रकार

   विशालकाय प्रकार

5. एण्डोमार्फी

   मेसोमार्फी

   एक्टोमार्फी

6. युंग द्वारा दिये गये व्यक्तित्व वर्गीकरण को पढ़े। दोनो में दिये गये गुणों के आधार अन्तर लिखे।

7. सामान्य शीलगुण एक समाज या संस्कृति के ज्यादातर लोगों में पाया जाता है। व्यक्तिगत शीलगुण समाज के ही कुछ लोगों में पाया जाना वाला गुण है। सामान्य शीलगुण के आधार पर अलग–अलग लोगों के बीच तुलना संभव है। जबकि व्यक्तिगत शीलगुण के साथ ऐसा संभव नही।

8. सतही शीलगुण

   स्रोत मूल शीलगुण

9. अचेतन अनुभूतियां, अचेतन स्तर पर होते हुये भी व्यक्तित्व विकास को प्रभावित करती है। यह अनुभूतियां चेतन पर आने का प्रयास करती है

और व्यवहार को प्रभावित करती है।

10. उपाहं, अहं तथा पराहं। यह तीनों मानव व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

11. रोजर्स के सिद्धान्त का मूल उनके द्वारा प्रतिपादित क्लांयट केन्द्रित मनोचिकित्सा विधि उनके अनुसार प्राणी सभी तरह की अनुभूतियों का केन्द्र होता है। व्यक्ति की अनुभूतियो, भावों आदि पर विशेष बल दिया गया।

12. वस्तुवादी प्रवृत्ति व्यक्ति की ऐसी जन्मजात प्रवृत्ति को इंगित करती है जो व्यक्ति के स्व को उन्नत बनाने तथा आगे बढ़ने के लिये प्रोत्साहन का कार्य करती है।

13. व्यक्तित्व संरचना व गत्यात्मक माडल का अध्ययन करें। उनको आधार बनाकर मानवतावादी व मनोविश्लेषणवादी विचारधारा में अन्तर लिखें।

14. आत्मसिद्धि की आवश्यकता

    सम्मान की आवश्यकता

    सम्बद्धता और स्नेह की आवश्यकता

    सुरक्षा की आवश्यकता

    शारीरिक या दैहिक आवश्यकता

15. व्यक्तिगत विधियाँ, वस्तुनिष्ठ विधियाँ एवं प्रक्षेपण प्रविधि।

16. विभिन्न प्रकार के व्यवहार का प्रत्यक्ष अध्ययन

    – प्रायः सभी आयु–वर्गों के लिये उपयोगी

    – शारीरिक व मानसिक समस्त पहलुओं की जानकारी संभव

17. हाई स्कूल व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली, माइनेसोटा मल्टीफेजिक पर्सनालिटी टेस्ट, बेल समायोजन टेस्ट।

18. – प्राप्त सूचनाओं के आधार पर।

    – विश्वसनीयता व वैधता के आधार पर।

19. इसमें व्यक्ति अचेतन रूप से अपनी इच्छाओं, विचारों भावों आदि को दूसरे व्यक्तियों या वस्तुओं पर प्रक्षेपित करता है।

20. प्रक्षेपण प्रविधियों का अध्ययन करके उन में से किसी एक विधि का विवरण लिखें।

11.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंह, अरूण कुमार, (2007) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली।

Chauhan, S.S. (1996) Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House, New Delhi.

Hjelle, L.A. and Ziegler, D.J. (1981) Personality Theories: Basic Assumptions, Research, and Applications. Mc Graw Hill, London.

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

MAED-110
शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड

4

अधिगम के पक्ष

इकाई-13 सीखना	5
इकाई-14 अभिप्रेरणा	19
इकाई-15 स्मरण, विस्मरण एवं चिन्तन	32
इकाई-16 विशिष्ट बालकों की शिक्षा	50

परामर्श-समिति

प्रो0 नागेश्वर राव	**कुलपति - अध्यक्ष**
डॉ0 हरीशचन्द्र जायसवाल	वरिष्ठ परामर्शदाता - कार्यक्रम संयोजक
श्री एम0 एल0 कनौजिया	कुलसचिव - सचिव

विशेषज्ञ समिति

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 राम शकल पाण्डेय	पूर्व आचार्य,शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
प्रो0 हरिकेश सिंह	आचार्य, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परिमापक

प्रो0 एस0पी0 गुप्ता	निदेशक, शिक्षा विद्या शाखा, उ0प्र0रा0ट0मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सम्पादक

प्रो0 पी0 सी0 सक्सेना	पूर्व आचार्य, शिक्षाशास्त्र विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

लेखक

डॉ0 रीना अग्रवाल	रीडर, शिक्षा विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठ्य-सामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय की **लिखित अनुमत लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी** अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

MAED-110- शिक्षा मनोविज्ञान

खण्ड-1 शिक्षा मनोविज्ञान की पृष्ठभूमि

इकाई-1 शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ, कार्यक्षेत्र एवं महत्व

इकाई-2 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ

इकाई-3 मनोविज्ञान के स्कूलों का शिक्षा में योगदान

इकाई-4 वृद्धि एवं विकास

खण्ड-2 विकास के आयाम

इकाई-5 शारीरिक विकास

इकाई-6 संज्ञानात्मक विकास

इकाई-7 संवेगात्मक विकास

इकाई-8 सामाजिक विकास

खण्ड-3 शिक्षार्थी की विशेषताएँ

इकाई-9 भाषा विकास

इकाई-10 संप्रत्यात्मक विकास

इकाई-11 बुद्धि, अभिक्षमता एवं सृजनात्मकता

इकाई-12 व्यक्तित्व

खण्ड-4 अधिगम के पक्ष

इकाई-13 सीखना

इकाई-14 अभिप्रेरणा

इकाई-15 स्मरण, विस्मरण एवं चिन्तन

इकाई-16 विशिष्ट बालकों की शिक्षा

खण्ड परिचय-4 अधिगम के पक्ष

गर्भावस्था, शैशवावस्था तथा किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक विकास तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों के विवेचन से स्पष्ट है कि शारीरिक विकास मानव विकास का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है तथा उचित परिस्थितियों में ही शारीरिक रूप से स्वस्थ शिशुओं, बालकों तथा किशोरों का निर्माण किया जा सकता है। संज्ञान से तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया से होता है जिसमें संवेदना, प्रत्यक्षण, स्मृति, चिंतन आदि समस्त मानसिक क्रियायें सम्मिलित होती हैं। संज्ञानात्मक विकास का एक सिद्धान्त प्याजे द्वारा प्रतिपादित किया गया है। इस सिद्धान्त के अनुसार बालकों में संज्ञानात्मक विकास की चार अवस्थायें होती हैं-संवेदी-पेशीय अवस्था, प्राक संक्रियात्मक अवस्था, ठोस संक्रिया की अवस्था तथा औपचारिक संक्रिया की अवस्था। पियाजे के सिद्धान्त की शिक्षकों के लिये अत्यन्त उपयोगिता है।

संज्ञानात्मक विकास की परिभाषा वायगोस्की द्वारा भी की गयी। वायगास्की ने अपने सिद्धान्त में भाषा और चिंतन के महत्व पर जोर दिया। संज्ञानात्मक विकास में ब्रूनर ने भी एक सिद्धान्त की व्याख्या की है। इसके अनुसार बालकों के संज्ञानात्मक विकास में सक्रियता, दृश्य प्रतिमा तथा सांकेतिक का महत्वपूर्ण स्थान है। संवेग व्यक्ति की उत्तेजित अवस्था है। मानव जीवन में संवेगों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। बालकों में संवेगों का विकास किस रूप में हुआ है। इसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि कुछ लोग संवेग जन्मजात होते हैं। जबकि बहुत से संवेगों का विकास वातावरण में धीरे-धीरे होता है। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में बालकों में सभी प्रमुख संवेगों अर्थात् क्रोध, डर, उत्सुकता, हर्ष, स्नेह, दुःख आदि का विकास हो जाता है। किशोरावस्था तक आते-आते बालकों में वे सभी संवेग होते हैं जो कि प्रारम्भिक बाल्यावस्था में होते हैं। किन्तु इनका प्रकटीकरण बाल्यावस्था से भिन्न होता है।

परिपक्वता, शारीरिक विकास बुद्धि, वातावरण आदि कारक व्यक्ति के संवेगात्मक विकास को प्रभावित करते हैं। संवेगात्मक विकास किस रूप में होता है यह पूर्वानुमेय है। विभिन्न संवेगों का प्रकटीकरण आयु के अनुसार बढ़ता जाता है। इन संवेगों का ज्ञान एक अध्यापक को होना चाहिये। इनका अपना शैक्षिक निहितार्थ है। हमें यह आशा है कि आपको इस इकाई में सामाजिक विकास से संबंधित विभिन्न पहलुओं को पढ़ने में आनन्द आया होगा। आपने इस इकाई में पढ़ा कि सामाजिक विकास भी बालक के विकास का एक प्रमुख घटक है। सामाजिक विकास को शैक्षिक दृष्टिकोण से भी अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुकूल व्यवहार करने की क्षमता सीखने से होता है।

विभिन्न अवस्थाओं जैसे-शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, बालक में सामाजिक विकास किस रूप में होता है का भी उल्लेख किया गया है।

सामाजिक विकास के मूल आधार के लिए बालकों को दूसरों के साथ रहने व व्यवहार करने के पर्याप्त अवसर मिलते रहने चाहिए। उन्हें दूसरे व्यक्तियों के साथ भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ उनकी रूचियों को भी समझना चाहिए। साथ ही बालक को सामाजिक बनने की प्रेरणा तथा मार्गदर्शन भी प्रदान करना चाहिए।

सामाजिक विकास की प्रमुख कसौटियों के रूप में सामाजिक अनुरूपता, सामाजिक समायोजन, सामाजिक अन्तः क्रियाएं, सामाजिक सहभागिता, सामाजिक परिपक्वता आदि का प्रयोग किया जाना चाहिए।

बालकों के सामाजिक विकास में शिक्षकों की भूमिका काफी अधिक हैं क्योंकि शिक्षकगण बालक के सामाजिक विकास को सीधे प्रभावित करते हैं।

इकाई 13 सीखना

संरचना

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 सीखने का अर्थ

13.4 अधिगम के सिद्धान्त

13.4.1 थार्नडाइक का सम्बन्धवाद का सिद्धांत

13.4.2 पॉवलव का अनुकूलित – अनुक्रिया सिद्धांत

13.4.3 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन सिद्धांत

13.4.4 गथरी का प्रतिस्थापन का सिद्धांत

13.4.5 हल का क्रमबद्ध व्यवहार सिद्धांत

13.4.6 गेस्टाल्ट सिद्धांत

13.4.7 टालमैन का संज्ञानात्मक विकास सिद्धांत

13.4.8 क्षेत्रीय सिद्धांत

13.4.9 निर्माणवाद

13.5 सीखने को प्रभावित करने वाले कारक

13.6 सारांश

13.7 अभ्यास कार्य

13.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

एक शिशु जब जन्म लेता है तो वह असहाय अवस्था में होता है। किंतु जैसे वह बड़ा होता है सीखना प्रारम्भ कर देता है। सीखने की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। विभिन्न प्रकार के आचार– विचार, व्यवहार आदि वह सीखता है। सीखने का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है।

इस इकाई का निर्माण इसी बात को ध्यान में रखकर लिखा गया है जिससे आप सीखने की संकल्पना का व्यापक अध्ययन कर सकेगें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप

1. सीखना की व्यापक संकल्पना समझ सकेगे।
2. सीखने सम्बन्धी सिद्धातो को समझ सकेंगे।
3. सीखना सम्बन्धी मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिये गये सिद्धांतों की तुलनात्मक विवेचना कर सकेंगे।
4. सीखने को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कर सकेगे।

13.3 सीखने का अर्थ

सीखना अनुभव व प्रशिक्षण द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन है। अनुभव दो प्रकार का हो सकता है, प्रथम प्रकार का अनुभव बालक स्वयं ग्रहण करता है जबकि दूसरे प्रकार का अनुभव, अन्य लोगों के अनुभव से लाभ उठाने की श्रेणी में आता है। प्रशिक्षण के अन्तर्गत औपचारिक शिक्षा आती है। एक माँ द्वारा जो शिक्षा दी जाती है वह औपचारिक व अनौपचारिक दोनों होती है। जिसका मुख्य उद्देश्य बालक को सिखाना होता है। सीखने के फलस्वरूप बालक के व्यवहार में स्थायी परिमार्जन होता है। विद्यालय का कार्य भी बालक को सिखाना है। किंतु सीखने से आशय मात्र व्यवहार परिमार्जन नहीं। सभी प्रकार के व्यवहार परिवर्तन को सीखना नहीं कहतें। सीखने से तात्पर्य व्यवहार में स्थायी परिवर्तन से होता है और यह परिवर्तन बालक को वातावरण से समायोजित होने में मदद करते हैं।

सीखना = व्यवहार में स्थायी परिवर्तन
- अनुभव
  - (1) स्वयं के अनुभव
  - (2) दूसरों के अनुभव
- प्रशिक्षण

13.4 अधिगम के सिद्धान्त

सीखने के अनेक सिद्धान्त है। प्रत्येक सिद्धान्त किसी न किसी परिस्थिति की भली – भाँति व्याख्या करता है। इन सिद्धान्तों को निम्नलिखित वर्गो में वर्गीकृत किया जा सकता है।

अधिगम के सिद्धान्त

साहचर्य या उत्तेजक – अनुक्रिया सिद्धान्त	ज्ञानात्मक सिद्धान्त	निर्माणवाद
i) थार्नडाइक का सम्बन्धवाद	i) गेस्टाल्ट सिद्धान्त	i) प्याजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त
ii) पावलीव का अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त	ii) टालमैन का सिद्धान्त	ii) वायगोत्सकी का सिद्धान्त
iii) स्किनर का क्रिया –	iii) लैविंन का क्षेत्रीय सिद्धान्त	
iv) गथरी का प्रतिस्थापन का सिद्धान्त		
v) हल का व्यवहार सिद्धान्त		

13.4.1 थार्नडाइक का संबधवाद का सिद्धान्त –

एडवर्ड ली थार्नडाइक ने सन् 1913 ई० मे प्रकाशित अपनी पुस्तक 'एजुकेशनल साइकोलॉजी' मे सीखने का एक नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित किया था। इसे उत्तेजक – प्रतिक्रिया सिद्धान्त या सीखने का संबंध सिद्धान्त भी कहते है।

जब कोई व्यक्ति किसी कार्य को सीखना आरम्भ करता है तो उसके सामने एक विशेष स्थिति या उत्तेजक S होता है। यह स्थिति या उत्तेजक व्यक्ति को एक विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया R करने के लिए प्रेरित करता है। इस प्रकार एक विशिष्ट स्थिति या उत्तेजक का एक प्रतिक्रिया विशेष के साथ बन्धन हो जाता है। इस प्रकार के बन्धन के फलस्परूप व्यक्ति जब भविष्य में उस उत्तेजक का अनुभव करता है तो वही प्रतिक्रिया दोहराता है।

उलझन – बक्स प्रयोग – थार्नडाइक ने अपने सिद्धान्त के परीक्षण के लिए बिल्लियों के ऊपर कई प्रयोग किये । एक प्रयोग में उसने एक भूखी बिल्ली को उलझन बक्स में बन्द कर दिया था। जो एक खटके के दबने से खुलता था। बक्स के बाहर मछली रख दी गयी थी। बाहर रखी हुई मछली ने भूखी बिल्ली के लिए उत्तेजक का कार्य किया जिससे बिल्ली सक्रिय होकर मछली पाने के लिए प्रतिक्रिया करने लगी। वह बाहर निकलने का प्रयास करने लगी। एक बार बिल्ली का पंजा संयोग से खटके के ऊपर पड़ गया। फलतः वह बाहर आ गयी। थार्नडाइक ने इस प्रयोग को लगभग सौ बार दोहराया और एक समय ऐसा आ गया कि बिल्ली को उलझन बाक्स में बन्द कर देने पर वह बिना किसी त्रुटि के खटके को दवाकर बक्स का दरवाजा खोलने लगी।

थार्नडाइक ने सीखने के सिद्धान्त में तीन महत्पूर्ण नियमों का वर्णन किया है जो निम्नांकित है–

1) अभ्यास का नियम

2) तत्परता का नियम

3) प्रभाव का नियम

1) अभ्यास का नियम – यह नियम इस तथ्य पर आधारित है कि अभ्यास से व्यक्ति में पूर्णता आती है। अतः जब हम किसी पाठ या विषय का बार – बार दुहराते है तो उसे सीख जाते है। इसे थार्नडाइक ने उपयोग नियम कहा है। दूसरी तरफ जब हम किसी पाठ या विषय को दोहराना बन्द कर देते है तो उसे भूल जाते है। इसे इन्होंने अनुपयोग नियम कहा जाता है।

2) अभ्यास का नियम – इस नियम के अनुसार यदि व्यक्ति शारीरिक व मानसिक रूप से तैयार होता है तो सीखना होता है।

3) प्रभाव का नियम – थार्नडाइक के सिद्धान्त का यह सबसे महत्वपूर्ण नियम है। इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया या कार्य को उसके प्रभाव के आधार पर सीखता है। किसी कार्य या अनुक्रिया का प्रभाव व्यक्ति में या तो सन्तोषजनक होता है या खीझ उत्पन्न करने वाला। प्रभाव सन्तोषजनक होने पर व्यक्ति उसे सीख लेता है अन्यथा भूल जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

(ख) अपने उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

1. थार्नडाइक का सबन्धवाद क्या है ?

....

....

2. थार्नडाइक ने सीखने के कौन – कौन से नियम बताये है ?

....

....

....

13.4.2 पॉवलाव का अनुकूलित –अनुक्रिया सिद्धान्त–

अनुकूलित – अनुक्रिया के सिद्धान्त का आधार शरीर क्रिया विज्ञान का

सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त सम्बन्धवाद के इस सिद्धान्त को महत्व देता है कि उत्तेजना और प्रतिक्रिया का संबंध होना ही सीखना है। इसके प्रतिपादक पॉवलोव है। सभी प्राणियों में मूल रूप से प्रतिक्रिया तथा प्रवृत्तियाँ होती है जो उपयुक्त उत्तेजक द्वारा गतिशील हो जाती है। आन्तरिक या बाह्य प्रेरणा के फलस्वरूप उत्तेजक और अनुक्रिया में सम्बन्ध हो जाता है। इसी को सीखना कहते है। यदिं स्वाभाविक उत्तेजक के साथ कोई कृत्रिम उत्तेजक भी कई बार प्रदान किया जाये तो कृत्रिम उत्तेजक का संबंध स्वाभाविक उत्तेजक से हो जाता है। इस प्रकार कृत्रिम उत्तेजक के कारण स्वाभाविक उत्तेजक के समान हुई प्रतिक्रिया को 'सम्बद्ध प्रतिक्रिया' या अनुकूलित प्रतिक्रिया कहते है।

उदाहरण – भोजन को देखकर कुत्ते के द्वारा लार जब भोजन के साथ घंटी बजती है तो कुछ समय बाद छोटी सुनकर लार टपकाना।

सम्बन्ध प्रत्यावर्तन या अनुबन्धन के पहले की स्थिति

अस्वाभाविक उत्तेजना	**अनुक्रिया**
(घण्टी की आवाज)	(कान का उत्तेजित होना)
स्वाभाविक उत्तेजना	**स्वाभाविक अनुक्रिया**
(भोजन)	(लार टपकाना)

सम्बन्ध प्रत्यावर्तन या अनुबन्धन हो जाने पर स्थिति –

अस्वाभाविक उत्तेजना	**सम्बद्ध प्रतिक्रिया**
(घण्टी की आवाज)	(लार टपकाना)

बोध प्रश्न

टिप्पणी: (क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

(ख) अपने उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

3. पॉवलव का सीखना का सिद्धान्त क्या है ?

....

....

4. पॉवलाव के प्रयोग में स्वाभाविक उद्दीपक क्या है ?

....

....

....

13.4.3 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्ध सिद्धान्त –

क्रियां –प्रसूत अनुबन्धन सिद्धान्त का प्रतिपादन अमेरिका के मनोवैज्ञानिक स्किनर ने 1938 में किया था। इस सिद्धान्त को नैमित्तिक अनुबन्ध सिद्धान्त भी कहते है।

स्किनर के क्रिया – प्रसूत अनुबन्धन में सही अनुक्रिया को होना अधिक महत्व रखता है। यहाँ केवल एक अस्वाभाविक या कृत्रिम उत्तेजक होता है जो वांछित अनुक्रिया के बाद दिया जाता है तथा इस अनुक्रिया को पुनर्बलित कर देता है। स्किनर ने अपने सिद्धान्त के आधार पर परम्परागत S-R सूत्र के R-S सूत्र में परिवितिंत कर दिया।

सीखने की प्रक्रिया में उत्सर्जित अनुक्रियाओं पर जो प्रभाव पड़ता है उसे समझने के लिए पुनर्बलन का सिद्धान्त सहायक है। इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने वाले का व्यवहार ही प्रबलन प्रात्त करने में सहायता करता है।

13.4.4 गथरी का प्रतिस्थापन का सिद्धान्त –

दिया हुआ उत्तेजक अथवा उत्तेजको का संचय एक निश्चित अनुक्रिया को निष्कर्षित करने की प्रवृत्ति रखता है और गथरी के अनुसार सीखना, इन जन्मजात अथवा अर्जित अनुक्रियाओं को दूसरे अथवा प्रतिस्थापित उत्तेजकों की ओर विस्तारित करने की क्रिया है।

गथरी के अनुसार – "एक उत्तेजक प्रतिमान जो एक प्रतिक्रिया के समय क्रियाशील है, यदि वह दोबारा होगा तो उस प्रतिक्रिया को उत्पादित करने की प्रवृत्ति रखेगा।"

गथरी के अनुसार, इस प्रकार के सीखने के लिए केवल एक तत्व उत्तेजक और प्रतिक्रिया का समय में सामीप्य होना अनिवार्य है। एक सम्बन्ध, उत्तेजक तथा प्रतिक्रिया के एक बन्धन में पूर्णतः दृढ़ हो जाता है, किन्तु अभ्यास में दोहराना कई प्रकार के सीखने के लिए आवश्यक होता है।

13.4.5 हल का क्रमबद्ध व्यवहार सिद्धान्त –

अमेरीकी मनोवैज्ञानिक, कलार्क एल० हल का सिद्धान्त सम्बन्धवादी मनोवैज्ञानिकों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। हल ने अनेक प्रयोग किये और उनके आधार पर अपने अनुसार सीखने की व्याख्या प्रस्तुत की। उसके सिद्धान्त को क्रमबद्ध व्यवहार सिद्धान्त या हल का प्रबलन सिद्धान्त कहा गया। इसे

अन्तर्नोद न्यूनता का सिद्धान्त भी कहते हैं।

किसी आवश्यकता को दूर करना इस सिद्धान्त का मुख्य तत्व है। अपने को पर्यावरण से समायोजित करने के लिए प्राणी किसी न किसी आवश्यकता का अनुभव करता है। आवश्यकता को पूरा करने के लिए वह जो कुछ भी उस क्षण से पहले अनुभव कर रहा होता है वह सब उसकी प्रतिक्रियाओं से सम्बद्ध हो जाता है। यह सम्बद्ध प्रतिक्रिया आवश्यकता का अनुभव होने पर होती है।

हल के अनुसार सीखना आवश्यकता की पूर्ति की प्रक्रिया के द्वारा होता है। हल ने चूहों पर अनेक प्रयोग किये। इन प्रयोगों के आधार पर उसने निष्कर्ष निकाला कि उत्तेजना (S) और अनुक्रिया (X) के बीच सम्बन्ध अन्तर्नोद पर निर्भर है। अन्तर्नोद आवश्यकता के कारण प्राणी में तनाव की स्थिति है। ऐसी स्थिति का अनुभव होने पर प्राणी में अनेक उत्तेजनाएं उत्पन्न हो जाती है। जो उसे उद्देश्य तक पहुंचाती है। इससे उनका तनाव कम हो जाता है और वह पुर्नबलन प्राप्त करता है। वह इस प्रकार वह कार्य को सीख लेता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क)अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख)अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

5) स्किनर के अनुसार सीखना क्या है?

....

....

....

6) गथरी ने सीखने के लिये केवल इकहरे प्रयास पर ही क्यों बल दिया है?

....

....

....

7) हल का अन्तर्नोद न्यूनता का सिद्धान्त क्या है?

....

....

....

13.4.6 गेस्टाल्ट सिद्धान्त

गेस्टाल्ट सिद्धान्त एक जर्मन स्कूल की देन है। गेस्टाल्ट स्कूल का जन्म सन 1920 ई0 में हुआ था। इस स्कूल में संबंधित व्यक्ति मैक्स वर्दीगर, कोहलर, तथा कोफका है। वर्दीमर इस सिद्धान्त के प्रवर्तक है और कोहलर तथा कोफका ने इस सिद्धान्त सिद्धान्त को आगे बढ़ाने का कार्य किया है।

गेस्टाल्ट जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है समग्राकृति या पूर्ण आकार। गेस्टाल्ट के प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार है–

1) मस्तिष्क में चीजों को व्यवस्थित करने का गुण होता है। यह विभिन्न वस्तुओं को तत्काल आकार–प्रकार और गुण प्रदान कर सकता है।

2) हम किसी भी चीज को पूर्ण रूप या समग्र रूप से देखते हैं। यद्यपि यह विभिन्न भागों या अंगों से बनी होती है, फिर भी उनसे भिन्न होती है।

3) यह सांख्यिकी में विश्वास नहीं करता है। मानव व्यवहार को गणितीय रूप से विश्लेषित नही किया जा सकता है। ये परिमाण की अपेक्षा गुणात्मकता में अधिक विश्वास करते है।

4) ये मनोवैज्ञानिक वातावरण में विश्वास करते है और उसी को अधिक महत्व देते है। ये भौतिक वातावरण को अधिक महत्व नहीं देते।

5) ये समाकृतिका के सिद्धान्त को मानते है।

कोहलन के अनुसार सीखना किसी स्थिति के समग्र या पूर्णरूप से समझने का प्रतिफल है। इसका सम्बन्ध प्रत्यक्षीकरण से है। सीखने में प्राणी सम्पूर्ण परिस्थिति को दृष्टि में रखकर समस्या का हल ढूंढने में सफल होता है। इसके अन्तर्गत सीखने की क्रिया में सफलता प्राप्त करने के लिए या समस्या का समाधान ढूंढने मे अन्तदृष्टि या सूझ विद्यमान रहती है। इसलिए इसे अन्तदृष्टि या सूझ का सिद्धान्त भी कहते है।

यह सिद्धान्त पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों पर सफलतापूर्वक लागू किया जा सकता है क्योंकि सूझ का सम्बन्ध बुद्धि, चिन्तन और कल्पना से होता है और यह क्षमता पशुओं में कम होती है।

13.4.7 टालमैन का संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त–

टॉलमैन द्वारा प्रतिपादित सीखने के सिद्धान्त के अनुसार सीखने की क्रिया में उद्देश्य का विशेष महत्व है। उसका विचार है कि प्राणी की सभी क्रियाएं

उद्देश्यपूर्ण या प्रयोजनपूर्ण होती है। सीखने की क्रिया में प्राणी का व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है। उदाहरार्थ भूखा कुत्ता अपने मालिक की विशिष्ट ध्वनि सुनकर दौड़ना सीख जाता है। यहाँ पर कुत्ते का दौड़ना यांत्रिक नही है वरन किसी ज्ञान पर आधारित है। यदि उत्तेजक में अर्थ नही जुड़ा रहता है तो किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया नही होती है। टॉलमैन का विचार है कि उत्तेजक में उसी समय अर्थ जुड़ता है जब वह किसी की आवश्यकता और उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होते है।

इस सिद्धान्त के अनुसार सीखने वाला उद्देश्यों की सम्प्राप्ति के लिये प्रतीकों का अनुसरण करता है और विषय वस्तु में अर्थ सीखने का प्रयास करता है। टॉलमैन यह मानता है कि सीखना ज्ञानात्मक मानचित्र बनाना है। टॉलमैन के विचार से पुरस्कार, दण्ड एवं अनुबन्धन के प्रतीक है जो उसे यह ज्ञान देते हैं कि उसे कौन सा मार्ग चुनना है। वे ऐसे प्रतिनिधि नही है जो उनसे संबंधित कार्यो को करा सके या रोक सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

8) कोहलर का सीखने का सिद्धान्त क्या है?

....

....

....

9) टॉलमैन ने सीखने की क्या व्याख्या की है?

....

....

....

13.4.8 क्षेत्रीय सिद्धान्त–

इस सिद्धान्त के प्रतिपादक कुर्त लेविन 1890–1947 हैं। उनका सिद्धान्त, सीखने के ज्ञानात्मक सिद्धान्त के तुरन्त बाद स्थान दिया गया है।

लेविन के मत का आधार वातावरण में व्यक्ति की स्थिति है। लेविन ने जीवन स्थल के आधार पर व्यक्ति के अनुभवों की व्याख्या की है। लेविन के अनुसार जीवन स्थल, वह वातावरण है जिसमें व्यक्ति रहता है और उससे प्रभावित होता है। किसी व्यक्ति का यह जीवन स्थल मनोवैज्ञानिक शक्तियों पर निर्भर होता है।

लेविन के सिद्धान्त में भर्त्सना, लक्ष्य तथा अवरोधक प्रमुख तत्व है। किसी व्यक्ति को लक्ष्य की संप्राप्ति के लिए अवरोधक को पार करना आवश्यक है। यह अवरोधक मनोवैज्ञानिक अथवा भौतिक हो सकता है। व्यक्ति के जीवन स्थल में अवरोधक के मनोवैज्ञानिक रूप से परिवर्तन होने के कारण सदैव नये निर्माण होते रहते है।

13.4.9 निर्माणवाद–

निर्माणवाद सीखने को दर्शन शास्त्र है। यह अधिगम की प्रक्रिया में अधिगमकर्ता को महत्व देता है। इसके अनुसार अधिगमकर्ता अपने लिए प्रत्ययों का निर्माण करता है, समस्या के बारे में अपने समाधान खोजता है। सीखना मानसिक संरचना के निर्माण का परिणाम है जिसमें अधिगमकर्ता नयी सूचना को पुरानी सूचना से अर्थपूर्ण ढंग से जोड़ता है। अतः सीखना अधिगमकर्ता की पृष्ठभूमि, विश्वासों व मनोवृत्तियों से प्रभावित होते है।

निर्माणवाद में सीखने के सिद्धान्त–

1. सीखना सक्रिय प्रक्रिया है जिसमें अधिगमकर्ता संवेदनाओं का प्रयोग करते हुए इनका अर्थपूर्ण निर्माण करता है।
2. जैसे–जैसे व्यक्ति सीखता जाता है, वह सीखने की प्रक्रिया को भी सीखता है।
3. इसके अनुसार सीखने के लिए मस्तिष्क तथा हाथ दोनों सक्रिय होना आवश्यक है।
4. सीखने की प्रक्रिया में भाषा निहित होती है।
5. सीखना एक सामाजिक क्रिया है। सीखना हमारे अन्य लोगों से सम्बन्ध जैसे शिक्षण, संगी–साथी व परिवार पर निर्भर करता है।
6. सीखना किसी परिप्रेक्ष्य में होता है। हम अपने पूर्व ज्ञान, विश्वासों, पक्षपातों तथा भय के सम्बन्ध में सीखते है।

7. सीखने के लिए ज्ञान की आवश्यकता होती है। जितना ज्यादा हमारा ज्ञान होता है उतना ही हम सीखते है।

8. सीखना क्षणभर में नही हो जाता। सीखने में समय लगता है।

9. सीखने का मुख्य तत्व प्रेरणा है।

निर्माणवाद के अन्तर्गत मुख्य रूप से प्याजे, बायगोत्सकी, बूनर तथा डीवी के अधिगम सम्बन्धी विचार आते है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

10) जीवन स्थल क्या है?

....

....

....

11) निर्माणवाद ने सीखने को किस तरह परिभाषित किया किया है?

....

....

....

13.5 सीखने को प्रभावित करने वाले कारक

सीखने को निम्नलिखित कारक प्रभावित करते है–

1. सामान्य बुद्धि
2. विशिष्ट बुद्धि
3. व्यक्ति का पूर्व में अर्जित ज्ञान व कौशल
4. परिवार का प्रभाव
5. व्यक्ति का व्यक्तित्व, उदाहरण व्यक्ति के शील गुण, चिन्ता का स्तर आदि
6. अधिगम के तरीके

7. व्यक्ति का आत्म प्रत्यय

8. संगी साथी का प्रभाव

13.6 सारांश

सीखना व्यवहार में होने वाला ऐसा परिवर्तन है जोकि अनुभव व प्रशिक्षण के फलस्वरूप होता है। सीखने के अनेक सिद्धान्त है। सम्बन्धवाद का सिद्धान्त का प्रतिपादन थार्नडाइक ने किया। इस तरह के अनुबंधन में प्राणी सीखने की परिस्थिति में स्वतंत्र होकर क्रियायें करता है और परिणाम से सीखता है।

अनुकूलित – अनुक्रिया सिद्धान्त का प्रतिपादन पॉवलाव ने किया। जिसमें प्राणी दो उद्दीपकों के बीच अनुबंधन के माध्यम से सीखता है। स्किनर द्वारा दिया गया सिद्धान्त क्रिया प्रसूत अनुबंधन कहलाया। स्किनर ने माना कि प्राणी क्रिया या व्यवहार को अपने परिणाम के आधार पर सीखता है। गथरी ने सीखने का उद्दीपक – अनुक्रिया सामीप्यता सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। हल जो प्रमुख व्यवहारवादी थे ने सीखने की व्याख्या प्रणोद ह्रास के माध्यम से की।

सीखने के सिद्धान्तों को सामान्यतः दो श्रेणियों में बांटा गया है– उद्दीपक–अनुक्रिया सिद्धान्त तथा केन्द्रीय या ज्ञानात्मक सिद्धान्त। गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक, टालमैन व लेविन का क्षेत्रीय सिद्धान्त क्रमशः केन्द्रीय सिद्धान्त की श्रेणी में है। जिसमें सीखने की व्याख्या सीखने की परिस्थिति में उत्पन्न उद्दीपकों के बीच अर्थपूर्ण संबंधन देखने के रूप में की जाती है।

सीखने की व्याख्या कुछ नवीन सिद्धान्तों ने की है। जिसमें निर्माणवाद की अहम भूमिका है। जिसमें प्याजे, वायगोत्सकी, ब्रूनर तथा डीवी आते है। जिन्होंने सीखने में अधिगमकर्ता की भूमिका पर विशेष बल दिया है।

एक ही परिस्थिति में एक व्यक्ति कुछ सीख लेता है जबकि अन्य नही सीख पाते है। अतः सीखने की प्रक्रिया को प्रभावित करने वाले कारकों का ज्ञान होना आवश्यक है।

13.7 अभ्यास कार्य

1. सीखने के नियमों की महत्ता लिखिए।

2. अनुकूलित अनुक्रिया सिद्धान्त व क्रिया प्रसूत अनुबंधन सिद्धान्त के बीच प्रमुख अंतर लिखें।

3. टालमैन का सिद्धान्त शैक्षिक परिस्थितियों को किस प्रकार उन्नत कर

सकता है। विवेचना करें।

4. सीखने को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक कौन–कौन से हैं।

13.8 बोध प्रश्नो के उत्तर

1. थार्नडाइक का मानना था कि सीखना उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच संबंध स्थापित होने से होता है। यदि यह अनुक्रिया प्राणी को सन्तोष प्रदान करती है तो भविष्य में इस उत्तेजना के लिए उसी अनुक्रिया के होने की सम्भावना बढ़ जाती है।

2. – अभ्यास का नियम

   – तत्परता का नियम

   – प्रभाव का नियम

3. यदि अस्वाभाविक उत्तेजना को स्वाभाविक उत्तेजना के साथ कई बार प्रस्तुत किया जाता है तो वह स्वाभाविक उत्तेजना के समान प्रतिक्रिया देने लगता है।

4. भोजन

5. सीखना उत्तेजना व प्रतिक्रिया में सम्बन्ध स्थापित करना है। यदि प्रतिक्रिया के बाद प्राणी को पुनर्बलन मिलता है तो यह सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है।

6. गथरी का मानना था कि उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच का साहचर्य मात्र एक ही प्रयास में अधिकतम शक्ति पर पहुंच जाता है बशर्ते उनमें स्थान की समीपता हो।

7. प्राणी के सामने जब कोई उद्दीपक आता है तो वह अनुक्रिया करता है। इस अनुक्रिथा के बाद जो पुनर्बलन मिलता है उससे यदि सम्बन्धित प्रणोद में कमी होती है तो सीखना होता है।

8. जब व्यक्ति किसी विषय या पाठ को सीखता है तो वह सीखने से संबंधित परिस्थिति के हर पहलू को नये ढंग से प्रत्यक्षण कर संगठित करने का प्रयास करता है। जिससे उसमें सूझ उत्पन्न होती है।

9. टॉलमैन ने सीखना को उद्देश्यपूर्ण क्रिया माना है। जिसमें प्राणी उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु एक संज्ञानात्मक नक्शा बना कर सीखता है।

10. व्यक्ति तथा उसके वातावरण की वह सभी चीजें जो किसी क्षण व्यक्ति को प्रभावित करती हैं जीवन स्थल कहलाती हैं।

11. निर्माणवाद अधिगम प्रक्रिया में अधिगमकर्ता को महत्व देता है। जिसमें अधिगमकर्ता नयी सूचनाओं को पुरानी सूचना से अर्थपूर्ण ढंग से जोड़ने का प्रयास करता है।

13.9 कुछ उपयोगी पुस्तके

Chauhan, S.S. (1996) Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House, New Delhi.

Hilgard, E.R. and Bawer, G.H. (1975) Theories of learning. Prentice Hall of India, New Delhi.

इकाई 14 अभिप्रेरणा

संरचना

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 प्रेरणा का अर्थ

14.4 प्रेरणा के स्त्रोत

14.5 प्रेरणा के सिद्धान्त

 14.5.1 मूल प्रवृति सिद्धान्त

 14.5.2 प्रणोद सिद्धान्त

 14.5.3 प्रोत्साहन सिद्धान्त

 14.5.4 विरोधी – प्रक्रिया सिद्धान्त

 14.5.5 आवश्यकता – पदानुक्रम सिद्धन्त

 14.5.6 मरे का सिद्धान्त

14.6 प्रेरणा की विधियाँ

 14.6.1 पुरस्कार

 14..6.2 दण्ड

 14.6.3 श्रेणी अथवा अंक

 14.6.4 सफलता

 14.6.5 प्रतिद्वन्द्विता एवं सहयोग

 14.6.6 परिणाम का ज्ञान

 14.6.7 नवीनता

 14.6.8 महत्वाकांक्षा का स्तर

 14.6.9 रूचि

 14.6.10 लक्ष्य का प्रभाव

 14.6.11 आत्मीयता स्थापित करना

14.7 सारांश

14.8 अभ्यास कार्य

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

कोई भी व्यक्ति व्यवहार क्यो करता है। कक्षा में कोई छात्र अधिक पढ़ता है तथा कोई अधिक शैतानी करता है। कुछ छात्र अच्छे नम्बरों से पास होने की इच्छा रखते है। जब.कोई व्यक्ति भूखा होता है, भोजन की तलाश करता है, घर बनवाता है या नये कौशलो को सीखता है। मनुष्य का व्यवहार कुछ तत्वो के द्वारा निर्देशित, संचालित एवं परिचालित होता है। इन्हीं को प्रेरक कहते हैं। इस इकाई में हम प्रेरणा का अर्थ, स्त्रोत, प्रकार, विभिन्न विधियो तथा सिद्धान्तो की चर्चा करेंगे। साथ ही शिक्षा एवं सीखने में प्रेरणा के महत्व पर भी प्रकाश डालेगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के पश्चात आप

1. प्रेरणा के प्रत्यय को समझ सकेंगे।
2. छात्रों को प्रेरणा देने की प्रमुख विधियो से परिचित हो सकेंगे।
3. मनोविज्ञान तथा शिक्षा मे प्रचलित प्रेरणा के प्रमुख सिद्धान्तो के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
4. एक शिक्षक के रूप मे प्रेरणा के महत्व को समझकर कक्षा मे प्रेरणा देने की उचित विधि का प्रयोग करे सकेंगे।

14.3 प्रेरणा का अर्थ

प्राणी के व्यवहार को परिचालित करने वाली जन्मजात तथा अर्जित वृतिया को प्रेरक कहते है। यह वह अन्तवृति है जो प्राणी मे क्रिया उत्पन्न करती है और उस क्रिया को तब तक जारी रखती है जब तक उद्देश्य की पूर्ति नही जाती है। 'Motivation' शब्द लेटिन भाषा के 'Movers का रूपान्तर है जिसका अर्थ है आगे बढ़ना 'to move' अर्थात प्रेरणाका अर्थ है किसी व्यक्ति में गति उत्पन्न करना। 'प्रेरणा' शब्द के शाब्दिक एवं मनोवैज्ञानिक अर्थो मे अन्तर होता है। शाब्दिक अर्थ में किसी भी उत्तेजना को प्रेरणा कहते हैं। उत्तेजना के अभाव में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया सम्भव नही होती है। यह उत्तेजना आन्तरिक एवं ब्राह्य दोनो प्रकार की हो सकती है। मनोवैज्ञानिक अर्थ में प्रेरणा का अर्थ केवल आन्तरिक उत्तेजना से होता है। अर्थात प्रेरणा वह आन्तरिक शक्ति है जो व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है।

वर्नाड के अनुसार "प्रेरणा से तात्पर्य उन घटनाओ से है जो किसी विशेष उद्देश्य की ओर क्रिया को उत्तेजित करती है जबकि इससे पहले उस लक्ष्य की ओर कोई क्रिया या तो नही थी या बहुत कम क्रिया सम्भव थी।"

लावेल के अनुसार "अभिप्रेरणा एक ऐसी मनोशारीरिक प्रक्रिया है जो किसी आवश्यकता की संतुष्टि करेगी" जैसे भूख लगने पर खाना खाना।

14.4 प्रेरणा के स्त्रोत

प्रेरणा के प्रमुख 4 स्त्रोत होते है।

1. आवश्यकताएं
2. चालक
3. उद्दीपन
4. प्रेरक

1. आवश्यकताएं – प्रत्येक प्राणी की कुछ मौलिक आवश्यकताएं होती है। जिसके बिना उसका अस्तित्व सम्भव नही है जैसे भोजन, पानी, हवा इत्यादि। इन आवश्यकताओ की तृप्ति पर ही व्यक्ति का जीवन निर्भर करता है।

2. चालक – प्राणी की आवश्यकता से चालक का जन्म होता है। चालक शक्ति का वह स्त्रोत है जो प्राणी को क्रियाशील करता है। जैसे भोजन की आवश्यकता से भूख – चालक की उत्पत्ति होती है। भूख चालक उसे भोजन की खोज करने के लिए प्रेरित करता है।

3. उद्दीपन – पर्यावरण की वे वस्तुएं जिसके द्वारा प्राणी के चालको की तृप्ति होती है। उद्दीपन कहलाती है। भूख एक चालक है, और भूख चालक को भोजन संतुष्ट करता है। अतः भूख चालक के लिए भोजन उद्दीपन है। आवश्यकता, चालक व उद्दीपन तीनो मे सम्बन्ध होता है।

आवश्यकता, चालक को जन्म देती है, चालक बढ़े हुये तनाव की दशा है जो कार्य और प्रारम्भिक व्यवहार की ओर अग्रसर करता है। उद्दीपन बाहरी वातावरण की कोई भी वस्तु होती है। जो आवश्यकता की सन्तुष्टि करती है और इस प्रकार क्रिया के द्वारा चालक को कम करती है।

4. प्रेरक – प्रेरक शब्द व्यापक है। प्रेरको को आवश्यकता, इच्छा, तनाव, स्वभाविक स्थितियाँ, निर्धारित प्रवृतियाँ, रूचि, स्थायी उद्दीपक आदि से जाना जाता है। यह किसी विशेष उद्देश्य की ओर व्यक्ति को ले जाते है।

प्रेरको के प्रकार

- जन्मजात प्रेरक (भूख, प्यास, भय आदि)
- अर्जित प्रेरक
  - सामाजिक प्रेरक (समूह में रहना, संचय, युयुत्सा)
  - व्यक्तिगत प्रेरक (अभिवृत्ति, विश्वास,रूचि, महत्वकांक्षा का स्तर, लक्ष्य, आदत)

बोध प्रश्न

टिप्पणीः (क) दिये गये रिक्त स्थान पर अपना उत्तर लिखे।

(ख) ईकाई के अन्त मे दिये गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।।

1. प्रेरणा को परिभाषित कीजिए ?

....

....

....

2. प्रेरणा के प्रमुख चार स्त्रोत को लिखिए ?

....

....

....

3. जन्मजात और आर्जित प्रेरकों में अन्तर बताइए।

....

....

....

14.5 प्रेरणा के सिद्धान्त

व्यक्ति के व्यवहार को कौन – कौन सी चीजे प्रभावित करती है इसके लिए मनोवैज्ञानिको ने अलग – अलग विचार प्रस्तुतं किये है।

14.5.1 मूल प्रवृति सिद्धान्त

1890 मे विलियम जेम्स के अनुसार मनुष्य अपने व्यवहार का निर्देशन एवं नियंत्रण मूल प्रवृति की सहायता से करता है। सिग्मंड फ्रायड के अनुसार मूल प्रवृतियां प्रेरक शक्ति के रूप मे काम करते है। मूल प्रवृति का प्रमुख स्त्रोत शारीरिक आवश्यकताए होती है। दो तरह की मूल प्रवृति व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है – जीवन मूल प्रवृति एवं मृत्यु मूल प्रवृति। जवीन मूल प्रवृति का तात्पर्य उससे है जिससे व्यक्ति अपने जीवन की महत्वपूर्ण क्रिया करने के लिए प्रेरित होता है। मृत्यु मूल प्रवृति व्यक्ति को सभी तरह के विनाशात्मक व्यवहार करने की प्रेरणा देता है। यह दोनो एक साथ मिलकर व्यक्ति के व्यवहार को प्ररित करते है।

14.5.2 प्रणोद सिद्धान्त

इसके अनुसार अभिप्रेरणा में प्रणोद की स्थिति पायी जाती है। यह अवस्था शारीरिक आवश्यकता या बाहरी उद्दीपक से उत्पन्न होती है। हसमे वयक्ति क्रियाशील हो जाता है और उद्देश्यपूर्ण व्यवहार करने लगता है। फ्रायड का अभिप्रेरक सिद्धान्त (मनोविश्लेषण सिद्धान्त) प्रणोद सिद्धान्त पर आधारित है। फ्रायड के अनुसार यौन तथा आक्रमणशीलता दो प्रमुख प्रेरक है जिसकी बुनियाद बचपन मे ही पड़ जाती है।

14.5.3 प्रोत्साहन सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार अभिप्ररित व्यवहार की उत्पत्ति लक्ष्य या प्रोत्साहन के कुछ खास गुणो के कारण होती है। इस सिद्धान्त को प्रत्याशा सिद्धान्त भी कहा जाता है। जैसे भूख न होने पर भी स्वादिष्ट भोजन मिलने पर व्यक्ति उसकी ओर खिच जाता है।

14.5.4 विरोधी – प्रक्रिया सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन सोलोमैन तथा कौरविट के द्वारा 1974 मे किया गया। इसके अनुसार सुख देने वाले लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हम लोग प्रेरित रहते है। तथा जिससे हमे अप्रसन्नता होती है उससे दूर रहते है। प्रेरणा के इस सिद्धान्त को संवेग का सिद्धान्त भी कहते है।

14.5.4 आवश्यकता – पदानुक्रम सिद्धान्त

यह सिद्धान्त मानवतावादी मासलो द्वारा दिया है। इनके अनुसार प्रत्येक

व्यक्ति मे जन्म से ही आत्माभि व्यक्ति की क्षमता होती है जो व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। मासलो ने आवश्यकताओ या मानव अभिप्रेरको को एक क्रम मे रखा। मानवीय आवश्यकताए मुख्य रूप से पाँच होती है।

(i) शारीरिक आवश्यकताए – यह सबसे नीचे के क्रम में आती है इसमें भूख प्यास, काम आदि शारीरिक आवश्यकताएं आती हैं। सबसे पहले व्यक्ति इन आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

(ii) सुरक्षा की आवश्यकता– यह शारीरिक आवश्यकताओ के बाद आती है। इसमे शारीरिक तथा संवेगिक दुर्घटनाओ से बचाने की आवश्यकता सम्मिलित है इसमे व्यक्ति डर तथा असुरक्षा से बचने की कोशिश करता है।

(iii) सदस्य होने तथा स्नेह पाने व देने की आवश्यकता – इस तरह की आवश्यकता के कारण व्यक्ति परिवार, स्कूल, धर्म, प्रजाति, धार्मिक पार्टी के साथ तादाम्य स्थापित करता है। व्यक्ति अपने समूह के अन्य सदस्यो के साथ स्नेह दिखाता है तथा उनसे स्नेह पाने की कोशिश करता है।

(iv) सम्मान की आवश्यकता – प्रथम तीन आवश्यकताओ की सन्तुष्टि होने पर सम्मान की आवश्यकता की उत्पत्ति होती है। इसमे आन्तरिक सम्मान कारक जैसे आत्मसम्मान, उपलब्धि, स्वायत्तता तथा ब्राह्रय सम्मान कारक जैसे पद, पहचान आदि सम्मलित होते है।

(v) आत्म सिद्धि की आवश्यकता – आत्मसिद्धि सबसे उपरी स्तर की आवश्यकता है। यह पर सभी लोग नही पहुँच पाते है। आत्मसिद्धि मे अपने अन्दर छिपी क्षमताओ को पहचानकर उसे ठीक तरह से विकसित करने की आवश्यकता है।

14.5.6 मर्रे का सिद्धान्त

मरे ने अपने अभिप्रेरणा के सिद्धान्त को आवश्यकता के रूप मे बताया है। असन्तुष्ट आवश्यकताए व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रेरित करती है और तब तक बनी रहती है जब तक आवश्यकताओ की सन्तुष्टि नही होती है। प्रत्येक आवश्यकता के साथ एक विशेष प्रकार के संवेग जुड़े रहते है। 1930 मे बहुत सारे अध्ययनो के बाद मर्रे ने आवश्यकताओ के दो प्रकार बताये।

1. दैहिक आवश्यकताएँ – इस प्रकार की आवश्यकताए व्यक्ति के जीवन जीने के लिए आवश्यक होती है जैसे भोजन, पानी, हवा इत्यादि। मर्रे ने 12 दैहिक आवश्यकताए बतायी है।

2. मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ – यह आवश्यकताए शारीरिक नही होती है। मर्रे ने 28 आवश्यकताए बतायी है यह प्राथमिक आवश्यकताओं से उत्पन्न होती है जैसे– उपलब्धि की आवश्यकता, सम्बन्ध की आवश्यकता आदि।

मर्रे के अनुसार कभी – कभी व्यक्ति की दैहिक आवश्यकताओं की तुलना मे मनोवैज्ञानिक आवश्यकताए हावी हो जाती है।

बोध प्रश्न

नोट : (क) नीचे दिये गये प्रश्नो के सही उत्तरो मे गोले लगाइए

(ख) ईकाई के अन्त मे दिये गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।

4. फ्रायड के अनुसार मूलप्रवृति के दो प्रमुख प्रकार निम्नलिखित है जो व्यक्ति को कार्य के लिए प्रेरित करते है।

   (क) आक्रामकता तथा चिन्ता

   (ख) अहं तथा परांह

   (ग) ऐरोस तथा थैनटोस

   (घ) उपांह तथा परांह

5. मैसलो के आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त मे सबसे उपरी स्तर की आवश्यकता कौन सी है।

   क) बचाव व सुरक्षा की आवश्यकता

   (ख) दैहिक आवश्यकता

   (ग) आत्म सिद्धि की आवश्यकता

   (घ) आत्म सम्मान की आवश्यकता

14.6 प्रेरणा की विधियां

प्रेरणा देने की विधियां निम्नलिखित है।

14.6.1 पुरस्कार

यह प्रेरणा देने की अत्यन्त प्रमुख विधि है। क्योकि इसके द्वारा व्यक्ति को एक स्तर प्राप्त होता है। सन्तोष मिलता है, उत्साह प्राप्त होता है, कार्य मे रूचि आती है, व्यक्ति कार्य करने के लिए अधिक लीन हो जाता है। पुरस्कार मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते है।

(क) मौखिक पुरस्कार – प्रशंसा करना।

(ख) चिन्हित पुरस्कार – मेडेल, गोल्ड स्टार, मानक उपधि, फिल्मफेयर अवार्ड इत्यादि।

(ग) भौतिक पुरस्कार – टाफी देना, धन देना इत्यादि।

रेली एवं लिविस ने पुरस्कार को प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए निम्न लिखित सुझाव दिये है।

1. पुरस्कार स्वंय का प्राप्त किया हुआ होना चाहिए।
2. छोटे कार्यो के लिए पुरस्कार नही देना चाहिए।
3. पुरस्कार सदैव विशिष्ट कार्य के लिए दिए जाना चाहिए, सामान्य कार्य के लिए नही।
4. छात्रों को यह पता होना चाहिए कि उसका निष्पादन दूसरे से कितना श्रेष्ठ है। प्रत्येक पुरस्कार के लिए नियम निर्धारित होने चाहिए।
5. पुरस्कार को तुरन्त दिया जाना चाहिए।

14.6.2 दण्ड –

दण्ड के द्वारा व्यक्ति मे असंतोष तथा अरूचि उत्पन्न होती है। दण्ड मुख्य रूप से दो प्रकार के होते है।

(क) मौखिक दण्ड – डाँटना, आलोचना करना इत्यादि।

(ख) शारीरिक दण्ड – सजा देना, मारना, मुर्गा बनाना इत्यादि।

जोन्स, ब्लेयर तथा सिम्पसन ने 1965 मे यह पाया कि

1. दण्ड के द्वारा ईष्या तथा विद्वेष की भावना बढ़ती है।।
2. इससे छात्रों मे संवेगात्मकता इस हद तक बढ़ती है कि इससे सीखना लगभग असम्भव हो जाता है।
3. यह विद्यार्थियों मे तनाव, चिन्ता एवं थकान उत्पन्न करती है।
4. इससे कक्षा मारेल निम्न हो जाता है।

14.6.3 श्रेणी अथवा अंक –

श्रेणी अथवा अंक भी अच्छे प्रेरक के रूप मे कार्य करते है। यह एक प्रकार के चिन्हित पुरस्कार है। सारे विद्यार्थियो को एक आधार पर श्रेणी नही देनी चाहिए क्योकि कुछ विद्यार्थी आसानी से उस श्रेणी को प्राप्त कर लेते है और

उनमे श्रेष्ठता की भावना विकसित हो जाती है जबकि अन्य विद्यार्थियों को उसी श्रेणी लाने के लिए कठोर परिश्रम करना है।

14.6.4 सफलता –

प्रेरणा देने का प्रमुख आधार है बालक को अपने कार्य मे सफल बनाना। सफलता ही व्यक्ति को किसी कार्य को करने के लिए प्रेरित करती है। अग्रेजी मे एक कहावत है "Nothing Succeed Like Success" सफलता से व्यक्ति मे आत्मविश्वास बढ़ता है यह आत्मविश्वास व्यक्ति मे पाने योग्य लक्ष्य को निर्धारित करता है।

14.6.5 प्रतिद्वन्दिता एवं सहयोग –

प्रतिद्वन्दिता कभी – कभी सकारात्मक प्रेरणा के रूप मे कार्य करती है। यह तीन प्रकार से कार्यगत होती है।

(क) छात्रो मे अपने सहयोगियो के साथ अन्तःव्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विता होनी चाहिए। परन्तु मनोवैज्ञानिको एवं शिक्षा शास्त्रियो से इसको बहुत अधिक महत्व नही दिया है।

(ख) समूह प्रतिद्वन्दिता आपस मे सहयोग की भावना का विकास करती है।

(ग) अपने स्वयं से प्रतिद्वन्दिता – इस प्रकार की प्रतिद्वन्तिा सबसे प्रभावशाली होती है तथा मानसिक स्वास्थकर्त्ताओ के द्वारा इसको प्रभावशाली बताया गया है। शिक्षा के दार्शनिक आधार के अनुसार शैक्षिक कार्यक्रम मे आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने का काम करता है। तथा व्यक्तियो मे संवेगात्मक संतोष पैदा करती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणीः (क) दिये गये रिक्त स्थान पर अपना उत्तर लिखे।

(ख) ईकाई के अन्त मे दिये गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।।

6. पुरस्कार के तीन प्रकारों के नाम लिखिए।

....

....

7. प्रतिद्वन्दिता व सहयोग मे कौन सी विधि प्रेरणा देने के लिण ज्यादा उपयुक्त है और क्यो ?

....

....

....

14.6.6 परिणाम का ज्ञान

प्रेरणा प्रदान करने की यह सबसे ज्यादा प्रभावपूर्ण विधि है। छात्रो को इस बात का ज्ञान करवाना अत्यन्त आवश्यक है कि वह जिस समूह का सदस्य है उस समूह के अन्य लोग कैसा कर रहे है। छात्र को अपनी स्वयं की उन्नति की जानकारी देनी चाहिए जिससे वह अधिक परिश्रम से कार्य कर सके।

14.6.7 नवीनता

नवीनता ज्ञान प्राप्त करने मे प्रेरणा का कार्य करती है। शिक्षक को नवीनता लाने के लिए शिक्षण की विभिन्न विधियों को प्रयोग मे लाना चाहिए।

14.6.8 महत्वाकांक्षा का स्तर

महत्वाकांक्षा का स्तर यह निर्धारित करता है कि किसी भी व्यक्ति ने अपने लिये क्या, कितना कठिन लक्ष्य निर्धारित किया है। कुछ विद्यार्थी अपने लिए अपनी योग्यतानुसार लक्ष्य निर्धारित करते है जबकि अन्य विद्यार्थी या तो बहुत उच्च या निम्न लक्ष्य निर्धारित करते है। शिक्षक का यह कर्त्तव्य है कि वह छात्रो के महत्वाकांक्षा के स्तर के आधार पर लक्ष्य निर्धारित करने मे उनकी सहायता करें।

14.6.9 रूचि

प्रेरणा प्रदान करने के लिए सर्वप्रथम शिक्षक को छात्रो की रूचियों को जानना चाहिए। बालक की पाठ मे रूचि उत्पन्न करनी चाहिए। अतः अध्यापक को पढ़ाए जाने वाले पाठ को बालक की रूचि से सम्बन्धित करना चाहिए।

14.6.10 लक्ष्य का प्रभाव

टोलमेन के अनुसार किसी भी व्यक्ति का व्यवहार लक्ष्य केन्द्रित या उद्देश्यपूर्ण होता है शिक्षक को ऐसे लक्ष्यो का निर्धारण करे जो छात्रो की आवश्यकतानुरूप हो।

14.6.11 आत्मीयता

उच्च स्तर के विद्याथियो के लिए यह विधि प्रेरणा प्रदान करने के लिए अत्यन्त सहायक होती है। इसके लिए छात्रो से प्रश्न पूछना, विषय से सम्बन्धित

कहानी सुनाना, शारीरिक क्रियाओ मे छात्रो की भागीदारी, प्रशंसा, छात्रो को नाम से सम्बोधित करना आदि विधियों को अपनाया जा सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी: (क) दिये गये रिक्त स्थान पर अपना उत्तर लिखे।

(ख) ईकाई के अन्त मे दिये गए उत्तर से अपने उत्तर की तुलना कीजिए।।

7. प्रेरण देने की प्रमुख विधियो मे से छोटे बच्चो के शिक्षण मे उपयोग मे आने वाली पाँच विधियों को सूचीबद्ध कीजिए।

....

....

....

9.. उच्च स्तर के छात्रों के लिए प्रेरणा की प्रमुख विधियों के नाम लिखे।

....

....

14.7 सारांश –

व्यक्ति के प्रत्येक कार्य और व्यवहार का परिचालन करने वाली कुछ प्रेरक शक्तियां होती है जो उसे विभिन्न परिस्थितियों मे कार्य तथा व्यवहार करने के लिए अभिप्रेरणा प्रदान करती है। अभिप्रेरणा के प्रमुख स्त्रोत आवश्यकताए, चालक उद्दीपक तथा प्रेरक है। प्रेरक का वर्गीकरण अलग–अलग मनोवैज्ञानिको ने अलग–अलग ढंग से किया है परन्तु मुख्य रूप से जन्मजात तथा अर्जित दो प्रकार के प्रेरक होते है। इस ईकाई में हमने आपको शिक्षा में अभिप्रेरणा की मुख्य विधियों के बारे में बतलाया है साथ ही प्रेरणा के प्रमुख सिद्धान्तों को बताया है। जिसमें प्रणोद सिद्धान्त, प्रोत्साहन सिद्धान्त विरोधी प्रक्रिया सिद्धान्त, आदर्श स्तर सिद्धान्त, आवश्यकता पदोनुक्रम सिद्धान्त, लक्ष्य निर्धारण सिद्धान्त प्रमुख है। सीखने की प्रक्रिया मे अभिप्रेरणा का प्रगुख कार्य है यह व्यवहार को शक्तिशाली बनाने के साथ–साथ व्यवहार का चुनाव करता है तथा उसे संचालित करता है।

14.8 अभ्यास कार्य –

अपने आस–पास के एक विद्यालय के किसी एक कक्षा का चयन कीजिए। वहाँ पर प्रेरणा प्रदान करने की शक्तियों के रूप में प्रशंसा तथा निन्दा का मूल्यांकन कीजिए।

14.9 बोध प्रश्नों के उत्तर –

1. प्रेरणा एक आन्तरिक शक्ति है जो आवश्यकता से उत्पन्न होती है और ऐसी क्रिया की ओर गतिशील होती है जो कि आवश्यकता को संतुष्ट करती है।

2. प्रेरणा के प्रमुख 4 स्त्रोत निम्नलिखित है।

   (A) आवश्यकता

   (B) चालक

   (C) उद्दीपन

   (D) प्रेरक

3. जन्मजात प्रेरक–ये प्रेरक, व्यक्ति में जन्म से पाये जाते है तथा जीवन के लिए आवश्यक होते है। इनको जैविक या शारीरिक प्रेरक भी कहते है जैसे भूख, प्यास, काम, निद्रा, विश्राम। अर्जित प्रेरक वे होते है जो सीखे जाते है इसको द्वितीय प्रेरक भी कहते है जैसे रूचि, आदत, सामुदायिकता इत्यादि।

4. ग

5. ग

6. मौखिक पुरस्कार
   चिन्हित पुरस्कार
   भौतिक पुरस्कार

7. सहयोग। कारण स्वयं की समझ से लिखे।

8. पुरस्कार
   रूचियाँ
   सफलता
   नवीनता

9. सफलता
   नवीनता
   आत्मीयता स्थापित करना

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तके

Mathur S.S.: Educational Psychology : Vinod Pustak Mandir, Agra, U.P. India.

Pathak P.D. (2008) शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।

Chauhan, S.S. (1996) Advanced Educational Psychology, Vikas Publishing House, New Delhi.

इकाई–15 स्मरण, विस्मरण तथा चिंतन

संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 स्मृति

15.4 स्मृति के भाग

- 15.4.1 सीखना
- 15.4.2 धारण
- 15.4.3 पुनर्स्मृति
- 15.4.4 पहचान

15.5 अच्छी स्मृति की विशेषताएँ

15.6 स्मृति प्रभावक तत्व

15.7 विस्मरण

15.8 विस्मरण के सिद्धांत

15.9 विस्मरण के कारण

15.10 विस्मरण का निराकरण

15.11 चिन्तन

- 15.11.1 चिन्तन की विशेषताएँ
- 15.11.2 चिन्तन प्रक्रिया
- 15.11.3 चिन्तन के प्रकार

15.12 चिन्तन प्रभावक तत्व

15.13 चिन्तन का शैक्षिक महत्व

15.14 सारांश

15.15 अभ्यास कार्य

15.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

स्मृति से तात्पर्य सीखे गये पूर्व अनुभवों को मस्तिष्क में संचित व रखने की क्षमता से होता है। सामान्यतः स्मृति के दो महत्वपूर्ण पक्ष बताये गये है। धनात्मक पक्ष तथा ऋणात्मक पक्ष। स्मृति के धनात्मक पक्ष से तात्पर्य है पूर्व या गत अनुभूतियों को मस्तिष्क में संचित रखना तथा ऋणात्मक पक्ष से तात्पर्य है इस अनुभूतियों को संचित कर पाने में असफल होना है। अतः संक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्मति का धनात्मक पक्ष स्मृति तथा ऋणात्मक पक्ष विस्मरण है। यदि हम अपनी अनुभूतियों के विषय में सोचकर या उन्हें पुनः स्मरण करके मस्तिष्क में लाते है तो इस प्रक्रिया को स्मरण की संज्ञा दी जाती है। प्रायः यह भी पाया गया है कि जो कुछ हमने याद किया है, उसका पूर्ण स्मरण नही हो पा रहा है। बहुत सी बातें विस्मृत हो जाती है। इस इकाई में स्मरण विस्मरण तथा चिन्तन सम्बन्धी प्रत्ययों के बारे में जानेंगे।

15.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप

- स्मृति, विस्मृति तथा चिन्तन को भलीं–भांति समझ पायेंगे।
- तर्क द्वारा स्मरण तथा विस्मरण को विलगित कर पायेंगे।
- विषय का विश्लेषण भलीं भांति कर पायेंगे।
- स्मृति, विस्मृति तथा चिन्तन की प्रक्रिया को रेखाचित्र द्वारा दर्शा पायेंगे।
- इन प्रक्रियाओं को दैनिक जीवन से तारतम्य स्थापित कर पायेंगे।
- स्मृति, विस्मृति तथा चिन्तन प्रक्रियाओं के चरणों को सूचीबद्ध कर पायेंगे।

15.3 स्मृति

स्मरण एक मानसिक प्रक्रिया है। जिसमें व्यक्ति धारण की गयी विषय वस्तु का पुनः स्मरण करने चेतना में लाकर उसका उपयोग करता है। किसी विषय वस्तु के धारण के लिए सर्वप्रथम विषय वस्तु का सीखना आवश्यक है। अधिगम के बिना धारण करना असम्भव है। अधिगम के फलस्वरूप प्राणी में कुछ संरचनात्मक परिवर्तन होते हैं जिन्हें स्मृति चिन्ह कहते हैं, ये स्मृति चिन्ह तब तक निष्क्रिय रूप में पड़े रहते हैं जब तक कोई बाहरी उद्दीपक उन्हें जागृत नही करता। ये स्मृति चिन्ह अर्थात संरचनात्मक परिवर्तन किस रूप में होते है यह

कहना दुष्कर है। फिर भी इनहें जैविक रासायनिक परिवर्तन स्वीकार किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने स्मरण को भिन्न भिन्न ढंग से परिभाषित किया है।

हिलगार्ड तथा एटकिन्स के अनुसार – "पूर्ववत सीखी गयी प्रतिक्रियाओं को वर्तमान समय में व्यक्त करना ही स्मरण है।"

मैक्डूगल – "स्मृति का तात्पर्य भूतकालीन घटनाओं के अनुभवों की कल्पना करना एवं पहचान लेना है कि वे स्वयं के ही भूतकालीन अनुभव है।"

15.4 स्मृति के भाग

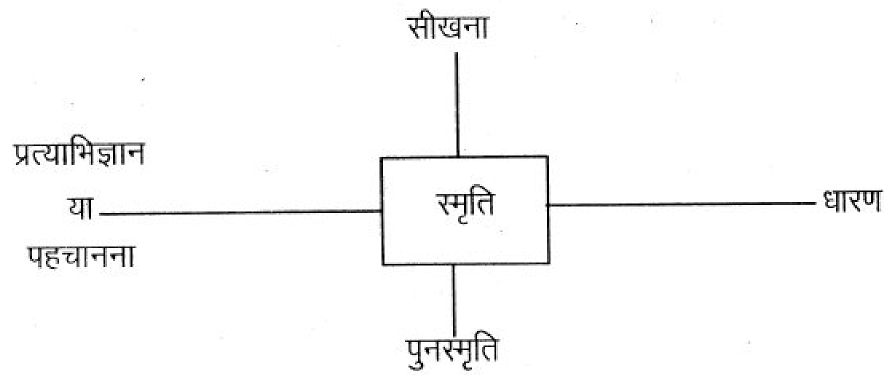

स्मृति एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। इस प्रकार का विश्लेषण किया जाए तो इसमें चार प्रमुख खण्ड सन्निहित है –

15.4.1 सीखना –

स्मृति प्रक्रिया में सर्वप्रथम सीखने की क्रिया होता है। हम नित्यप्रति नवीन क्रियाओं को सीखते हैं। सीखने का क्रम जीवन पर्यन्त चलता रहता है। सीखने के पश्चात हम सीखे हुए अनुभव का स्मरण करते हैं। अर्थात अधिगम या सीखना प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूपेण स्मृति को प्रभावित करता है। सीखना जितना प्रभावकारी होगा, स्मृति उतनी तेज होगी।

15.4.2 धारण –

वुडवर्थ तथा श्लास वर्ग के अनुसार धारण स्मृति की चार प्रक्रियाओं में से एक है। प्राप्त किये गये अनुभव मस्तिष्क पर कुछ चिन्ह छोड़ जाते हैं। ये चिन्ह नष्ट नही होते। कुछ समय तक तो ये चिन्ह चेतन मस्तिष्क में रहते हैं, फिर अचेतन मस्तिष्क में चले जाते हैं।

धारण को प्रभावित करने वाले कारक

1. मस्तिष्क की बनावट
2. सीखने की मात्रा
   - सीखे गये विषय का स्वरूप
     - विषय की सार्थकता
     - विषय की लम्बाई
     - सीखे गये विषय का क्रम में स्थान
     - सीखे गये विषय का वातावरण
     - सीखे गये विषय की भावानुभूति
   - सीखने की विधियाँ
     - अविराम तथा विराम विधि
     - पूर्ण तथा आंशिक विधि
     - आवृत्ति द्वारा स्मरण
3. धारणकर्ता की विशेषता
   - आयु
   - स्वास्थ्य
   - मौन
   - बुद्धि
   - अभिरूचि
   - सीखने की इच्छा

15.4.3 पुनस्मृति

पुनर्स्मृति स्मृति प्रक्रिया का तीसरा महत्वपूर्ण खण्ड है। यह वह मानसिक प्रक्रिया है जिसमें पूर्व प्राप्त अनुभवों को बिना मौलिक उद्दीपक के उपस्थित हुए वर्तमान चेतना में पुनः लाने का प्रयास किया जाता है। पुनर्स्मृति कहलाती है। जिन तथ्यों का धारणा उचित ढंग से नही हो पाता उनका पुनस्मृर्ति करने में कठिनाई होती है।

15.4.4 पहचान –

पहचानना स्मृति का चौथा अंग है। पहचान से तात्पर्य उस वस्तु को जानने से है जिसे पूर्व समय में धारण किया गया है। अतः पहचान से तात्पर्य पुनः स्मरण में किसी प्रकार की त्रुटि न करना है। सामान्यतः पुनः स्मरण तथा पहचान की क्रियाएं साथ–साथ चलती हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

1) स्मृति को परिभाषित करें?

....

....

2) स्मृति के प्रमुख भाग लिखें?

....

....

....

15.5 अच्छी स्मृति के विशेषताएं

अच्छी स्मृति की प्रमुख विशेषताएं निम्नवत् है।

1. **शीघ्र अधिगम**– जिस वस्तु को शीघ्र देखा जाता है, वह उतनी ही अच्छी तरह स्मरण हो जाती है। शीघ्र सीखने पर सीखने की विधियों, वातावरण तथा योग्यता का प्रभाव पड़ता है।

2. **उत्तम धारण**– जितनी अच्छी धारण शक्ति होगी उतनी अच्छी स्मृति समझी जायेंगी। जो व्यक्ति किसी अनुभव को अधिक समय तक धारण कर सकता है। वह अच्छी स्मृति वाला कहलाता है। जिस छात्र की ध ारणा शक्ति कमजोर होती है, उसकी स्मृति क्षीण होती है।

3. **शीघ्र प्रत्यास्मरण**– स्मृति की विशेषता यह है कि जो कुछ भी याद किया जाये या अनुभव प्राप्त हो, उसका प्रत्यास्मरण शीघ्र हो जाये। प्रायः ऐसे व्यक्तियों का अभाव नहीं जो यह कहते सुने जाएं कि उन्हें कुछ याद आ रहा है। अच्छी स्मृति वाला व्यक्ति पूर्वानुभवों का प्रत्यास्मरण शीघ्र कर लेता है।

4. **शीघ्र अभिज्ञान**– अच्छी स्मृति की एक आवश्यक विशेषता शीघ्र पहचानने की भी है। अच्छी स्मृति वाला व्यक्ति सम्बन्धित अनुभवों तथा प्रतिमाओं को शीघ्र पहचान लेता है।

15.6 स्मृति प्रभावक तत्व

स्मृति का शिक्षा में अत्याधिक महत्व है। यह सर्वविदित है कि अर्जित शैक्षणिक उपलब्धियों का आधार ही स्मृति है। स्मृति के आधार पर ही बालक का मूल्यांकन किया जाता है। जो बालक क्षीण स्मृति के कारण परीक्षा के प्रश्नों का उत्तर भलीं–भांति नही दे पाते, वे भले ही अन्य योग्यताओं में निष्पात हों, उनकी सफलता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संदिग्ध समझी जाती है।

स्मृति को प्रभावित करने वाले तत्व प्रमुख है –

1. **मानसिक स्थिति–** किसी अनुभव को उस समय तक स्मृति जन्य नहीं बनाया जा सकता जब तक छात्रों को मानसिक रूप से किसी तथ्य को स्मरण योग्य नही बना लिया जाता।
2. **प्रेरणा–** किसी ज्ञान या अनुभव को बहुत समय तक स्मरण करने के लिए या उसे ग्रहण करने के लिए आवश्यक है कि छात्रों में उस विषय के प्रति प्रेरणा उत्पन्न हो।
3. **सार्थक सामग्री–** स्मरण की जाने योग्य सामग्री यदि सार्थक सामग्री नही हैं तो उसे वे याद करने के पश्चात भी भूल जायेंगे।
4. **दोहराना–** छात्रों को याद की जाने वाली वस्तुओं का अभ्यास बार–बार कराया जाना चाहिए। यदि दोहराने की प्रक्रिया में कहीं पर कमी रहेगी तो स्मरण उतना ही क्षीण हो जायेगा।
5. **शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य–** जो बालक शारीरिक या मानसिक रूप से स्वस्थ नही होते वे किसी बात को स्मरण करने में सुविधा अनुभव नही करते। इसके विपरीत शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ बालक किसी भी तथ्य को सहज ही स्मरण कर लेते हैं।
6. **अधिगम की विधियाँ–** स्मृति पर इस बात का भी प्रभाव पड़ता है कि किसी तथ्य को किस विधि से पढ़ाया गया है। विधि का प्रयोग यदि उचित आयु समूह के बालकों पर होता है। तो पाठ्यविषय निश्चित रूप से अच्छा याद हो जायेगा।
7. **पाठ्य सामग्री–** स्मृति इस बात से भी प्रभावित होती है कि पाठ्य सामग्री की प्रकृति किस प्रकार की है। मनोवैज्ञानिकों ने अच्छी पाठ्य सामग्री के विषय में कहा है–

   क) पाठ्य सामग्री नवीन होनी चाहिए। नवीन पाठ्य सामग्री छात्रों में प्रेरणा तथा कौतुहल उत्पन्न करती है। नवीन पाठ्य सामग्री को पूर्वज्ञान के

आधार पर विकसित किया जाये।

ख) पाठ्य सामग्री में उत्तेजना की तीव्रता का होना आवश्यक है। यदि पाठ्य सामग्री का प्रभाव उत्तेजक है तो उसका प्रभाव स्मृति पर पड़ेगा।

ग) पाठ्य सामग्री में विषय स्पष्ट होना चाहिए। अस्पष्ट विषय छात्रों को याद नही रह पाते।

8. **परीक्षण–** समय–समय पर सम्बन्धित विषयों का परीक्षण करके छात्रों की स्मृति को विकसित किया जा सकता है। परीक्षणों से छात्रों को स्मरण का अभ्यास होता है।

9. **स्मरण की इच्छा–** यदि बालक किन्हीं तथ्यों को स्मरण न रखना चाहे तो उसे बाध्य नही किया जा सकता। अतः सिखाये जाने वाले अनुभवों के प्रति छात्र की इच्छा तथा रूचि को जागृत करना आवश्यक है। यदि छात्र किसी चीज को सीखना नही चाहता है तो उसके साथ जबरदस्ती नही की जा सकती। सीखने के लिए सीखने वाले की इच्छा शक्ति का होना आवश्यक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

3) अच्छी स्मृति की विशेषताएं लिखिए।

....

....

....

4) स्मृति को प्रभावित करने वाले कारकों का उल्लेख करें।

....

....

....

15.7 विस्मरण

विस्मरण से तात्पर्य स्मरण की विफलता से है जब व्यक्ति अपने भूतकाल के अनुभवों को चेतन में लाने में असफल हो जाता है, तब उसे विस्मृति कहते

हैं। जिस प्रकार से जीवन को उपयोगी तथा सुखी बनाने के लिए स्मृति आवश्यक है, उसी प्रकार हमारे जीवन में विस्मृति की भी उपयोगिता तथा महत्व है।

मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए भी बहुत सी बातों की विस्मृति बहुत आवश्यक है। यदि अतीत के अनुभव व्यक्ति को सदैव परेशान करते रहते है। और वह अनेक प्रकार के मानसिक रोगों को उत्पन्न करते है। तो दुखद घटनाओं को भूल जाना लाभप्रद है।

मन के अनुसार – "सीखी गई बातों को धारण रखने या पुनः स्मरण रखने की असफलता विस्मरण है"

ड्रेवर के अनुसार – "विस्मरण से तात्पर्य किसी समय प्रयास करने पर भी किसी पूर्व अनुभव को याद करने अथवा सीखे गये कार्य को करने में असफलता से है।"

15.8 विस्मरण के सिद्धान्त

विस्मरण के प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार है–

1) **निष्क्रिय या अनुप्रयोग का सिद्धान्त–** विस्मरण मस्तिष्क में स्मरण चिन्हों के धुंधले होने के कारण होता है। स्मरण चिन्हों का बहुत समय तक उपयोग न होने से भी विस्मरणों की प्रक्रिया को बल मिलता है समय के अन्तराल के साथ–साथ विस्मरण बढ़ता है।

2) **पूर्व प्रभावी बाधाओं का सिद्धान्त–** अधिगम की भांति विस्मरण भी एक सक्रिय क्रिया है यह स्मृति चिन्हों के हलके पड़ने के कारण ही नहीं होती है। पुराने तथा नये अनुभवों के मध्य प्रतिक्रिया होने से विस्मरण की सक्रिय क्रिया होती है। बाद में सीखी गई क्रिया पूर्व क्रिया के प्रत्येक स्मरण में बाधा उपस्थित है। और व्यक्ति भूलने लगता है।

3) **उद्दीपन दशाओं में परिवर्तन–** प्रत्यास्मरण की प्रक्रिया के दौरान उद्दीपन की दशाओं में परिवर्तन होने से भी विस्मरण की क्रिया सम्पन्न होती है। उदाहरणार्थ -- एक कक्षा में पढ़ाया जाना तथा दूसरी कक्षा में परीक्षा लेना कई बार विस्मरण को बढ़ावा देता है।

4) **सोद्देश्य विस्मरण–** हम जिन तथ्यों को पसन्द नहीं करते उनको भूलने का प्रयत्न करते है। व्यक्ति कई बार कह देता है 'मैं भूल गया।'

5) **असामान्य विस्मरण–** विस्मरण के सिद्धान्तों की असामान्य दशायें एमनीशिया अर्थात स्मरण क्षति है। मानसिक आघात के कारण अतीत के अनुभव विस्मृत हो जाते है।

15.9 विस्मरण के कारण

विस्मरण को प्रभावित करने वाले कारण इस प्रकार है।

1. **विषय का निरर्थक–** जो विषय सामग्री निरर्थक होती है। उसका सम्बन्ध पूर्व अनुभवों से स्थापित नही हो पाता। निरर्थक विषयों का उपयोग हमारे दैनिक जीवन में किसी भी कार्य की सिद्धि नही करता।

2. **समय का प्रभाव–** समय के साथ विस्मृति की मात्रा बढ़ती चली जाती है। बड़े लोग कई बार यह कहते सुने जाते है कि उनकी स्मरण शाक्ति क्षीण होती चली जाती है। हैरिस का विचार है कि किसी समय से सीखे गये अनुभव कालान्तर में परीक्षण करने पर विस्मृत जान पड़ते है।

3. **बाधक क्रिया और उसका प्रभाव–** इस मत के अनुसार नवीन अनुभव प्राचीन संस्कारों के प्रत्यास्मरण में बाधा पहुँचाते है। इसका कारण बताते हुए कहा गया है कि विस्मृति एक सक्रिय मानसिक क्रिया है अनुभवों में बाधा पहुँचाने से अनुभवों की विस्मृति हो जाती है।

4. **दमनः–मनोविश्लेषण–** वादियों के अनुसार विस्मरण का मुख्य कारण दुखद अनुभव है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह सुखद अनुभवों का स्मरण करता है और दुखद अनुभवों का विस्मरण करने का प्रयत्न करता है। यह क्रिया दमन कहलाती है।

5. **अभ्यास की न्युनता** –भनिडाइक ने विस्मरण का कारण अभ्यास का अभाव बताया है। बार–बार किया गया अभ्यास स्मरण में सहायक होता है। अभ्यास के अभाव में विस्मरण को प्रश्रम मिलता है।

6. **संवेगो की उत्तेजना–** संवेगात्मक स्थिति में व्यक्ति भूल जाता है। सामान्तया गुस्से से व्यक्ति की आंगिक चेष्टाएं प्रबल हो जाती है और वह जो कुछ कहना चाहता है, उसके विपरीत और कहना आरम्भ कर देता है।

7. **मानसिक आघात** –कभी–कभी मानसिक आघात के कारण स्मृति पूर्णरूपेण ही समाप्त हो जाती है। उस समय तक अर्जित अनुभवों का समापन हो जाता है। साथ ही यदि मस्तिष्क में चोट कम लगती है तो विस्मरण का प्रभाव पड़ता है।

8. **मादक द्रव्य** – मादक द्रव्य का सेवन करने वाले व्यक्तियों की स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है।

9. **अधिगम की विधियाँ** :– अध्यापक यदि शिक्षण विधियों का प्रयोग छात्रों के स्तरानुकूल नहीं करता है तो विस्मरण को बढावा मिलता है।

10. **क्रमहीनता** :–यदि कोई अधिगम सामग्री निश्चित क्रम के अनुसार नही स्मरण की जाती तो उसकी विस्मृति के अवसर बढ़ जाते है।

15.10 विस्मरण का निराकरण

विस्मरण के निराकरण के लिए सामान्यतः इन सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए।

1. **अवधान केन्द्रित करना**– अधिगम विषय पर गहन ध्यान केन्द्रित किया जाना चाहिए।

2. **साहचर्य**– जो अनुभव पहले से अर्जित किये जा जुके है, नवीन ज्ञान तथा अनुभवों के साथ उसका साहचर्य सम्बन्धित किया जाये। इसके साथ ही अनके प्रतिमाओं जैसे दृश्य, श्रव्य, संवेदनशील, सम्प्रक, मुक्त का निर्माण किया जाए।

3. **लय तथा पाठ**– स्मरण का मुख्य निर्माण अंग लय तथा पाठ है। पाढय सामग्री की प्रकृति के अनुसार लय तथा पाठ का उपयोग शिक्षक को करना चाहिए।

4. **समय विभाजन**– पाठन सामग्री की प्रकृति के अनुसार स्मरण करने के लिए समय का विभाजन कर देना चाहिए।

5. **विश्राम**– प्रत्येक विषय को याद कर लेने के पश्चात अध्यापक को चाहिए कि वह छात्रों को विश्रात दे। इस प्रकार प्रष्ठोन्मुख अवरोध दूर किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए–

5) विस्मरण से आप क्या समझते है ?

....

....

6) बच्चें पाठ्य सामग्री को शीघ्र क्यों भूल जाते है ? कारण लिखिए।

....

....

....

7) विस्मरण दूर करने के कुछ उपाय लिखिये ?

....

....

....

15.11 चिन्तन

मानव को अपनी इच्छाओं या लक्ष्यों की पूर्ति के लिए अनेक प्रयत्न करने पड़ते है। कभी–कभी व प्रयत्न बिना किसी बाधा के पूर्ण हो जाते है और कभी–कभी इन बाधाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए विचार करना पड़ता है। विचार या चिन्तन मनुष्यों की विशेषता है। डेकार्ट ने मनुष्य तथा पशुओ का अन्तर बताते समय कहा है कि चूंकि व्यक्ति विचार करता है इसीलिए वह पशुओं से श्रेष्ठ है। चिन्तन को समस्या समाधान की ओर उन्मुख होने वाली मानसिक प्राक्रिया के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। चिन्तन के द्वारा व्यक्ति अपनी विभिन्न समस्याओं का समाधान करता है। मनोवैज्ञानिकों ने चिन्तन को एक जटिल प्रक्रिया माना है। विभिन्‍न मर्नाषियों ने चिन्तन को भिन्न–भिन्न शब्दों में परिभास्ति किया है।

रॉस के अनुसार – "चिन्तन ज्ञानात्मक वक्ष की मानसिक क्रिया है।"

वेलेन्टाइन के शब्दों में – "चिन्तन शब्द का प्रयोग उस क्रिया के लिए किया जाता है, जिसमें श्रृंखलाबद्ध विचार किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य की ओर प्रवाहित होते है।

15.11.1 चिन्तन की विशेषताए –

चिन्तन की प्रमुख विशेषताए निम्नलिखित है।

1. चिन्तन एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमें अनेक सरल मानसिक प्रक्रियाएँ निहित रहती है।
2. चिन्तन का आरम्भ किसी समस्या, कठिनाई, असन्तोष अथवा इच्छा के उत्पन्न होने पर होता है।
3. चिन्तन के फलस्वरूप व्यक्ति की समस्या का समाधन होता है।

4. चिन्तन स्थूल से सूक्ष्म की ओर होता है।
5. चिन्तन उद्देश्यपूर्ण होता है, इसीलिए इसका अभिप्रेरणा से प्रभावित होना स्वाभाविक है।
6. चिन्तन व्यक्ति को क्रियाशील बनाता है।
7. चिन्तन में पूर्वानुभवों का उपयोग निहित रहता है।
8. चिन्तन वातावरण के साथ व्यक्ति की अन्तक्रिया का एक पक्ष है।
9. चिन्तन व्यक्ति के व्यवहार के अन्य पक्षों से भी सम्बन्धित है।

15.11.2 चिन्तन प्रक्रिया –

चिन्तन प्रक्रिया को निम्नलिखित पाँच सोपनो में विश्लेषित करके समक्षा जा सकता है।

(क) **किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होना–** व्यक्ति के सम्मुख जब कोई समस्या उत्पन्न होती है तब वह उस समस्या का समाधान करने के लिए चिन्तन करता है। चिन्तन लक्ष्य समस्या को दूर करना होता है।

(ख) **लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रयास करना–** चिन्तन में व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत रहता है। उसका प्रयास होता है कि शीघातिशीध्र समस्या का समाधान हो जाये।

(ग) **पूर्व अनुभवों का स्मरण करना–** चिन्तन में व्यक्ति अपने पुराने अनुभवों को पुनः स्मरण करता है जिससे उनके आधार पर वह वर्तमान समस्या का समाधान करने में समर्थ हो सके।

(घ) **पूर्व अनुभवों को वर्तमान समस्या से संयोजित करना–** जब व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर वर्तमान समस्या का समाधान खोजने का प्रयास करता है तब उसके सम्मुख समस्या के अनेक संभावित समाधान उपस्थित होने लगते है।

(ङ) **समाधान की सार्थकता देखना–** यह चिन्तनकर्ता के मस्तिष्क के सम्बन्ध में कई समाधान प्रस्तुत हो जाते है वह उनमें से किसी एक समाधान का चयन करता है तथा उसे व्यवहारिक रूप देकर समस्या के समाधान में उसकी सार्थकता प्रमाणित करता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए–

8) चिन्तन की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

....

....

....

9) सामान्यतः एक व्यक्ति चिंतन करते समय किन प्रक्रियाओं का सहारा लेता है?

....

....

....

15.11.3 चिन्तन के प्रकार–

चिन्तन मुख्यतः तीन प्रकार का होता है–

1. **प्रत्यक्षात्मक चिन्तन** – यह सर्वाधिक निम्न स्तर का चिन्तन है जो प्रायः छोटे बालकों तथा पशुओं में पाया जाता है। इस प्रकार चिन्तन का मुख्य आधार संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इस प्रकार के चिन्तन में भाषा अथवा संकेतों का प्रयोग नही किया जाता है। यह चिन्तन किसी प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित घटना पर आधारित होता है। उदाहरणार्थ एक बार अग्नि से जल जाने वाला बालक पुनः अग्नि को देखता है और सोच लेता है कि अग्नि के पास जाने पर मैं जल जाउँगा।

2. **कल्पनात्मक चिन्तन**– कल्पनात्मक चिन्तन का आधार मानसिक प्रतिमाएं होती है। इस प्रकार के चिन्तन में कोई वस्तु अथवा परिस्थिति प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित नही होती है अर्थात इसमें प्रत्यक्षीकरण का अभाव होता है। इसमें व्यक्ति उद्दीपक के सम्मुख न होने पर भी स्मृति के आधार पर भविष्य के विषय में सोचता है।

3. **प्रत्यात्मक चिन्तन** – यह चिन्तन का सर्वोच्च रूप है। इस प्रकार के चिन्तन में पूर्व निर्मित प्रत्ययों के आधार पर प्राणी चिन्तन करता है। इस

प्रकार के चिन्तन में भाषा तथा संकेतों का प्रयोग किया जाता है। प्रत्यात्मक चिन्तन एक अत्यंत जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति पुराने अनुभवों के आधार पर अपनी वर्तमान समस्या का सूक्ष्मतम विश्लेषण करता है तथा उसके सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है।

15.12 चिन्तन प्रभावक तत्व

चिन्तन पर अनेक प्रतिकारकों का प्रभाव पड़ता है, में प्रतिकारक इस प्रकार है।

1. **सशक्त प्रेरणा–** प्रेरणा के अभाव में सशक्त एवं व्यवस्थित चिन्तन सम्भव नही है। चिन्तन के द्वारा किसी समस्या का समाधान खोजा जाता है। अतः प्रेरणा किसी समस्या के समाधान के लिए जितनी अधिक शक्तिं का संचालन करेगी, चिन्तन उतना ही अधिक सशक्त होगा।
2. **लगन तथा रूचि–** समस्या के समाधान में हमारी रूचि तथा क्रिया का प्रमुख योग है। समस्या उपस्थित होने पर रूचि, लगन, अवधान आदि लक्षण सभी साथ–साथ काम करते हैं।
3. **सर्तकता एवं लचीलापन–** सर्तकता तथा लचीलापन हमें रूढ़िवादी विचारों और असफल क्रिया विधियों से उकसाकर उपयुक्त तथा नवीन सांकेतिक विधियों का समस्या पूर्ति में उपयोग करने योग्य बनाते हैं।
4. **बुद्धि–** कुछ विद्वानों ने चिन्तन की क्रिया तथा बुद्धि को एक ही माना है। बुद्धि चिन्तन की अभियोग्यता है। बुद्धिमान व्यक्ति अच्छा चिन्तन कर सकते है। चिन्तन में अन्तदृष्टि तथा पश्चात दृष्टि, बुद्धि के क्षेत्र में व्यापकता होने पर सहायक होती है।
5. **समय–सीमा अवधि–** चिन्तन में समय लगता है। यदि समस्या समाधान किया जा रहा है तो उस समय की सीमा अवधि कठोर नही होनी चाहिए।

15.13 चिन्तन का शैक्षिक महत्व

सफल जीवन के लिए चिन्तन अत्यन्त आवश्यक है। यह व्यक्ति की वह मानसिक क्रिया है जो उसे अन्य व्यक्तियों से श्रेष्ठ बनाती है। शैक्षिक अथवा व्यावसायिक क्षेत्रों में सफलता प्राप्त करने में व्यक्ति की चिन्तन शक्ति का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। अतः अध्यापकों को बालकों की चिन्तन शक्ति को विकसित करने के लिए यथासम्भव प्रयास करने चाहिए। प्रत्यक्षीकरण, विस्तृत

अनुभव, प्रत्यय निर्माण, भाषा विकास, विचार अभिव्यक्ति आदि को प्रोत्साहित करके अध्यापक बालकों की चिन्तन शक्ति के विकास में सहायता कर सकते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखिए।

ख) अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तरों की तुलना कीजिए–

10) चिन्तन कितने प्रकार का होता है?

....

....

....

11) चिन्तन को कौन कौन से कारक प्रभावित करते हैं?

....

....

....

15.14 सारांश

स्मृति पूर्व में सीखे गये अनुभवों को मस्तिष्क में बनाये रखना की क्षमता होती है। स्मृति एक जटिल प्रक्रिया है। जिसमें सीखना, धारण शक्ति, पुनस्मृर्ति व पहचान इसकी प्रमुख प्रक्रियायें है। कोई भी सामग्री मस्तिष्क में तभी संचित हो सकती है जबकि स्मृति की समस्त प्रक्रियायें ठीक प्रकार से कार्य कर रही हो। किसी व्यक्ति की स्मरण क्षमता तभी अच्छी कही जा सकती है जबकि वह विषय सामग्री को जल्दी याद कर ले व मस्तिष्क में धारण करते हुये आवश्यकता पड़ने पर शीघ्र याद करे पहचान ले। एक व्यक्ति की स्मृति क्षमता दूसरे से भिन्न होती है, इसके लिये वह कारक उत्तरदायी है जोकि स्मृति को प्रभावित करते हैं।

स्मृति का ऋणात्मक पक्ष विस्मरण है। विस्मरण क्यों होता है इस सम्बन्ध में अलग–अलग मनोवैज्ञानिकों ने अपने सिद्धान्त बताये हैं। विषय सामग्री पर ध्यान देना, साहचर्य नियमों का पालन करना, समय चक्र विभाजन आदि पर ध्यान देने से विस्मरण को रोका जा सकता है।

चिन्तन का प्रारम्भ तब होता है जबकि व्यक्ति के सामने कोई समस्या आ

जाती है। समस्या आने पर व्यक्ति उस समस्या को दूर करने का प्रयास करता है। जिसमें व्यक्ति पूर्व में प्राप्त अनुभवों को वर्तमान अनुभवों से जोड़ता है। जिससे वह समस्या का समाधान कर सके। प्रत्यक्षात्मक चिन्तम, कल्पनात्मक चिंतन, प्रत्यात्मक चिंतन, चिंतन के ही विभिन्न प्रकार है। व्यक्ति की बुद्धि क्षमता, रूचि, प्रेरणा आदि कई कारक चिंतन क्षमता को प्रभावित करते हैं। अतः एक अध्यापक का यह प्रयास होना चाहिए कि अपने विद्यार्थियों में चिंतन शक्ति का सही विकास कर सके।

15.15 अभ्यास कार्य

1. धारणा शक्ति को प्रभावित करने वाले कारकों की विवेचना कीजिए।
2. विस्मरण के प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना करें।
3. एक अध्यापक के रूप में बच्चों की चिंतनशक्ति को विकसित करने के लिये आप क्या कर सकते हैं, लिखिए।

15.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. स्मृति एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति पूर्व में सीखी गयी विषय वस्तु को वर्तमान समय में चेतन में लाता है।
2. – सीखना
   – धारणा
   – पुनर्स्मृति
   – पहचान
3. – शीघ्र अधिगम
   – उत्तम धारण शक्ति
   – शीघ्र प्रत्यास्मरण
   – शीघ्र पहचान
4. – मानसिक अवस्था
   – प्रेरण शक्ति
   – सामग्री की सार्थकता
   – शारीरिक स्थिति

– सीखने की विधि

5. पूर्व में सीखी गयी सामग्री को पुनः स्मरण करने में असमर्थता।

6. – विषय सामग्री की निरर्थकता
   – समय
   – नवीन अनुभवों का संचयन
   – अभ्यास की कमी
   – संवेगात्मक प्रभाव
   – अधिगम की त्रुटिपूर्ण विधियां आदि

7. जो कारक विस्मरण लाते है उन कारकों का निराकरण करना। साथ ही ध्यान केन्द्रण पर बल देते हुए, साहचर्य के नियमों आदि का पालन करते हुए विस्मरण दूर किया जा सकता है।

8. – समस्यात्मक परिस्थिति होने पर चिंतन का प्रारम्भ होना
   – स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना
   – चिंतन उद्देश्यपूर्ण होता है
   – व्यक्ति को सक्रिय बनाता है।

9. – लक्ष्य की ओर उन्मुखी व्यवहार
   – लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास करना
   – पूर्व अनुभवों से लाभ उठाना
   – सही समस्या समाधान पर चिंतन करना

10. – प्रत्यक्षात्मक चिंतन
    – कल्पनात्मक चिंतन
    – प्रत्यात्मक चिंतन

11. – प्रेरणा की मात्रा
    – रूचि
    – सर्तकता व लचीलापन
    – बौद्धिक क्षमता

15.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

सिंह, ए0के0 (1994) : शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पटना।

गुप्ता, एस0पी0 एवं गुप्ता, अलका (2002) शिक्षा मनोविज्ञान शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

इकाई 16 विशिष्ट बालकों की शिक्षा

संरचना

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 विशिष्ट बालका का अर्थ

16.4 विशिष्ट बालकों का वर्गीकरण

16.5 शारीरिक विकलांग बालक

16.5.1 दृष्टि विकलांगता

16.5.2 श्रवण विकलांगता

16.5.3 वाणी दोष

16.5.3 अस्थि विकलांगता

16.6 मानसिक रूप से विशिष्ट बालक

16.6.1 प्रतिभाशाली बालक

16.6.2 मानसिक मंद बालक

16.7 शैक्षिक रूप से विशिष्ट बालक

16.7.1 शैक्षिक पिछडे बालक

16.7.2 सीखने में अक्षम बालक

16.8 सामजिक रूप से विशिष्ट बालक

16.8.1 बाल–अपराधी

16.8.2 मादक–द्रव्य व्यसनी

16.9 सारांश

16.10 अभ्यास कार्य

16.11 बोध प्रश्नो के उत्तर

16.12 कुछ उपयोगी पुस्तके

16.1 प्रस्तावना

इस ईकाई में हम विशिष्ट बालक का प्रत्यय तथा विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालकों के बारे में विस्तृत परिचर्चा करेंगे। साथ ही आपको विभिन्न प्रकार

के विशिष्ट बालको की शिक्षा व्यवस्था से भी अवगत करायेंगे। किसी भी राष्ट्र का विकास उसके संसाधनो का सही प्रकार से उपयोग पर ही निर्भर करता है। मानवीय संसाधनो का तात्पर्य है कि प्रत्येक व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ होने के साथ–साथ व्यक्तिगत विभिन्नताओ को ध्यान मे रखते हुये उसे शिक्षण तथा प्रशिक्षण दिया जाए जिससे उनकी समस्त क्षमताओ और योग्यताओं का ठीक प्रकार से प्रयोग कर राष्ट्र के विकास मे योगदान लिया जा सके।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात, आप :

- विशिष्ट बालको का अर्थ समझकर परिभाषित कर सकेंगे।
- विशिष्ट बालको एवं सामान्य बालको में अन्तर कर सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालको की व्याख्या कर सकेंगे।
- विशिष्ट शिक्षा के प्रत्यय को समझ सकेंगे।
- विशेष शिक्षा देने मे आने वाली कठिनाईयो से अवगत हो सकेंगे।

16.3 विशिष्ट बालक का अर्थ

विशिष्ट बालको को जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि सामान्य बालक किसे कहते है। विद्यालय में हर समाज, हर वर्ग तथा भिन्न–भिन्न परिवारो से बालक आते है ये सभी विभिन्न होते हुये भी सामान्य कहलाते है। परन्तु कुछ ऐसे भी होते है तो शारीरिक, मानसिक, शैक्षिक एवं सामाजिक गुणो की दृष्टि से अन्य बालको से भिन्न होते है। सामान्य बालक वे होते है जिनका शारीरिक स्वास्थ एवं बनावट इस प्रकार की होती है कि उन्हे सामान्य कार्य करने मे किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नही होता है। जिनकी बुद्धि लब्धि औसत (90 से 110) के बीच होती है। ऐसे बालको की शैक्षिक उपलब्धि कक्षा के अधिकांश बालको के समान होती है।

क्रूशैंक के अनुसार–"एक विशिष्ट बालक वह है, जो शारीरिक, बौद्धिक, संवेगात्मक एवं सामाजिक रूप, सामान्य बुद्धि एवं विकास की दृष्टि से इतने अधिक विचलित होते है कि नियमित कक्षा– कार्यक्रमो से लाभान्वित नही हो सकते है तथा जिसे विद्यालय में विशेष देखरेख की आवश्यकता होती है।"

बोध प्रश्न

1. सही उत्तर पर निशान लगाइये

(क) विशिष्ट बालक शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक रूप से सामान्य बालको से भिन्न होते है।

(ख) विशिष्ट बालक नियमित कक्षाओं से लाभान्वित होते है।

(ग) विशिष्ट बालक प्रत्येक परिवार में पाये जा सकजे है।

(घ) विशिष्ट बालको के अन्दर छिपे हुये गुणो का पता लगाना कठिन है।

16.4 विशिष्ट बालको का वर्गीकरण

विशिष्ट बालक सामान्य बालको से भिन्न होते है। विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालक आपस में भी एक दूसरे से भिन्न होते है। ये भिन्न बौद्धिक योग्यताओं में, शारीरिक योग्यताओ मे या शैक्षिक उपलब्धि मे हो सकते है।

मुख्य रूप से सभी प्रकार के विशिष्ट बालको को चार वर्गो मे विभाजित किया है।

विशिष्ट बालक

शारीरिक रूप से विशिष्ट	मानसिक रूप से विशिष्ट	शैक्षित रूप से विशिष्ट	सामाजिक रूप से विशिष्ट
1) दृष्टि विकलांग बालक	1) प्रतिभा सम्पन्न बालक	1) शैक्षिक तीव बालक	1) कुसमायोजित बालक
2) वाणी विकलाग बालक	2) सृजनात्मक बालक	2) शैक्षिक रूप से पिछड़े बालक	2) समस्यात्मक बालक
3) श्रवण दुर्बल बालक	3) मानसिक मंद बालक	3) सीखने मे अयोग्य बालक	3) बाल अपराधी
4) गत्यात्मक अक्षम बालक			4) विचलित बालक
			5) नशे के आदी बालक
			6) संवेगात्मक रूप से विचलित बालक

16.5 शारीरिक विकलांग बालक

विकलांगों की शिक्षा हमारी लोकतात्रिक आवश्यकता है। यद्यपि विकलांगो के लिए विशेष शिक्षा और समन्वित शिक्षा की व्यवस्था की गई है लेकिन विकलांगो की संख्या को देखते हुए यह नगण्य है। विश्व विकलांग जनसंख्या के करीब 80 प्रतिशत विकलांग विकासशील देशो में रहते है। शारीरिक विकलांगता के क्षेत्र मे नेत्रहीन, मूक और बधिर, विषमांग, विरूपति, विकृत हड्डी, लूले – लगड़े आते है।

16.5.1 दृष्टि विकलांगता

दृष्टि विकलांगता मानव समाज की सबसे दुखद स्थिति है यद्यपि वर्तमान समाज मे उपयोगी अनुसंधान के परिणामस्वरूप अनेक विशेष विद्यालयों की स्थापना हुई थी। इस विकलांगता के प्रमुख कारण संक्रामक रोग, दुर्घटना या चोट, वंशानुपात प्रभाव, परिवेश का प्रभाव तथा विषैले पदार्थो का प्रयोग आता है। 60 से 70 प्रतिशत बच्चे संक्रामक रोग के कारण दृष्टिहीन होते है। दृष्टिहीन बालको को छह वर्गो का विभाजन शिक्षा की दृष्टि से उपयुक्त माना गया है।

1. जन्मजात अथवा पूर्णाध वर्ग– इस वर्ग में पांच वर्ष के पूर्णाध आते है।
2. इसमे वे पूर्णांध आते है जो 5 वर्ष के बाद दृष्टि खो बैठते है।
3. आंशिक जन्मांध वर्ग मे दृष्टि कमजोर होती है। ऐसे बालक थोड़ा बहुत देख सकते है।
4. आंशिक अंधता वर्ग में आंशिक दृष्टिहीन बालक आते है जिनकी दृष्टि किसी विकार, रोग के कारण किसी भी आयु मे कमजोर हो जाते है।
5. आंशिक जन्मजात दृष्टि वर्ग के बालक केवल नाममात्र ही देख पाते है।
6. आंशिक दृष्टि वर्ग के बालक किसी कारण से सामान्य दृष्टि खो देते है।

16.5.2 श्रवण विकलांगता –

शारीरिक विकलांगता के अन्तर्गत दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग मूक – बधिर विकंलागो का है। इसके अन्तर्गत वे बालक आते है जो किसी कारण से पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से सुनने मे असमर्थ होते है। ये वंशानुक्रम या वातावरण किसी भी कारण से हो सकता है।

श्रवण दोष के कारण

जन्म से पूर्व के कारण	जन्म के बाद के कारण	जन्म के समय के कारण
1.माँ को संक्रामक रोग होना	1.दुर्घटना से विशेष अंग का नष्ट होना	1.समय से पूर्व जन्म का होना
2. तेज दवाओ का सेवन	2. तीव्र आवृति वाली ध्वनि मे रहना	2. जन्म के बाद आक्सीजन की कमी
3. नशीले पदार्थो का प्रयोग	3 संक्रामक रोग जो श्रवण क्षमता को प्रभावित करते है	3. प्रसव के समय किसी उपकरण का रह जाना
4. कुपोषण		4. जन्म के तुरन्त बाद पोलियो होना
5. रहन –सहन की दशाएं		

श्रवण दोष बालको की पहचान– इस प्रकार के बालको को पहचानने

के लिए निम्नलिखित विधियो का उपयोग करते है।

1. **विकासात्मक पैमाना** – इसमे संवेदी गामक यंत्र के संदर्भ मे बालक के वर्तमान स्तर का पता लगाकर उसकी श्रवण विकलांगता का पता लगाते हैं।

2. **चिकित्सीय परीक्षण** – इसमे बालक के श्रवण अंगों की क्रियाशीलता तथा निष्क्रियता की जांच करके श्रवण क्षमता का पता लगाया जाता है।

3. **जीवन इतिहास विधि** – इसमे श्रवण दोष युक्त बालक के जीवन विवरण का पता लगाकर, उसके स्वास्थ्य –इतिहास, विकास का इतिहास तथा पारिवारिक पृष्ठभूमि को जानकर यह पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि श्रवण – दोष अनुवांशिक है अथवा अर्जित है।

4. **क्रमबद्ध निरीक्षण** – इसमे माता पिता अथवा शिक्षक द्वारा बालक के व्यवहार का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है और बालक के असामान्य व्यवहार का पता लगाया जाता है।

श्रवण बाधित की शिक्षा व्यवस्था– ऐसे बालक कक्षा मे ठीक प्रकार से समायोजित नही हो पाते है अतः इन्हे निम्न लिखित साधनो का प्रयोग करना चाहिए।

1. श्रवण यंत्र का प्रयोग करना चाहिए।
2. आत्म विश्वास को विकसित करने के लिए नर्सरी शिक्षा देनी चाहिए।
3. एक स्वर को दूसरे स्वर से भिन्न करने के लिए श्रवण प्रशिक्षण देना चाहिए।
4. इनके लिए कक्षा व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि इन्हे आगे की पंक्ति में बैठाया जाए।
5. शिक्षक को भी उच्च स्वर मे बोलना चाहिए तथा इस प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए कि छात्र शिक्षक के होठों को ठीक प्रकार देख सके।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की मिलान कीजिए।

2) दृष्टि विकलांगता का वर्गीकरण दीजिए।

....

....

3) श्रवण दोष बालको की शिक्षा व्यवस्था कैसी होनी चाहिए ?

....

....

14.5.3 वाणी दोष

वाणी दोष सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। वाणी दोष में सुनने वाला व्यक्ति, क्या कहा है, इस पर ध्यान न देकर किस प्रकार कहा जा रहा है, इस पर ध्यान देता है और श्रोता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है। इससे श्रोता एवं वक्ता दोनो ही परेशान होते है। वाणी दोष के अन्तर्गत दोषपूर्ण उच्चारण, दोषपूर्ण स्वर, अटकना एवं हकलाना, देर से वाणी विकास आदि आता है।

वाक विकलांगता के कारण – वाक विकलांगता का कारण श्रवण – क्षमता में कमी या उसका विकारयुक्त होना है। कान के रोग के कारण यह विकृति आती है। मस्तिष्क पर चोट लग जाना, तालु कण्ठ, जीभ, दांत आदि में किसी प्रकार की विकृति के कारण यह विकलांगता आ जाती है। वातावरण के कारण भी यह विकार आ जाता है। वाणी विकार अनुकरण के आधार पर भी होता है। यदि बालक के वातावरण मे किसी प्रकार का दोष होता है तो वह इन दोषो को अपना लेता है जैसे शब्दो का उच्चारण, उतार – चढाव, चेहरे के भाव इत्यादि अनुकरण द्वारा सीखे जाते है।

वाक् विकलांगो का वर्गीकरण –

1. आंगिक विकृति
2. सामान्य वाक् विकृति
3. मानसिक वाक् विकृति
4. विशेष वाक विकृति

वाक् – विकृति को दूर करने तथा वाक् विकास के लिए निम्नलिखित बातो को ध्यान मे रखकर वाक् – विकलांगो की शिक्षा को महत्वपूर्ण माना जाता है।

1. वाक् – ध्वनि के शुद्ध एवं स्पष्ट टेप – रिकार्डर रखना।
2. वाक् – विकृति का समुचित संग्रह करना।
3. बालक को स्वस्थ तथा मनोरम वातावरण मे रखना।
4. बालक के मुक्त विकास के लिए विद्यालय के वातावरण को सहज एवं स्वभाविकता प्रदान करना।
5. वाक् – दोषी बालक को मौखिक अभिव्यक्ति के अधिक अवसर प्रदान करना।

16.5.4 अस्थि विकलांगता–

अस्थि विकलांग बालक वे होते है, जिनकी मांसपेशियो, अस्थि व जोड़ो

मे दोष या विकृति होती है जिससे वह सामान्य बालको की तरह कार्य नही कर पाते है और उन्हे विशेष सेवाओ, प्रशिक्षण, उपकरण, सामग्री तथा सुविधाओ की आवश्यकता होती है। इसमे पोलियोग्रस्त, Crippled आदि आते है।

अस्थि विकलांगता के कारण –

वंशानुगत कारक – इसमे विकलांगता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होती है जोकि कार्यकुशलता मे बाधा उत्पन्न करती है।

1. जन्मजात कारक – ये जन्म के समय के कारक होते है। इसमे गर्भावस्था में कुपोषण संक्रामक रोग, मां का दुर्घटना ग्रस्त होना प्रमुख है जिसके कारण बालक में अस्थिदोष उत्पन्न हो जाते है।
2. अर्जित कारक – इसमे वे कारक आते है जो जन्म के पश्चात किसी प्रकार के दोष उत्पन्न करते है। इसके किसी प्रकार की दुर्घटना, बीमारियाँ जैसे पोलियों या अन्य बीमारी के लम्बे समय तक रहने पर होती है।

अस्थि विकलांग बालको की शिक्षा –

1. ऐसे बालको के शिक्षक को विशेष ध्यान देना चाहिए तथा उनके बैठने के लिए उचित फर्नीचर की व्यवस्था करनी चाहिए।
2. इन बालको के लिए एक स्थान पर बैठकर खेले जाने वाले खेलो का आयोजन होना चाहिए।
3. इन बालकों के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण व निर्देशन दिया जाना चाहिए। इनकी आवश्यकता के अनुसार इन्हे व्यवसाय उपलब्ध कराने चाहिए।
4. ऐसे बालकों को कृत्रिम अंग उपलब्ध कराये जाने चाहिए।
5. शिक्षको को इन बालको की सीमाओ को देखते हुये क्रियाए आयोजित की जानी चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :क) नीचे दिये गये रिक्त स्थान में अपने उत्तर लिखे।

ख) इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से अपने उत्तर की मिलान कीजिए।

4) वाणी दोष बालको की पाँच विशेषताए लिखिए।

....

....

5) अस्थि विकलांग बालको की मुख्य शैक्षिक आवश्यकताए लिखें।

....

....

16.6 मानसिक रूप से विशिष्ट बालक

इसमें प्रतिभाशाली, मानसिक मंद एवं सृजनात्मक बालक आते है।

16.6.1 प्रतिभाशाली बालक –

प्रतिभाशाली बालक वे बालक होते है जिनकी बौद्धिक क्षमताए सामान्य बालको की अपेक्षा अधिक होती है। ये जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे विशिष्ट प्रदर्शन करते है। टरमेन के अनुसार ऐसे बालको की बुद्धिलब्धि 140 से ऊपर होती है जबकि मिल के अनुसार 190 से 200 बुद्धि – लब्धि वाले बालक प्रतिभाशाली होते है। विटी के अनुसार प्रतिभाशाली बालक संगीत, कला, सामाजिक नेतृत्व तथा दूसरे विभिन्न क्षेत्रो मे अच्छा प्रदर्शन करते है।

प्रतिभाशाली बालको की पहचान

- परीक्षण के आधार
  - 1. बुद्धि परिक्षण
    - अ) मौखिक बुद्धि परीक्षण
    - ब) अमौखिक बुद्धि परीक्षण
    - स) क्रियात्मक बुद्धि परीक्षण
  - 2. उपलब्धि परीक्षण
  - 3. व्यक्तित्व परीक्षण
  - 4. अभियोग्यता परीक्षण
- शिक्षक निरीक्षण के आधार पर
  - कक्षा व्यवहार का निरीक्षण
  - कक्षा के बाहर का निरीक्षण
- अभिलेखो के आधार पर
  - 1.संचयी अभिलेख
  - 2.स्थानान्तरण प्रमाणपत्र अभिलेख
  - 3.स्वास्थ्य अभिलेख
  - 4.निर्देशन एवं परामर्श अभिलेख
  - 5.मासिक प्रगति अभिलेख

प्रतिभाशाली बालको की पहचान बुद्धि परीक्षण के आधार पर की जाती है। यह वैयक्तिक तथा सामूहिक परीक्षण द्वारा होता है। वैयक्तिक और सामूहिक बुद्धि परीक्षण मौखिक, अमौखिक तथा क्रियात्मक होते हैं। इसके अतिरिक्त उपलब्धि परीक्षणों की सहायता से यह पता लगाया जाता है कि बालक ने विभिन्न विषयो मे सिखायी जाने वाली कुशलताओ मे ठीक प्रकार से सफलता प्राप्त की है अथवा नही।

शिक्षक के निरीक्षण द्वारा बालक का व्यवहार, रूचियों, योग्यताओ, क्षमंताओ का ज्ञान प्राप्त कर प्रतिभाशाली बालको की पहचान की जाती है।

विभिन्न प्रकार के अभिलेखो के आधार पर किसी भी विद्यार्थी की प्रतिभा को पहचाना जा सकता है। इसमे मुख्य रूप से संचयी अभिलेख, स्थानान्तरण

अभिलेख, स्वास्थ्य अभिलेख, निर्देशन और परामर्श अभिलेख, मासिक प्रगति अभिलेख उपाख्यान संबधी अभिलेख है।

प्रतिभाशाली बालको के शिक्षण के प्रमुख उपागम – प्रतिभाशाली बालको की शिक्षा एक आसान कार्य नही है क्योकि यह संख्या मे कम होते है और समूह विजातीय होता है। अतः पूरे समूह पर किसी एक प्रणाली को लागू करना कठिन कार्य है। प्रतिभाशाली बालको के शिक्षण के प्रमुख तीन उपागम है।

1. त्वरण
2. सामान्य कक्षाओं मे समृद्धि
3. विशिष्ट कक्षाए

त्वरण – इसमे प्रतिभाशाली बालको को उनकी शारीरिक आयु की अपेक्षा मानसिक आयु के आधार पर प्रवेश दिया जाता है। ऐसे बालको को विद्यालय में शीघ्र प्रवेश दिया जाता है। हावसन के अनुसार ऐसे बालक आठवी कक्षा या उसके बाद अधिक अच्छी प्रगति दिखाते है।

समृद्धिकरण – समृद्धिकरण का तात्पर्य है कि नियमित कक्षाओ मे दिये जाने वाले पाठ्यक्रम मे शैक्षिक अनुभव अधिक देकर उसे समृद्ध बनाया जाना। प्रतिभाशाली बालको के समुचित विकास के लिए पाठ्यक्रम इतना कठिन होना चाहिए कि उसे पढ़ना बालक के लिए एक चुनौतिपूर्ण हो।

विशिष्ट कक्षाएं – इनमे सामान्य विद्यालायो मे ही विशेष कक्षाए आयोजित कर विशेष रूप से नियोजित पाठ्यक्रमो को प्रस्तुत किया जाता है। विशिष्ट प्रतिभावान व्यक्तियों को बुलाकर उनके अनुभवो से छात्रो को लाभान्वित करवाया जाता है।

16.6.2 मानसिक मंद बालक

मानसिक मंदता एक ऋणात्मक संकल्पना है। मानसिक रूप से मंद बालक घर, समाज तथा विद्यालय का कार्य नही कर पाते हैं।

डॉल ने 1941 में मानसिक मंदता की पहचान के लिए 6 प्रमुख बाते बतायी हैं।

1. जब बालक सामाजिक परिस्थितियों के साथ समायोजन न कर सके।
2. जब बालक अपने साथियों के साथ मित्रवत व्यवहार न कर सके।
3. जब व्यवहारिक तथा वातावरण सम्बन्धी कारणों से उसका मानसिक

विकास न हो सके।

4. जब बालक उतना कार्य न कर सके जितना उस आयु के लोगों से आशा की जाती है।

5. विशेष शारीरिक दोष के कारण वह सामान्य कार्य न कर सके।

6. जब बालक में कुछ ऐसे दोष हो जिन्हें परिष्कृत नही किया जा सकता है।

अमेरिकन एसोसिएशन ऑन मेण्टल डेफिशिएन्सी (1959) के अनुसार मानसिक मंदता में सामान्य बौद्धिक प्रकार्य सामान्य से कम स्तर के होते हैं। मानसिक मंदता की उत्पत्ति विकासात्मक अवस्थाओं में होती है और समायोजित व्यवहार को क्षति पहुंचाने से भी यह सम्बन्धित है।

मानसिक मंदता का वर्गीकरण

शारीरिक अवस्था के आधार पर	मंदता की मात्रा पर	दूसरों पर आश्रित रहने पर	बुद्धिलब्धि पर
(1) मस्तिष्क आघात	(1) साधारण मानसिक मंदता	(1) स्वतंत्र	(1) शिक्षा प्राप्त करने वाले
(2) मंगोलायड	(2) आत्मबल मानसिक मंदता	(2) आंशिक स्वतंत्र	(2) प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले
(3) क्रेटिन बालक	(3) गम्भीर मानसिक मंदता	(3) आश्रित	(3) संवासित
(4) फेनिलकेटनयूरिया			
(5) हाइड्रोसेफेली			
(6) सेरीबल पालसी			

मानसिक मंदता के कारण

जन्म के पूर्व के कारक	जन्म के समय के कारक	जन्म के पश्चात के कारक
(1) विषैले पदार्थो का सेवन	(1) अपरिपक्व जन्म	(1) गम्भीर बीमारी
(2) दवाएं	(2) प्रसव के समय असमान्य दशाएं	(2) मानसिक आघात
(3) रेडियोधर्मिता	(3) प्रसव के समय औजारों का प्रयोग	(3) दुर्घटना
(4) माता का मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य		(4) कुपोषण
(5) जन्म के पूर्व संक्रमण		(5) वंचित वातावरण

मानसिक मंद बालकों की शिक्षा व्यवस्था– मानसिक मंद बालकों की शिक्षा व्यवस्था के लिए कुछ सिद्धान्तों को प्रयोग में लाना चाहिए।

1. मानसिक मंद बालकों के लिए मूर्त माध्यम से शिक्षा दी जानी चाहिए। डूनॉन ने अपने अध्ययनों में यह पाया कि ऐसे बालक ऐलेक्जेण्डर परफारमेन्स टेस्ट को आसानी से कर लेते हैं।

2. कक्षा का आकार छोटा होना चाहिए तथा निर्देश व्यक्तिगत होने चाहिए।

3. करके सीखने के सिद्धान्त पर शिक्षा आधारित होनी चाहिए।

4. मानसिक मंद बालकों को वास्तविक स्थान पर ले जाकर शिक्षा देनी चाहिए।

5. शिक्षण को वास्तविक जीवन पर आधारित करके करना चाहिए। विभिन्न विषयों को आपस में सहसम्बन्धित करके शिक्षा देनी चाहिए।

6. मानसिक मंद बालकों के लिए अलग से विशेष शिक्षा व्यवस्था होनी चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

6) प्रतिभाशाली बालको की पहचान के प्रमुख तीन आधार लिखिए?

....

....

....

7) बौद्धिक क्षमता के आधार पर मानसिक मंद बालकों को परिभाषित कीजिए?

....

....

....

8) प्रतिभाशाली तथा मानसिक मंद बालकों में तीन अन्तर लिखें?

....

....

....

16.7 शैक्षिक रूप से विशिष्ट बालक

यहाँ पर शैक्षिक रूप से विशिष्ट बालकों के दो प्रकारों के बारे में बताया गया है।

16.7.1 शैक्षिक पिछड़े बालक–

पिछड़े बालक वह होते है जो कक्षा में किसी तथ्य को बार–बार समझाने पर भी नही समझते हैं और औसत बालकों के समान प्रगति नहीं कर पाते हैं। ये पाठ्यक्रम तथा पाठ्य सहगामी क्रियाओं में किसी प्रकार की रूचि नही लेते है। इनकी बुद्धिलब्धि सामान्य होने पर भी इनकी शैक्षिक उपलब्धि कम होती है। **बर्ट** के अनुसार "एक पिछड़ा बालक वह है जो अपने स्कूल जीवन के मध्यकाल में अपनी कक्षा से नीचे की कक्षा क़ा काम नही कर सकते जो कि उसकी आयु के लिए सामान्य कार्य हो।" पिछड़े बालकों को तीन आधारों पर जाना जा सकता है।

1. बुद्धिलब्धि के आधार पर
2. शैक्षिक उपलब्धि के आधार पर
3. शैक्षिक लब्धि के आधार पर

शैक्षिक पिछड़ेपन के कारण –

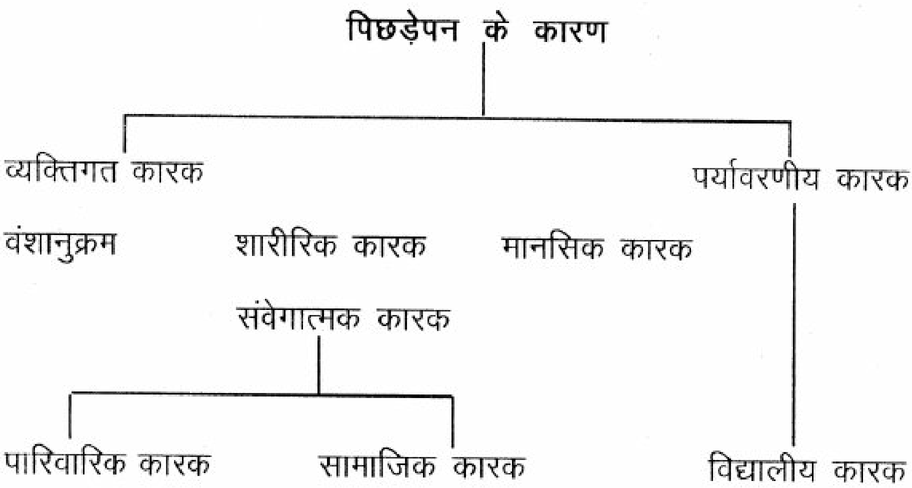

पिछड़े बालक की शिक्षा– पिछड़े बालकों पर यदि उचित ध्यान दिया जाता है तो वह शिक्षा में प्रगति कर सकते हैं। इसके लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

1. विशिष्ट विद्यालय
2. विशिष्ट कक्षाएं

3. सामान्य कक्षाओं में विशिष्ट प्राविधान

विशिष्ट विद्यालय– पिछड़े बालकों के लिए उनके अनुसार पाठ्यक्रम, उपयोगी सहायक सामग्री, प्रशिक्षित शिक्षकों सहित अलग से विद्यालय की स्थापना की जाए जिससे वह अपनी कमियों को कम समझ सके तथा अधिक सुरक्षा का अनुभव कर सके। यह विद्यालय आवासीय होने चाहिए।

विशिष्ट कक्षाएं– पिछड़े बालकों के लिए सामान्य विद्यालयों में विशिष्ट कक्षाएं आयोजित की जा सकती है। इन कक्षाओं में विशेष प्रशिक्षित अध्यापक नियुक्त किये जाने चाहिए। इन कक्षाओं में शिक्षक आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि में परिवर्तन कर सकते है तथा इन बालकों को कठिन प्रतियोगिता का सामना नही करना पड़ेगा।

सामान्य कक्षा में विशिष्ट प्राविधान– इसमें सामान्य कक्षाओं में विशेष प्राविधान करके, उन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। इन बालकों के लिए पाठ्यक्रम में लचीलापन होना चाहिए जो उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के अनुरूप हो। इनके लिए शिक्षकों को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना होगा।

1. शिक्षक व्यवहारिक और अनुभवी होना चाहिए।
2. शिक्षक को मनोविज्ञान का ज्ञान होना चाहिए। जिससे वह छात्रों की विशेष परेशानियों तथा कठिनाईयों को समझ सके।
3. पिछड़े बालकों में असफलता की दर अधिक होती है अतः शिक्षकों में धैर्य होना चाहिए।
4. शिक्षक को बाल–केन्द्रित शिक्षण विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

16.7.2 सीखने में अक्षम बालक–

सीखने में अक्षम बालक उन बालकों को कहते है जो कि मौखिक अभिव्यक्ति, सुनने सम्बन्धी क्षमता, लिखित कार्य, मूलभूत पढ़ने की क्रियाओं में, गणितीय गणना, गणितीय तर्क तथा स्पेलिंग में उनकी शैक्षिक उपलब्धि तथा बौद्धिक योग्यताओं में सार्थक विभेद दिखायी देता है। यह विभेद किसी और अक्षमता का परिणाम नही होता है। यह बालक ठीक प्रकार से सुन, सोच, बोल, पढ़ तथा लिख नही पाते है।

विशेषताएं– सीखने में अक्षम बालकों में मुख्य रूप से अति क्रियाशीलता, विलम्बित वाणी विकास पढ़ने, लिखने तथा गणित की समस्या तथा स्मृति ह्रास आदि पाये जाते है।

कारण— सीखने में अक्षमता के निम्नलिखित कारण होते है।

1. **पारिवारिक कारक—**

- सीखने में अक्षमता विशेष परिवारों में अधिक पायी जाती है।
- डिसलेक्सिया का प्रमुख आधार वंशानुक्रम होता है।
- यह जन्म से पूर्व, जन्म के समय तथा जन्म के बाद की समस्याओं का परिणाम होता है।
- माँ का स्वास्थ्य, खान पान तथा जीवन का तरीका
- सिर में चोट, संवेगात्मक वंचन
- केन्द्रीय स्नायुमण्डल का ठीक प्रकार से विकसित न होना आदि।
- श्रव्य गत्यात्मक समस्याएं, तथा किसी प्रकार की एलर्जी का होना।

2. **मनोवैज्ञानिक कारक—**

- ध्यान केन्द्रित करने में असमर्थता
- खराब अनुशासन का होना

3. **पर्यावरण कारक—**

- स्वास्थ्य, गलत आहार तथा सुरक्षा।
- परिवार में उचित भाषा का प्रयोग न होना।

4. **सामाजिक सांस्कृतिक कारक—**

- विद्यालीय उपस्थिति, कार्य तथा पढ़ने की आदते
- ठीक प्रकार की शिक्षा न मिल पाना।

बोध प्रश्न

टिप्पणी :

क) अपने उत्तरें का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

9) सही अथवा गलत पर निशान लगाइये।

(i) पिछड़े बालकों की बुद्धि लब्धि 90—100 होती है

(ii) पिछड़ा बालक वह है जो अपने विद्यालय जीवन के मध्य में अपनी कक्षा से नीचे की कक्षा के कार्य को न कर सके जो उसकी आयु के बालकों के लिए सामान्य है।

(iii) पिछड़े बालकों की शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तिगत सामर्थ्य बढ़ाना है।

(iv) डिसलेक्सिया सीखने में अक्षमता के कारण है

(v) सीखने में अक्षम प्रायः ध्यान केन्द्रित कर पाने में समर्थ होते है।

16.8 सामाजिक रूप से विशिष्ट बालक--

समाज के अनुरूप व्यवहार न कर सकने वाले बालक सामाजिक रूप से विशिष्ट बालक कहलाते हैं।

16.8.1 बाल–अपराधी

बालक के व्यक्तित्व के समुचित विकास में सामाजिक नियन्त्रणों तथा सामाजक मानकों की विशेष भूमिका है। बालक के विकास में परिवार के साथ–साथ सामाजिक वातावरण, बालक की इच्छा आकांक्षाए तथा महत्वाकांक्षा का भी प्रभाव पड़ता है। बाल अपराधी वह है जो समाज के नियमों तथा कानूनों का उल्लंघन इस प्रकार करते हैं कि वह विभिन्न असामाजिक गतिविधियों में लिप्त हो जाते हैं।

हैली के अनुसार एक बच्चा जो सामान्य व्यवहार के प्रस्तावित मानकों से भिन्न व्यवहार करता है अपराधी बालक कहलाता है। जैविकीय दृष्टिकोण के अनुसार बालक के स्नायुमण्डल में किन्हीं प्रकार की गड़बड़ियां होने पर वह असमाजिक व्यवहार करने लगता है। अतः असामाजिक व्यवहार करना जन्मजात होता है।

उपर्युक्त दृष्टिकोणों के अनुसार बाल अपराधी के व्यवहार का विश्लेषण करने पर निम्न बाते प्रमुख है।

1. अपराधी बालक असामाजिक गतिविधियों में लिप्त रहते है तथा सामाजिक मानकों का उल्लंघन करते है।
2. बाल अपराधी एक किशोर होते हैं जो लगभग 12 वर्ष से 21 वर्ष की आयु के मध्य होता है।
3. उनकी असामाजिक गतिविधियां इतनी अधिक होती है कि उनके प्रति कानूनी कार्यवाही आवश्यक होती है।
4. इन्हें किशोर बन्दीगृहों में रखा जाता है।

अपराधी क्रियाओं के प्रकार– भारतीय संविधान के परिपेक्ष्य में बाल–अपराध ा में वे सभी व्यवहार आ जाते है जिनमें सामाजिक, नैतिक मूल्यों की अवहेलना की जाती है अथवा राष्ट्रीय बाल अधिनियम 1920, 1924, 1948, 1960 और 1978 का उल्लंघन होता है।

1. अर्जन करने की प्रवृति
2. धोखा धड़ी
3. उग्र प्रवत्तियां
4. बचाने या भागने की प्रवृति
5. यौन अपराध

बाल अपराध के कारण

बाल अपराध के मनोवैज्ञानिक, व्यक्तिगत, सामाजिक और आर्थिक कारक होते है।

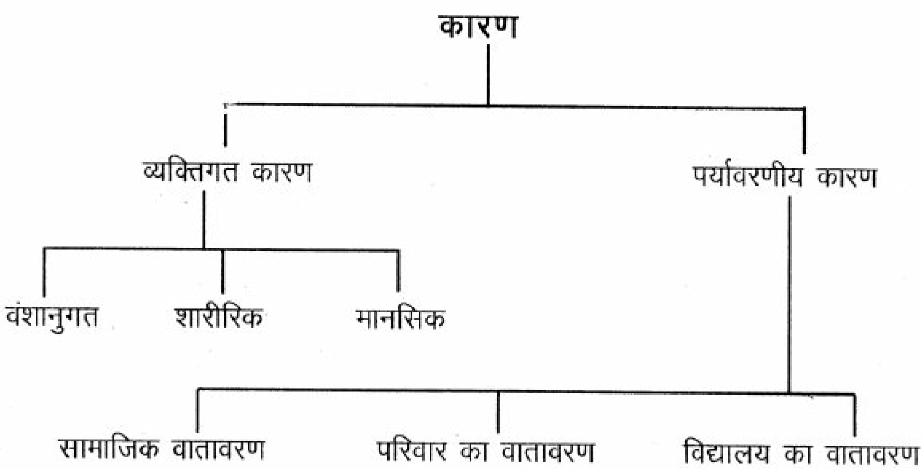

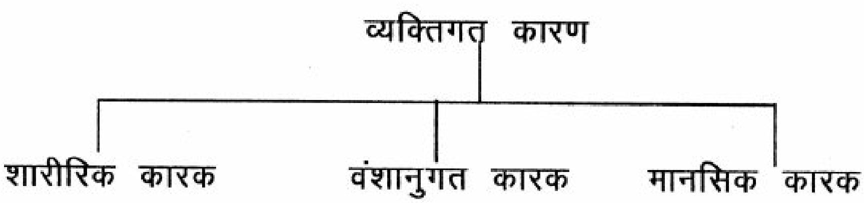

शारीरिक कारक

1. शारीरिक संरचना
2. शारीरिक दोष
3. पैतृक दोष
4. अविकसित शरीर
5. कम विंकसित शरीर
6. गम्भीर बिमारी

मानसिक कारक

1. बौद्धिक कारक
2. संवेगात्मक निर्बलता
3. मानसिक रोग
4. मनोस्नायु विकृति
5. हीन भावना

वातावरणीय कारक

परिवार का वातावरण

(1) भग्न परिवार
(2) दूषित अनुशासन
(3) असुरक्षा या अत्यधिक सुरक्षा
(4) अनैतिक परिवार
(5) सामाजिक आर्थिक स्थिति
(6) माता पिता का चरित्र
(7) माता पिता की अभिवृत्ति
(8) नौकरों की संगति

विद्यालय का वातावरण

(1) विद्यालय का संवेगात्मक वातावरण
(2) विद्यालय की स्थिति
(3) अनुशासन का अभाव
(4) शिक्षकों द्वारा पक्षपातपूर्ण व्यवहार
(5) पुस्तकालय तथा अन्य खेल की सुविधाओं का अभाव
(6) निर्देशन सेवाओं का अभाव

समाज का वातावरण

1) आर्थिक असमानता
2) गन्दी बस्तियाँ
3) बेरोजगारी
4) बुरी संगति
5) अपराधी क्षेत्र

बाल अपराध के उपचार– बाल अपराध एक सामाजिक समस्या है अतः इसके उपचार करते समय दो बाते प्रमख है (1) जो बाल अपराधी है उनका उपचार करना (2) ऐसी शिक्षा तथा क्रिया करवाना जिससे वे पुनः अपराध में लिप्त न हो।

मनोवैज्ञानिक विधियां– इसमें निरीक्षण करके अपराध की मात्रा का पता लगा कर अपराधी को निम्न विधियों द्वारा ठीक करने का प्रयास किया जाता है।

(1) पुनः शिक्षा– इसमें शिक्षा का उद्देश्य केवल पढ़ना लिखना ही नही वरन् समस्या के प्रति जानकारी देकर आत्म का निर्माण करना है।

(2) अनिर्देशित विधि – इसमें बालक को अपनी दमित इच्छाओं और संवेगों को व्यक्त करने का अवसर दिया जाता है।

(3) प्रोत्साहन – इसमें बाल अपराधी को इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वह भविष्य में इस प्रकार का अपराध नही करेगा।

(4) वातावरणीय उपचार– इस विधि में बालक के परिवार तथा सामाजिक वातावरण में सुधार लाने का प्रयास किया जाता है।

(5) सुझाव और परामर्श– इसमें बाल अपराधियों को सकारात्मक सुझाव देकर उन्हें सही रास्ते पर लाया जाता है तथा परामर्श के द्वारा उनके परम अहम्

को सुदृढ़ किया जाता है।

16.8.2 मादक–द्रव्य व्यसनी बालक–

मादक द्रव्यों का सेवन प्राचीन काल से किसी न किसी रूप में किया जा रहा है। प्राचीन काल में सामाजिक और धार्मिक उत्सवों में इन पदार्थों का सेवन किया जाता था। भारतवर्ष में लगभग 2000 वर्ष पूर्व भांग व चरस का सेवन किया जाता था। आधुनिक समाज के प्रत्येक वर्ग में मादक पदार्थो के सेवन की लत बढ़ रही है। मादक द्रव्य से तात्पर्य उन द्रव्य तथा औषधियों से है जिनका उपयोग नशा, उत्तेजना, उर्जा तथा प्रसन्नता के लिए किया जाता है। चरस, गांजा, भांग, अफीम, कोकीन आदि का सेवन करने वाले को मादक द्रंव्य व्यसनी कहा जाता है। जिन मादक पदार्थो का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है उन्हें मुख्य रूप से छः श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

1. शराब
2. शामक पदार्थ
3. उत्तेजक पदार्थ
4. तन्द्राकर पदार्थ
5. भ्रमोत्पादक पदार्थ
6. निकोटीन

मादक द्रव्य व्यवसन के कारण – मादक द्रव्यों का प्रयोग किसी भी स्तर पर हो सकता है परन्तु यह सबसे अधिक किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था में पायी जाती है। इसके प्रमुख निम्नलिखित कारण है।

1. अधिकांश लोग मादक द्रव्यों का सेवन प्रारम्भ में दर्द को दूर करने के लिए करते हैं।
2. अधिकांश युवा वर्ग मादक पदार्थो का प्रयोग अपने भ्रम प्रभाव में करते है जिससे वे संसार की सत्यता से अपने को दूर करके एक कृत्रिम संसार स्थापित कर सके।
3. कभी–कभी बेराजगारी, अनिश्चित भविष्य, पारिवारिक परेशानियों, लिंग (Sex) परेशानियों आदि के कारण मादक पदार्थो का सेवन प्रारम्भ कर देते

4. मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मादक पदार्थो का सेवन हीन भावना से बचने के लिए, किशोरावस्था में उत्पन्न तनाव को दूर करने के लिए, अवसाद को शांत करने आदि के लिए करते हैं।

5. दूषित सामाजिक वातावरण, भ्रष्टाचार, भाई भतीजावाद, पक्षपात जिसके कारण युवावर्ग ठीक प्रकार से शिक्षा एवं रोजगार नही प्राप्त कर पाते हैं तथा कुण्ठा का शिकार हो जाते है, मादक पदार्थो का सेवन प्रारम्भ कर देते है।

6. माता पिता का उचित नियन्त्रण न हो, दोनो माता–पिता का कार्यरत होना, संयुक्त परिवार का अभाव, परिवार का उच्च अथवा निम्न सामाजिक आर्थिक स्तर के कारण बालक मादक पदार्थो का सेवन करना प्रारम्भ कर देते है।

7. संगति के प्रभाव के कारण भी किशोर या युवा मादक पदार्थो का सेवन करते है।

मादक द्रव्य व्यसन के परिणाम– मादक पदार्थो का अत्यधिक सेवन करने से स्वास्थ्य में अचानक गिरावट आ जाती है। भूख कम लगती है तथा इन लोगों में विभ्रम की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। व्यक्ति अपने जीवन मूल्यों तथा सामाजिक मूल्यों को भूल जाता है। विक्टर हार्सले ने अपने अध्ययन में यह पाया कि मादक द्रव्यों के प्रभाव से व्यक्ति मे सनकीपन, चर्मराग, ह्रदयरोग, लीवर की समस्या उत्पन्न हो जाती है। जिससे उनका व्यक्तिगत अपराधी, तनावग्रस्त तथा अकर्मण्य हो जाता है। मादक पदार्थो के सेवन से झूठ बोलना सीख जाता है तथा उलझन भरा स्वभाव हो जाता है। ये बालक विद्यालय से अधिकांश अनुपस्थित रहते है तथा जब भी संभव होता है पैसा चुराने में किसी भी प्रकार का संकोच नही करते हैं। मादक द्रव्यों के सेवन में अधिकांश युवा वर्ग होता है अतः यह सामाजिक विकास में बाधक होते हैं। मादक पदार्थो के दुरूपयोग के परिणाम स्वरूप दंगे, हत्यायें, बलात्कार, अपहरण, अभद्रता, अनैतिक कार्य तथा व्यवहार बढ़ते जा रहे हैं।

निरोधक उपाय–मादक पदार्थो के व्यसन की समस्या गम्भीर रूप धारण

कर चुकी है। वर्तमान समय में सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि इसके शीघ्र रोकथाम, समय से नियन्त्रण तथा इन्हें पुनः सामान्य जीवन जीने की तकनीकों तथा विधियों का ज्ञान सबको दिया जाए। शिक्षा को एक सशक्त साधान के रूप में प्रयोग कर अभिभावकों, सरकार, गैरसरकारी संस्थाओं (NGOs) तथा निर्देशन कर्त्ताओं को इस बढ़ती हुयी समस्या को दूर करने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम अभिभावकों को परिवार का वातावरण स्वस्थ तथा स्थायी रखने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार के व्यवहार का एक प्रमुख कारण प्यार की कमी होता है। शिक्षक को विभिन्न स्तरों जैसे स्कूली छात्रों, कालेज तथा विश्वविद्यालय के छात्रों तथा अन्य युवाओं को मादक पदार्थो के दुरूपयोग की जानकारी देनी चाहिए इसके लिए इस प्रकार के व्यक्तियों की बाते ध्यानपूर्वक सुननी चाहिए तथा एक दोस्त के रूप में सहायता करनी चाहिए। शिक्षण संस्थाओं में पाठ्य सहगामी क्रियाओं पर बल दिया जाना चाहिए जिससे छात्र अपने अवकाश के समय का ठीक प्रकार से प्रयोग कर सके। व्यक्तित्व विकास के कार्यक्रम जैसे नेतृत्व करने का प्रशिक्षण, स्वानुशासन उत्पन्न करने का प्रशिक्षण, साहसिक कार्य एवं युवा कैम्पों की व्यवस्था नियमित रूप से की जाए। चुने हुये क्षेत्रों में व्यापक तथा अधिकांश सर्वेक्षण करना चाहिए जिससे यह पता लग सकेगा कि विभिन्न आयु और समदायों के लोगों में से कौन मादक पदार्थो का सेवन अधिक करते है इन आंकड़ों के आधार पर इनके रोकथाम के लिए कार्यविधि निर्धारित की जा सकती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिये नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तरों का मिलान अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

10) बाल अपराधी क्रियाओं के चार प्रकार लिखिए।

....

....

....

11) मादक द्रव्य दुरूपयोग की रोकथाम के विद्यालीय उपाय लिखिए।

....

....

16.9 सारांश

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य समाज में उपलब्ध मानवीय संसाधनों का पूर्ण उपयोग करके व्यक्तिगत कुशलता तथा समाज का विकास करना है। इसके लिए व्यक्तिगत सीमाओं को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार के विशिष्ट बालक जैसे शारीरिक रूप से विकलांग बालक, प्रतिभाशाली बालक, मानसिक मंद, पिछड़े बालक, सीखने में अक्षम या धीमी गति से सीखने वाले बालक, बाल अपराधी तथा मादक द्रव्य व्यसनी की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। इसके लिए आवश्यकतानुसार उन्हें पहचान कर विशेष विद्यालय, विशेष कक्षाएं, सामान्य कक्षाओं में विशेष व्यवस्था, अलग से कक्षा की व्यवस्था करना, व्यवसायिक शिक्षा प्रमुख है। शिक्षा द्वारा इन बालकों में आत्म विश्वास जागृत कर उनके कौशलों का विकास किया जा सकता है। इस इकाई में हमने आपकों विशिष्ट बालकों की पहचान तथा उनकी शिक्षा व्यवस्था के बारे में जानकारी देने का प्रयत्न किया है।

16.10 अभ्यास कार्य

आप अपने विद्यालय या आस पास के किसी विशिष्ट बालक का चयन कीजिए जिसका आप सुधार करना चाहते हो। चयनित बालक की विशेषताएं लिखिए तथा उसके आधार पर उसे किस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था देने के लिए कहेंगे स्पष्ट करें।

16.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. 1) क

   2) ग

2. – पूर्णांध

   – आंशिक जन्मांध

   – आंशिक अन्धता

3. श्रवण यन्त्रों का प्रयोग

   ऊँचे स्वर में बोलना

कक्षा में बच्चों को आगे बैठाना

4. मुख संचालन अरूचिकर होता है।

भाषा के उतार चढ़ाव में कमी होती है।

भाषा आयु व शारीरिक विकास के अनुरूप नही होती है।

वाणी आसानी से समझ में नही आती है।

यह भाषा शास्त्र के अनुसार दोषपूर्ण होती है।

5. बैठने के लिए उचित फर्नीचर

आवश्यकतानुसार व्यवसायिक प्रशिक्षण

सीमाओं को देखते हुए क्रियाएं आयोजित होनी चाहिए।

निर्देशन की व्यवस्था होनी चाहिए।

6. बुद्धिलब्धि

उपलब्धि परीक्षण

निरीक्षण

7. मानसिक मंद की बुद्धिलब्धि 70 से नीचे होती हैं।

8. (क) प्रतिभाशाली एक धनात्मक गुण है जबकि मानसिक मंद ऋणात्मक

(ख) प्रतिभाशाली की बुद्धिलब्धि 120 से ऊपर होती है जबकि मानसिक मंद की 70 से नही।

(ग) प्रतिभाशाली बालक सामाजिक गुणों से परिपूर्ण होते है जबकि मानसिक मंद सामाजिक असामर्थ्य होते है।

9. सत्य कथन (ii) (iii) (iv)

असत्य कथन (i) (v)

10. धोखा–धड़ी, यौन अपराध, भगोड़ापन, उग्र व्यवहार

11. पाठ्यसहगामी क्रियाओं का आयोजन, गोष्ठियों तथा सम्मेलनों का आयोजन, व्यक्तित्व विकास के कार्यक्रमों की व्यवस्था, मादक द्रव्यों के

रोकथाम की छात्रों को जानकारी देना।

16.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Burt, (1950), Backward Children, University of London Press.

Dunn, L.M. (Ed) (1973) Exceptional Children in the Schools, Holt, Rinchart, Winston,

New York.

Telford, C.W. & Sawrey, J.M. (1972) The Exceptional Individual, Prentice Hall, New Jersey.

Notes

Notes

Notes

Notes

Notes

Notes